श्रीमती कमला नेहरू

बहुत दिनों की बात है। जयपुर में जयकिशन अटल नाम के एक सुप्रसिद्ध काश्मीरी ब्राह्मण रहा करते थे। उनकी कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने जवाहरलाल जी नामक एक लड़के को गोद लिया। यही लड़का आगे चलकर दिल्ली के सुप्रसिद्ध व्यवसायी पं० जवाहरलाल जी कौल के नाम से विख्यात हुआ।

प० जवाहरलाल जी कौल एक सुप्रसिद्ध व्यवसायी थे। दिल्ली के व्यापारियों में इनकी अधिक प्रतिष्ठा थी। ये दिल्ली में किस चीज का व्यापार करते थे; यह तो ठीक ठीक न मालूम हो सका, किन्तु ये एक कुशल व्यापारी अवश्य थे। इनकी व्यापार-पटुता की इस समय भी दिल्ली के अधिकांश व्यापारी प्रशंसा किया करते हैं।

इन्हीं पंडित जवाहरलाल जी कौल को १९०० ई० के करीब एक लड़की पैदा हुई। वह लड़की पैदा हुई, जिसे आज हम और आप राष्ट्र की सबी विभूति कमला जी के रूप में जानते हैं। कमला जी के सबसे छोटे भाई का नाम कैलाश नाथ जी कौल है। वे आज कल सीता

पुर में रहते हैं। अभी जब पंडित जवाहरलाल स्वीट्जर लैण्ड से आते समय बमरौली स्टेशन पर उतरे थे, तब सबसे पहले पंडित कैलाश नाथ जी ही ने आगे बढ़कर उन्हें अपने हृदय से लगाया था। उस दिन जिस जिसने इन दोनों सम्बधियों के स मिलन को देखा; उसी की आखों में कमला जी की स्मृति शोक के रूप में उमड़ पड़ी थी।

कमला जी का बचपन बड़े प्यार से बीता। ईश्वर ने उनके भाग में वह प्यार लिखा था; जो बड़ी बड़ी राजकुमारियों को भी नहीं उपलब्ध हुआ करता। जब तक पिता के घर रहीं, पिता की प्यार की छाया में पलती। रहीं और जब ससुराल गई, तब उन्हें पिता के प्रेम से भी बढ़कर मिला, सास ससुर का प्रेम। पंडित मोतीलाल जी तो उन्हें अपनी सन्तानों से बढ़कर अधिक प्यार किया करते थे। जिस प्रकार पंडित जवाहरलाल जी उनकी आंखों के तारे थे, उसी प्रकार वे भी उनकी आंखों की पुतली ही के समान थीं। बल्कि कहना यों चाहिये कि प० जवाहरलाल जी और कमला जी, दोनों उनकी एक एक आखों ही के समान थे।

कमला जी के प्रति उनका प्यार यों तो बात बात में दिखाई देता था; किन्तु उनका विशेष परिचय इस एक

घटना से विशेषरूप से मिल जाता है। उन दिनों पण्डित मोतीलाल जी बीमार थे। प्रयाग में जुलूसों की धूम थी। प्रतिदिन जुलूस निकल रहे थे, और प्रतिदिन पुलिस के सिपाही उन्हें रोक लिया करते थे। एक दिन कमला जी के नेतृत्व में जुलूस निकला ? जुलूस अलवर्ट रोड पर जाकर रोक लिया गया। कमलाजी आधी रात तक जुलूस के साथ सड़क पर पुलिस वालों से मोर्चा लेती रहीं। प० मोतीलाल जी के कानों में खबर गई वे अपने को सम्भाल न सके। मोटर पर चढ़कर फौरन अलवर्ट रोड की ओर चल दिये। और पुलिस के उस घेरे को जिसने उसे बहुत देर से बना रक्खा था, पुलिस के ऊँचे ऊँचे अधिकारियों के सामने ही तोड़ कर जुलूस के भीतर घुस गये। यह है कि उनका उनकी पुत्र वधू कमला जी के प्रति प्रेम। बीमारी की अवस्था में भी उन्हें वहाँ खींच ले गया। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे यह पता चलता है, कि कमला जी सास-ससुर के प्रेम के सम्बन्ध में अधिक सौभाग्यशालिनी थीं !!

(२)

उन दिनों काश्मीरी ब्राह्मणों में पर्दे की प्रथा तो न थी! किन्तु फिर भी स्त्रियां आज की तरह स्वतंत्रता-पूर्वक सड़कों पर न निकलती थीं। अपने कुटुम्बियों से पर्दा न

था; किन्तु दूसरे लोगों से पर्दा किया ही जाता था। कदाचित् इसी कारण उन दिनों स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार भी आज की भांति इतना अधिक न था।

यदि आज का ज़माना होता तो कमला जी को भी स्कूलों और कालेजों की शरण लेनी पड़ती। किन्तु उस युग में शिक्षा का इतना प्रचार न था। स्त्रियों को कौन कहे, अधिकांश पुरुष भी थोड़ी अरबी फारसी सीख लेने ही में पढ़ाई की इतिश्री समझ लेते थे। अतः कमला जी की प्रारम्भिक शिक्षा घर ही पर हुई। उन दिनों काश्मीरियों में स्त्रियों को हिन्दी पढ़ाने की प्रथा थी। पुरुष अधिकतर अरबी फारसी पढ़ते थ और स्त्रियाँ हिन्दी। काश्मीरियों की इसी प्रथा के अनुसार कमला जी का पहले साधारण हिन्दी की शिक्षा दी गई।

कमला जी जब सात वर्ष की हुई, तब वे अपने एक अत्यन्त निकट के सम्बन्धी के साथ प्रयाग चली आई। लीडर के सपादक सी० वाई० चिन्तामणी आजकल जिस बँगले में रहते हैं, उसी बँगले में पहले कमला जी रहा करती थीं। प्रयाग में भी उनकी शिक्षा घर ही पर हुई। उनकी बुद्धि अधिक तीव्र थी। यद्यपि उनकी शिक्षा ऊँचे दरजे की न हुई थी; किन्तु फिर भी वे हिन्दी अधिक जानती थीं। अँगरेजी बोलने का उनका अधिक अभ्यास तो न था; किन्तु व अँगरेजी भलीभांति समझ लेती थीं।

अँगरेजी की शिक्षा कमला जी को उनके विवाह के बाद दी गई। कुछ तो प० जवाहरलाल जी के शिक्षित जीवन का उन पर प्रभाव पड़ा, और कुछ पंडित मोतीलाल जी की शिक्षा प्रेमी प्रकृति का। इसके अतिरिक्त कमला जी स्वयं पढ़ने लिखने से अत्यन्त प्रेम करती थीं। अतएव थोड़े ही दिनों में उन्होंने हिन्दी और अँगरेजी का काफी ज्ञान प्राप्त कर लिया। वे उर्दू पढना-लिखना तो न जानती थीं, किन्तु बातचीत में जो शब्द उनके मुँह से निकलते थे, उनमें उर्दूपन की भी कुछ पुट रहती थी। हो सकता हो, यह काश्मीरियों में साधारण रूप से बोली जाने वाली उर्दू का प्रभाव रहा हो। कुछ हो, वे हिन्दी और अँगरेजी भली भाँति जानती थीं।

(३)

मैं ऊपर यह लिख चुकी हूँ, कि कमला जी जार्ज-टाउन में रहा करती थीं। वे अधिक सुशीला और गुणवती थीं, सभव है उनके सुशीला होने की बातें पंडित मोतीलाल जी के भी कानों में पड़ी हो। यह भी हो सकता है, कि कमला जी के माता पिता ही पंडित मोतीलाल जी के जवाहरलाल पर अधिक लट्टू हो गये हों। जो हो, किन्तु कमला जी और पंडित जवाहरलाल जी के विवाह की बातचीत कुछ पहले ही से चल रही थी। इसमें सन्देह

नहीं, कि दोनों एक दूसरे के अनुरूप ही थे। पंडित जवाहरलाल जी को पाकर कमला जी कितनी पूज्य बन गई, इसके सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि कमला जी को पाकर पंडित जवाहर लाल जी का जीवन भी अधिक धन्य हो उठा। पंडित जवाहरलाल जी ने स्वयं इसे अपने मुख से स्वीकार किया है। अभी उन्होंने दिल्ली में एक स्थान पर भाषण देते हुए कहा है, कि सच है, कि मेरी एक शक्तिशालिनी सहयोगिनी मुझसे छिन गई, किन्तु आप लोगों के इस प्रेम को पाकर यदि मैं उसके शोक को भूल जाऊँ तो आश्चर्य नहीं।

उन दिनों पंडित जवाहरलाल जी बैरिस्टरी पास करके युरोप से आ चुके थे। उनके अंग अंग पर विदेशी सभ्यता अपना सिक्का जमाये हुये थी। व भारतीय रस्म-रवाजों से घृणा भी अधिक करते थे। किन्तु साथ ही उनके हृदय में माँ-बाप की प्रतिष्ठा के भाव भी अधिक थे। वे स्वप्न में भी उनके दिलों को दुखाना न चाहते थे। इस लिये पंडित मोतीलाल जी के कथनानुसार ही उन्हें भारतीय रस्म रवाजों के आधार पर कमला जी के साथ विवाह करना पड़ा। विवाह के पहले ही पंडित जवाहरलाल जी यह जान चुके थ, कि मेरी शादी कमला जी के साथ होगी।

(९)

विवाह के दो वर्ष पहले ही प० जवाहरलाल जी मसूरी में कमला जी से मिल चुके थे। इसके बाद तो वे कई बार कमला जी से मिले। कमला जी का विवाह सन् १९१६ में बड़ी धूमधाम से प० जवाहरलाल जी के साथ हुआ। इस विवाह में दोनों ओर से काफी रुपया खर्च किया गया था। पंडित मोतीलाल जी ने तो विवाह के उपलक्ष में एक ऐसी दावत की थी, कि लोग उसका इस समय भी स्मरण किया करते हैं। उस दावत में सरकारी और गैर सरकारी सभी तरह के लोग सम्मिलित थे।

(८)

विवाह के बाद कमला जी आनन्दभवन में आकर रहने लगीं। उन्होंने थोड़े ही दिनों में घर के सभी मनुष्यों पर अपना आधिपत्य जमा लिया। भला ऐसा कौन है, जो जवाहर की कमला और पं० मोतीलाल जी की उस पूतरी को अपने प्राणों के समान न समझता, नौकर चाकर सभी की वे अत्यन्त पूज्य बन गई। सास-ससुर के प्रेम का तो कुछ पूछना ही नहीं। जिस प्रकार पं० मोती-लाल जी उन्हें प्रेम और आदर की दृष्टि से देखते थे। उसी प्रकार उनकी सास स्वरूप रानी भी देखती थीं। कमला जी भी सच्चे दिल से सास-ससुर की सेवा किया करती थीं। उन्होंने अपने जीवन में कभी कोई ऐसा

अप्रिय कार्य न किया, जिससे बूढ़ी सास के हृदय पर कोई चोट लगती। पण्डित जवाहरलाल जी की बहनों के साथ भी उनका व्यवहार सदा आदर्श और अनुकरणीय रहा है। जिसने पण्डित विजयलक्ष्मी, कृष्णा नेहरू, और कमला जी को एक साथ आन्दोलन में काम करते हुए देखा है, वह उनके परस्पर के प्रेम का सहज ही में अनुमान कर सकता है।

यह तो हुआ उनका पारिवारिक प्रेम, अब ज़रा दाम्पत्य जीवन की ओर दृष्टि डालिये। कमला जी इस बीसवीं सदी की महिला थीं। किन्तु वे अपने पति को अपना आराध्य देवता समझती थीं। वे सच्चे दिल से पं० जवाहरलाल जी की सेवा करतीं तथा उन्हें सुख पहुँचाने का प्रयत्न किया करती थीं। इतना ही नहीं। वे एक और ऐसा महान् कार्य किया करती थीं, जिसे संसार की विरली ही कोई स्त्री करती हुई पाई जाती है। उनका वह काम था, पण्डित जवाहरलाल जी को समय समय पर उत्साहित करना। वे पण्डित जवाहरलाल जी की घर में रहने वाली स्त्री ही न थीं, बल्कि थीं उनकी एक शक्तिशालिनी सहयोगिनी। उन्होंने घर और विदेश के अतिरिक्त समर में भी उनका साथ दिया। वैसा ही साथ दिया, जैसा कभी भारत की राजपूतानियाँ अपने

पतियों का साथ दिया करती थीं। आज इसी को सोचकर पंडित जवाहरलाल जी दुखी हैं। आज वे स्पष्टरूप से यह अनुभव कर रहे हैं, कि उनकी सहयोगिनी कमला, जो भारत को जीवन-सन्देश देकर सदा के लिये उससे विदा हो गई उन्हें शक्ति और स्फूर्ति प्रदान किया करती थीं।

पंडित जवाहरलाल जी अपने शरीर के दुःखों की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। जो लोग पंडित जवाहरलाल जी के साथ रहे हैं, उनका कहना है, कि पंडित जी अपने खाने-पीने के संबध में अधिक लापरवाही किया करते हैं, उन्हें जो कुछ मिल जाता है, खा लेते हैं। जो कुछ मिल जाता है पहन लेते हैं। कमला जी उनकी इस प्रकृति को भली भाँति जानती थीं। वे पहले ही से पंडित जवाहरलाल जी की आवश्यक वस्तुओं को एकत्र किये रहती थीं। वे उन्हें कभी किसी प्रकार का कष्ट न उठाने देती थीं। खाने-पीने में उनका अधिक ध्यान रखती थीं। कमलाजी की भाँति जवाहरलाल जी भी सदैव उन्हें अपना हृदय ही समझा करते थे। कमला जी की बीमारी को दूर कराने के लिये पंडित जवाहरलाल जी ने क्या नहीं किया? कई बार वे विदेश गये, लाखों रुपया उन्होंने पानी की तरह बहाया। स्वयं कई महीने तक उनके पास बैठे रहे! यह सब उनके हृदय का अटूट प्रेम ही तो है!

यहां एक बात और कह दूं। इस बात से पण्डित जवाहरलाल जी के प्रेम का परिचय आपको भली भांति मिल जायगा। कमला जी अधिक सौभाग्य-शालिनी तो थीं। किन्तु उनका स्वास्थ्य अच्छा न था। वे प्रायः बीमार रहा करती थीं। बीमारी ही ने उन्हें कदाचित् पुत्र सुख से वंचित रक्खा। कुछ लोगों का कहना है कि कमला जी जब बराबर बीमार रहने लगीं, तब पण्डित मोतीलाल जी ने वंश-रक्षा के लिये पण्डित जवाहरलाल जी से दूसरा विवाह करने के लिये जोर दिया था। किन्तु पण्डित जवाहरलाल जी ने यह बात न मानी।

(५)

सन् १९१६ में कमला जी का विवाह हुआ। इस वर्ष के बाद सन् १९१७ में उन्हें एक लड़की उत्पन्न हुई। यह वही लड़की है, जिसे आज सारा संसार जवाहर की इन्दिरा के नाम से जानता है। कमला जी की भांति उनकी इन्दिरा भी अधिक सुशील, गुणवती और स्वरूप की खान है। कदाचित् इसी से उसका नाम इन्दिरा और इन्दुमती भी रक्खा गया है। वह गुणवती ही नहीं है वीर हृदया भी है। उसकी वीरता की कुछ कहानियां कुछ लोगों के मुख से सुनी जाती हैं। किन्तु यहां उन्हें लिखने की मैं आवश्यकता नहीं समझती। इन्दिरा की

अवस्था अनुमानतः इस समय उन्नीस बीस वर्ष की होगी। वह इस समय इङ्गलैण्ड में शिक्षा प्राप्त कर रही है।

सात वर्ष के बाद सन् १९२४ में कमला जी को एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था। किन्तु दुर्भाग्य-वश वह तीन दिन का ही होकर इस संसार से चल बसा। इसके बाद कमला जी को फिर कभी कोई सन्तान न हुई। इसके बाद तो वे बीमार ही हो गई; और अपने जीवन के अन्तिम काल तक बीमार ही रहीं। पंडित मोतीलाल जी की हार्दिक अभिलाषा थी; कि वे पौत्र के मुख का दर्शन करें। वे कभी कभी अपनी इस अभिलाषा को अपने घर में प्रगट भी किया करते थे। कदाचित् इसी अभिलाषा से विवश होकर उन्होंने एक दिन पंडित जवाहरलाल से कहा था, कि आखिर इस आनन्द भवन में चिराग कौन जलायेगा! पंडित मोतीलाल की इस बात को सुनकर पंडित जवाहरलाल जी ने उस समय जिनकी ओर संकेत किया था, वह है कमला की इन्दिरा।

विवाह के बाद पंडित जवाहरलाल जी ने दो-तीन वर्ष तक बैरिस्टरी की। बैरिस्टरी में उनका मन न लगता था। उन्हें भारत की राजनीति से सदा से प्रेम रहा है। इसी से वे समय-समय पर इसमें भाग लेते रहे। उनके इस जीवन का कमला जी के जीवन पर भी अत्यधिक

प्रभाव पड़ा। ज्यों ज्यों पंडित जवाहरलाल जी की जीवन धारा बदलती गई; त्यों-त्यों कमला जी के जीवन पर भी उसका प्रभाव पड़ता गया। और कुछ दिनों के बाद यह प्रभाव इतने उग्र रूप से पड़ा, कि कमला जी राष्ट्र की एक अनन्य सेविका समझी जाने लगीं।

(६)

इसी समय पञ्जाब का भीषण हत्याकाण्ड हुआ। चारों ओर उत्तेजना की एक लहर सी फैल गई। देश के सभी मनुष्यों ने एक स्वर से सरकार की निन्दा की। स्थान-स्थान पर सभायें हुईं, और उनमें सरकार की निन्दा के प्रस्ताव पास किये गये। पंडित जवाहरलाल जी और पं० मोतीलाल जी ने स्पष्ट रूप से सरकार के इस कांड की निन्दा की। पं० मोतीलाल जी ने तो भारत सरकार के पास इस सम्बन्ध में एक तार भी भेजा था।

पंडित जवाहरलाल जी के हृदय पर पञ्जाब के भीषण हत्याकांड का अधिक प्रभाव पड़ा। उनका हृदय गरीबों असहायों के लिए तड़प उठा। उनके जीवन के साथ ही कमला जी के जीवन में भी अद्भुत परिवर्तन हुआ। उनका हृदय दयालु और स्नेहमय तो था ही ? पञ्जाबी भाइयों की दुर्दशा के समाचारों में पढ़कर उनकी आँखों में आंसू आ

गये। उन्होंने भी देश के साथ ही सरकार के इस कांड की स्पष्ट रूप से निन्दा की थी।

पञ्जाब के भीषण हत्या काण्ड के समय ही से कमला जी के हृदय में स्वदेश के प्रति गहरी सहानुभूति जागृति हो उठी थी। यह सच है, कि कमला जी को राजनीतिक मैदान में लाने वाले पंडित जवाहरलाल जी हैं, किन्तु साथ ही यह भी सच है, कि कमला जी के हृदय में स्वदेश के प्रति पहले ही से गहरा अनुराग था। वे आनन्द भवन में बादशाही जीवन बिताने वाले प० मोती-लाल जी की जहाँ पुत्रवधू थीं, वहाँ उनके हृदय में गरीबों के लिए प्रेम भी अधिक था। गरीबों के प्रति उनका यह प्रेम ही तो उन्हें स्वतन्त्रता के आन्दोलन में खींच लिया। इसी के ऊपर तो उन्होंने अपने सारे सुखों का क़ुर्बान कर दिया। अपने सुखों को गरीबों के प्रेम पर क़ुर्बान कर देने वाली महिला शायद ही आप को कोई संसार में मिले।

पञ्जाब हत्याकांड के बाद ही देश में जागृति की एक अनोखी लहर बह चली। बड़े बूढ़े जवान सभी स्वतंत्रता के उन्माद में पागल हो गये। चारों ओर स्वतन्त्रता की जयजयकार होने लगी। महात्मा गाँधी ने असहयोग का बिगुल बजा कर सबकी नसों में जादू सा फूँक दिया।

वकील अदालतों को छोड़ने लगे और विद्यार्थी सरकारी स्कूलों को। पंडित जवाहरलाल जी ने बैरिस्टरी छोड़कर असहयोग में भाग लिया। भाग ही नहीं लिया, बल्कि उन्हें जेल में भी जाना पड़ा। पति की अनन्य परायणा कमला जी फिर भला कैसे शान्त रह सकती थीं ? उन्होंने भी असहयोग का बाना धारण किया। वे भी अपने पति के साथ ही भारत की स्वतंत्रता के लिये अपने घर से निकल पड़ीं। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने सारे सुखों को उस पर भेंट भी चढ़ा दी।

(७)

सन् १९२० और २१ के दिन भारत की स्वतंत्रता के इतिहास में अपना अमर स्थान रखते हैं। महात्मा गाँधी ने असहयोग की घोषणा करके एक हलचल सी उत्पन्न कर दी थी। सरकारी, गैर सरकारी सभी ढंग के आदमी उससे प्रभावित हो उठे थे। महात्मा गाँधी का अस्तित्व हर एक हृदय पर अपना अभिनय कर रहा था। चारों ओर गांधी की जय, चारों ओर मोती जवाहर की जयजयकार !! शहरों की तो बात ही क्या, गांवों में भी आन्दोलन की धूम थी।

असहयोग के दिनों में लोग पंडित मोतीलाल जी और पंडित जवाहरलाल जी को सबसे अधिक महत्त्व दिया

करते थे। गावों और शहरों में भी इन दोनों महापुरुषों का नाम विशेष रूप से लिया जाता था। लोग इनके सम्बन्ध में तरह तरह की नई कहानिया कहा करते थे। इसमें सन्देह नहीं, कि असहयोग का बिगुल महात्मा गाधी ने बजाया, किन्तु वह सर्व व्यापी हुआ केवल नेहरू परिवार के त्याग के कारण। पंडित मोतीलाल और पण्डित जवाहरलाल जी के जीवन की कहानियों को जो सुनता, वही सरकार से असहयोग करने के लिए तैयार हो जाता। माघ के महीने में जब माघ का मेला लगता है, और दूर-दूर से यात्री-गण त्रिवेणी में स्नान करने के लिए आते हैं, तब देहातियों के 'नेहरू' जी के आनन्द भवन में भी एक भीड़ सी लग जाया करती है। यह सब नेहरू परिवार का त्याग नहीं तो और क्या है!

कमला जी भला असहयोग से कैसे अछूती रह सकती थीं? पति ने बैरिस्टरी छोड़कर अपने सारे विदेशी भड़कीले कपड़े उतार दिये। ससुर ने देश के गरीबों से मिलकर उनकी सेवा का महा मन्त्र लिया। फिर भला कमला जी अपने कर्त्तव्यों से कैसे व चित रह सकती थीं, उन्होंने भी अपने पति और ससुर के साथ ही देश की सेवा का महा-मत्र लिया। उन्होंने भी उनके साथ ही सुखों को तिलांजलि देकर देश के लिए विपत्तियों को झेलने का पाठ पढ़ा।

उन दिनों महात्मा गाँधी की आज्ञानुसार सारे देश में विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाई जा रहीं थीं। कमला जी ने भी अपनी अमूल्य साड़ियों की होलियां जलाई। उन्होंने अपने ही विलायती कपड़ों को अग्नि के हवाले नहीं किये, बल्कि उन्होंने दूसरों से भी इसके लिए प्रार्थना की। वे जब तक जीती रहीं, तब तक स्वदेशी का प्रचार करना उनका व्रत रहा। उन्होंने कई बार स्वदेशी प्रचार के लिए देहातियों में व्याख्यान भी दिया।

असहयोग के समय में भारतीय स्त्रियों के हृदय पर नेहरू परिवार की स्त्रियों के त्याग का अधिक प्रभाव पड़ा। जब अखबारों में नेहरू परिवार की स्त्रियों का हाल निकलता था, तब लोग उसे बड़े भाव से पढ़ते थे। पढ़ते ही नहीं थे, बल्कि उससे अधिक प्रभावित भी हुआ करते थे। कमला जी के विदेशी कपड़ों के त्याग का हाल सुनकर न जाने कितनी स्त्रियों ने अपने विदेशी कपड़ों को अग्नि के हवाले कर दिये। जो ही अखबारों में यह पढ़ता, कि प० जवाहरलाल जी की स्त्री कमला जी विदेशी साड़ियों को त्याग कर अब खद्दर की मोटी धोतियां पहनने लगीं हैं, उसी के हृदय में स्वदेशी कपड़े के प्रति एक प्रेम सा उत्पन्न हो जाता। न जाने कितनी स्त्रियों ने इसी बात पर स्वदेशी कपड़ों को अपनाया। जो

लोग उन दिनों शहरों और गांवों में घूमते थे, उन्हें यह बात भली भांति मालूम होगी। यद्यपि कमला जी ने विदेशी कपड़ों के जलाने के अतिरिक्त असहयोग आन्दोलन में और किसी प्रकार ,का भाग न लिया था, किन्तु फिर भी उनके नाम ने एक अद्भुत जागृति उत्पन्न की थी ?

(८)

कमला जी का स्वास्थ्य आरम्भ ही से अधिक खराब रहा है। सौभाग्यशालिनी होने पर भी वे सदा स्वास्थ्य-सुख से वंचित रहीं। कोमल प्रकृति की तो वे इतनी थीं, कि तनिक भी असावधानी से प्रायः अस्वस्थ हो जाया करती थीं। विवाह के कुछ ही दिनों बाद तक वे स्वास्थ्य की दृष्टि से कुछ सुखी रह पाईं, नहीं तो उनका सारा जीवन रोगों से लड़ते-झगड़ते ही बीता। उन्हें एक ऐसी भयङ्कर बीमारी ने अपने चंगुल में जकड़ लिया, कि फिर उससे इनका छुटकारा न हो सका।

सन १९२० और २१ में इनके शरीर में तपेदिक के कुछ कुछ लक्षण दीखने लगे थे। प० जवाहरलाल जी की बार-बार गिरफ्तारी ने भी इनके हृदय पर अधिक प्रभाव डाला। इनके शरीर में मानसिक वेदना की सृष्टि हुई। फल स्वरूप इस भयङ्कर बीमारी ने धीरे

धीरे अपना जाल बुनना आरम्भ किया । कमला जी नित्य ही अस्वस्थ रहने लगीं । पहले तो इनकी प्रयाग में ही चिकित्सा कराई गई । ऐसा भी प्रसिद्ध डाक्टर या वैद्य न बचा होगा, जिसकी चिकित्सा न की गई हो । किन्तु कोई लाभ न हुआ । इसके बाद वे पहाड़ पर कई महीने तक पण्डित जवाहरलाल जी के साथ रहीं । वहाँ भी डाक्टरों द्वारा चिकित्सा होती रही । किन्तु फिर भी स्वास्थ्य में कुछ सुधार न हुआ ।

अब डाक्टरों ने इन्हें योरप जाने की सलाह दी । युरोप में स्वीटजरलैण्ड स्वास्थ्य की दृष्टि से एक अत्यन्त रमणीक स्थान है । बड़े बड़े रोगों के रोगी वहाँ प्रति वर्ष स्वास्थ्य सुधार के लिए जाया करते हैं । रुपये की कमी तो थी ही नहीं । पण्डित जवाहरलाल जी कमला जी को लेकर युरोप चले गये । वहाँ इनके साथ कुमारी इन्दिरा और श्रीमती कृष्णा नेहरू भी गई थीं ।

स्वीटजरलैण्ड में जिनेवा के सेनेटोरियम में पण्डित जी कमला जी के साथ ठहरे । वहीं कमला जी की चिकित्सा भी हुई । कई महीने तक कमला जी की चिकित्सा होती रही वहाँ की अनुकूल चिकित्सा से कमला जी को लाभ हुआ । और वे स्वस्थ हो गई जब कमला जी स्वस्थ हो गई तब पण्डित जवाहरलाल जी ने कई देशों

की यात्रा की। इसी यात्रा में वे ब्रूसेल्स में होने वाली साम्राज्य-विरोधिनी सभा में भी सम्मिलित हुए थे।

(९)

जब कमला जी युरोप से लौटकर आई, तब उस समय देश की एक विचित्र परिस्थिति थी। असहयोग आन्दोलन पूर्ण रूप से शान्त हो चुका था, किन्तु असन्तोष की आग धीरे धीरे सुलग ही रही थी। इसी समय मद्रास में कांगरेस हुई। कांगरेस में पण्डित जवाहरलाल जी ने पूर्ण स्वतंत्रता का एक प्रस्ताव रक्खा। प्रस्ताव तो न पास हुआ, किन्तु कांगरेस ने औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग सरकार से पेश की। इसके बाद नेहरू कमेटी की सृष्टि हुई, और उसने स्वराज्य का एक ढाँचा तैयार करके देश के सामने रक्खा। स्वराज्य का यह ढाँचा, पंडित मोतीलाल जी की अध्यक्षता में तैयार किया गया था। किन्तु पण्डित जवाहर लाल जी उसके सिद्धान्तों के विरुद्ध थे। लखनऊ में जब सर्वदल सम्मेलन की बैठक हुई, तब केवल इसी बात को लेकर पण्डित मोतीलाल जी और प० जवाहरलाल जी में कुछ विरोध भी उठ खड़ा हुआ था। और यह विरोध लाहौर कांग्रेस तक बराबर आपस में चलता रहा। कमला जी ने इस विरोध को दूर कराने की काफी कोशिश की थी। किन्तु कदाचित् उन्हें

सफलता न मिली। महात्मा गांधी ने भी इसके लिए पंडित ज्वाहर लाल जी को समझाया था। किन्तु पंडित जवाहर लाल जी गरीबों और मजदूरों से अधिक प्रेम करते हैं। इसलिए वे इनके हित की बातों को कभी नहीं छोड़ सकते थे। महात्मा गाधी के समझाने बुझाने पर भी वे अपने विचारों पर अटल रहे।

सन् १९२९ में देश में फिर एक उत्तेजना की लहर बह चली। कलकत्ता में कांग्रेस ने सरकार को यह चेतावनी दी, कि यदि सरकार एक वर्ष में भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य न दे देगी तो काँगरेस पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर देगी। एक ओर यह घोषणा की गई। दूसरी ओर देश के कोने कोने में स्वयंसेवकों का सगठन किया जाने लगा। कमला जी ने प्रयाग का कार्य अपने ऊपर लिया। उन्होंने जारों से स्वयंसेवकों की भरती का काम शुरू कर दिया। उन्होंने खुद स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखाया। उनके साथ कृष्णा नेहरू ने भी स्वयसेवकों की श्रेणी में अपना नाम लिखवाया था।

कमला जी मर्दानी पोशाक में स्वयंसेवकों का काम किया करती थीं। जिसने इस वीर महिला को कृष्णा नेहरू के साथ मर्दानी पोशाक में देखा वही आश्चर्य में पड़ गया। कमला जी के उद्योग से शहर की बहुत सी स्त्रियाँ

ने स्वयसेवकों में अपना नाम लिखा दिया। उनमें बहुत तो बड़े बड़े घरों की लड़कियाँ थीं। इन स्त्री स्वयं-सेविकाओं ने ही प्रयाग में आन्दोलन को बहुत दिनों तक जारी रक्खा था।

स्वयसेविकाओं की सख्या वृद्धि के समय कमला जी ने बड़े परिश्रम से काम किया था। जिसने उन्हें पैदल चलते हुए देखा, उसी ने उनकी प्रशंसा की। वे प्रायः लोगों के घर पैदल जातीं और स्वय सेविकाओं की संख्या वृद्धि के लिए उद्योग किया करती थीं। वे अपने धुन की पक्की थीं। जिस काम को हाथ में लेतीं उसे बड़ी खूबी के साथ पूरा करती थीं। उनके उद्योग से ही प्रयाग की स्त्रियों में थोड़े से दिनों में काफी जागृति फैल गई थी।

(१०)

कलकत्ता में काँगरेस ने सरकार को एक वर्ष में औपनिवेशिक स्वराज्य दे देने की चेतावनी दी थी; किन्तु सरकार पर इनका कुछ प्रभाव न पड़ा। इसका यह परिणाम हुआ कि लाहौर में काँगरेस ने पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर दी। सारे देश में उत्तेजना की लहर सी बह चली। महात्मा गाँधी सरकार को सूचना देकर नमक बनाने के लिये डाण्डी की ओर पैदल ही कुछ चुने हुए स्वयंसेवकों के साथ चल पड़े।

सारे देश में नमक कानून तोड़ा जाने लगा। महा-महात्मा गाँधी ने सत्याग्रहियों के साथ डाँडी में जाकर सरकार के नमक कानून को तोड़ा। वहीं वे गिरफ्तार भी किये गये। प० जवाहरलाल जी ने भी प्रयाग में नमक बनाया। जिस दिन उन्होंने नमक बनाया था, उस दिन तो वे न गिरफ्तार हुए। किन्तु उसके दूसरे या तीसरे दिन वे सहसा गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये।

पंडित जवाहरलाल जी की गिरफ्तारी से जहां समस्त देश में उत्तेजना की एक लहर बह चली, वहां कमला जी के हृदय में भी एक प्रकार की शक्ति जाग उठी। पंडित जवाहरलाल जी के गिरफ्तार होने के साथ वे भी स्वतंत्रता के मैदान में कूद पड़ीं। उन्होंने भी अपने हाथों से नमक बनाया। किन्तु सरकार ने उन्हें गिरफ्तार न किया।

कमला जी ने एक बार नहीं अनेक बार इलाहाबाद में नमक बनाया। उन्होंने बार बार सरकार के नमक कानून को तोड़ा। किन्तु फिर भी उस समय कमला जी गिरफ्तार न हुई। परन्तु उन्होंने काम खूब किया।

वे स्वयंसेवकों को अपने पास से भोजन और वस्त्र भी देती थीं। उनका हृदय अधिक दयालु था। उनसे

न किसी का दुख न देखा जाता था। स्वयंसेवक उनके इस स्वभाव को भली भांति जानते थे। अतएव जब किसी को किसी चीज की आवश्यकता पड़ती, तब वह झट कमला जी के पास दौड़ा जाता। कमला जी प्रत्येक स्वयं सेवक की बात को ध्यान से सुनतीं और उसके साथ दयालुता का व्यवहार किया करती थीं।

(११)

पंडित जवाहरलाल जी गिरफ़ार किये जा चुके थे। कमला जी प्रतिदिन नमक बनाती थीं। बनाती ही नहीं थीं, बल्कि नमक बनाने के लिये लोगों को उपदेश भी दिया करती थीं। प्रयाग की ऐसी कोई गली नहीं, जिसमें कमला जी की आज्ञा से नमक न बनाया गया हो। उस समय पंडित मोतीलाल जी भी जेल के बाहर थे। पंडित जवाहरलाल जी की गिरफ्तारी से उनके हृदय में भी एक आग सी भड़क उठी थी। उन्होंने स्वय नमक बनाया।

किन्तु उस समय पंडित मोतीलाल जी न गिरफ़ार किये गये। उन्होंने भी कई बार नमक कानून को तोड़ा। वे प्रतिदिन कई बार आनन्द भवन में नमक बनवाया करते थे। नमक के साथ ही साथ, पंडित जी ने विदेशी कपड़े के बहिष्कार का भी अन्दोलन किया। उन्होंने बड़े बड़े बजाजों से मिलकर विदेशी कपड़ों पर सील-मुहर

करने की प्रथा चलाई। इसके बाद ही पण्डित जी गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें ६ महीने की सजा दी गई।

पण्डित मोतीलाल जी की गिरफ्तारी के बाद कमला जी जैसे आग की एक चिनगारी सी बन गईं। वे दूने उत्साह और दूनी शक्ति के साथ काम करने लगीं। उनके उस दुबले-पतले शरीर में न जाने कहां से बिजली की सी ताकत बरस पड़ी। उस समय नमक सत्याग्रह कुछ मन्द सा हो चला था। सरकार नमक सत्याग्रहियों को गिरफ्तार भी न करती थी। कांग्रेस कार्य-समिति की आज्ञानुसार अब नमक सत्याग्रह का स्थान विदेशी कपड़े के बहिष्कार ने ले लिया था। कमला जी ने भी इस काम को अपने हाथ में लिया। वे चौक के प्रत्येक बजाज की दूकान पर पैदल जातीं और उससे विदेशी कपड़ों पर सील मुहर करने की प्रार्थना करती थीं। चौक के अधिकांश बजाजों के हृदय पर कमला जी की बातों का प्रभाव पड़ा। और उन सबों ने विदेशी कपड़ों का बेचना बिल्कुल बन्द कर दिया।

कुछ दूकान ऐसी अवश्य थीं, जिसमें विदेशी कपड़े बिका करते थे। कमला जी ने ऐसी दूकानों पर पिकेटिंग करनी शुरू की। वे गर्मी की तपती हुई लू में स्वयं सेविकाओं के साथ स्वयं पैदल चलतीं, और विदेशी

कपड़ा न लेने के लिये लोगों से प्रार्थना किया करती थीं। उस समय विदेशी कपड़े के बहिष्कार का भार इन्हीं के ऊपर था। ये इलाहाबाद शहर में सर्वत्र घूमघूम कर विदेशी कपड़े के बहिष्कार का आन्दोलन कर रही थीं। गर्मी के महीने में सूर्य आग के गोले की भाँति जल रहा था। गर्म हवा शरीर में लगती, तो ऐसा जान पड़ता मानों कोई ऊपर से अँगारे उड़ेल रहा हो। किन्तु कमला जी को उस समय भी चैन नहीं। वे उस समय भी मोटर पर कटरा से चौक, और चौक से दारागंज तक चक्कर लगाया ही करती थीं।

एक दिन बड़े जोर की लू चल रही थी।। दो पहर का समय था। ऊपर सूरज तप रहा था, और नीचे पृथ्वी। पृथ्वी पर पैर रखते ही ऐसा मालूम होता, मानों पैरों के नीचे अँगारे बिछे हों। इसी समय कमला जी आनन्द भवन से मोटर पर निकल पड़ीं और चौक में जाकर स्वयं पिकेटिंग करने लगीं। जब कोई कपड़े का खरीदार कपड़ा खरीदने के लिये दूकान में जाने लगता, तब वे झट मोटर से नीचे उतर कर उसके सामने खड़ी हो जातीं। जब वह उनकी बात मानकर उस दूकान से चला जाता; तब वे धूप से बचने के लिये फिर मोटर में बैठ जातीं। किन्तु एक क्रूर हृदयवाले मनुष्य से उनका यह

सुख भी न देखा गया। उसने अपने एक साथी से व्यंग भरे शब्दों में धीरे से कहा, 'कमला जी दूसरों को तो विदेशी कपड़ा खरीदने से मना कर रही हैं, किन्तु स्वयं इस समय विलायती कार पर बैठी हुई हैं।' उसने यह बात कही तो धीरे से थी, किन्तु कमला जी ने उसे सुन लिया। अपने समस्त सुखों को राष्ट्र की वेदी पर कुर्बान कर देने वाली कमला के लिये भला मोटर का यह तुच्छ सुख क्या अस्तित्व रखता था। उन्होंने शीघ्र मोटर से नीचे उतर कर ड्राइवर को हुक्म दिया, कि इसे घर ले जावो। ड्राइवर मोटर लेकर चला गया और कमला जी उस आग सी तपती हुई भूमि पर खड़ी होकर पिकेटिंग करने लगीं।

यह है कमला जी का अदम्य साहस। उस सुकुमार और सुन्दरता की साक्षात् प्रतिमा में जो इस भाँति अग्नि के स्फुलिङ्गों पर खड़ी होकर पिकेटिंग करते हुये देखता उसी के हृदय में इनके प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो जाता। विदेशी कपड़ों के बड़े बड़े प्रेमी जन तक इस वीर महिला को धूप में पिकेटिंग करते हुए देखते, तब उनको आगे बढ़कर दूकान में जाने की हिम्मत न होती थी। कमला जी ने अपने अथक उद्योग से थोड़े ही दिनों में प्रयाग के विदेशी कपड़ों का बाजार बिलकुल बन्द सा करवा दिया था।

(१२)

कमला जी ने केवल पिकेटिंग ही नहीं की, उन्होंने स्वदेशी के प्रचार के लिये गांवों का दौरा भी किया था। वे प्रत्येक गाव में कार्य-कर्त्ताओं के साथ पैदल जातीं, और ग्रामीणों में स्वदेशी का प्रचार किया करती थीं। जिन कार्य-कर्त्ताओं ने कमला जी के साथ स्वदेशा प्रचार का काम किया है, वे इस समय भी उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। उनका कहना है, कि कमला जी जिस लगन से देहातों में काम करती थीं, वह लगन बड़े बड़े नेताओं में भी नहीं पाई जाती।

कमला जी ग्रामीणों से अधिक प्रेम भी करती थीं। उनकी दीनता की बातें सुनकर उनके हृदय में दया का स्रोत सा उमड़ पड़ता था। एक बार कमला जी एक गांव में स्वदेशी का प्रचार करने गईं। गांव वाले उनका नाम सुनकर उन्हें देखने के लिये टूट पड़े। कमला जी ने उन्हें स्वदेशी पहनने का उपदेश दिया। जब उन्होंने अपना व्याख्यान समाप्त कर दिया; तब न जाने कहां से एक बूढ़ा देहाती उनके सामने आ पहुँचा। उसने कमला जी से हाथ जोड़कर कहा, देवी जी! मैं स्वदेशी तो पहनना चाहता हूँ, किन्तु मेरे पास इतने पैसे नहीं, कि मैं इस समय स्वदेशी कपड़ा खरीद सकूँ। यह धोती जो मैंने

पहनी है, विलायती है। न जाने कब यह फटेगी; और न जाने कब मैं फिर स्वदेशी धोती खरीदूँगा।'

उसकी बात सुनकर कमला जी का हृदय भर आया। उन्होंने अपने पास से एक रुपया देकर कहा, इस रुपये से स्वदेशी धोती खरीद लो। और इस विलायती धोती को आग के हवाले कर दो। कमला जी की दयालुता के संबंध में इसी ढंग की और बहुत सी कहानियां सुनने में आती हैं। एक बार ये चौक में किसी काम से गई थीं। एक भिखारिन एक दुकानदार के सामने पैसे के लिये हाथ पसार कर खड़ी थी। दुकानदार ने कमला जी को मोटर से उतरते हुये देखा। उसने भिखारिन को संकेत से बता दिया, कि उनके पास जाकर माँगो। भिखारिन कमला जी के सामने जाकर खड़ी होगई। उसकी गोद में एक छोटा सा बच्चा था। कमला जी ने पहले भिखारिन को ध्यान से देखा। भिखारिन के बच्चे की दयनीय दशा देखकर उनका हृदय करुणा से तड़प उठा। उन्होंने शीघ्र एक रुपया निकाल कर उसके हाथ पर रख दिया। वह उन्हें आशीर्वाद देती हुई चली गई।

प्रयाग के स्वदेशी आन्दोलन में कमला जी का अधिक हाथ था। उन्होंने स्त्रियों में घूमघूम कर स्वदेशी का प्रचार किया था। स्वदेशी के लिये उन्होंन

कई बार चन्दा भी एकत्र किया था। वह चन्दे एकत्र करने में जिस तल्लीनता से काम करती थी, उसे देख कर बड़े बड़े लोग भी आश्चर्य में पड़ जाते थे।

(१३)

सन् १९३१ के वे दिन किसे याद न होंगे। चारों ओर जोश का एक सागर सा उमड़ रहा था। स्वतन्त्रता ने अपना त्रिशूल बजा कर सभी को बेचैन बना दिया था। हजारों स्त्री-पुरुष प्रति दिन जेल जा रहे थे। सरकार की जेलें सत्याग्रहियों से भर गई थी। सरकार स्वयं चिन्ता में पड़ गई थी। प्रत्येक शहर में प्रति दिन बड़े बड़े जुलूम निकल रहे थे। उन जुलूमों में लाखों की संख्या में स्त्री पुरुष और बच्चे सम्मिलित रहते थे। कहीं कहीं पर पुलिस उन पर डन्डे भी चलाती। कई स्थानों में तो पुलिस ने जुलूस के ऊपर घोड़े भी दौड़ाये।

पंडित मोतीलाल जी की गिरफ्तारी का हाल तो आप पढ़ ही चुके हैं, आप यह भी पढ चुके हैं, कि उन्हें छ' महीने की सजा दी गई थी। पंडित मोतीलाल जी जेल में जाकर बीमार हो गये। उनके थूक में खून आने लगा। उनकी पुरानी दमे की बीमारी फिर जोरों से उभड़ चली। सरकार ने उन्हें बिना किसी शर्त के छोड़ दिया।

पंडित जी प्रयाग चले आये और आनन्द भवन में रहकर अपनी चिकित्सा कराने लगे ।

उन दिनों देश के अन्यान्य शहरों की भाँति प्रयाग में भी प्रतिदिन जुलूस निकल रहा था । सरकार का यह आदेश था, कि कांगरेस का कोई जुलूस सिविल लाइन से होकर न जाये । उस ओर सरकार ने कांगरेसियों के लिए १४४ दफा लगा दी थी । इधर कांगरेस सरकार के इस कानून को तोड़ने के लिए बिलकुल तुली हुई थी। कांगरेस की ओर से रोजही बड़े बड़े जुलूस निकलते और पुलिस के सिपाही उन्हें रोज ही मार्ग में रोक लिया करते थे । कभी कभी उनमें दो एक गिरफ्तारियाँ भी हो जाया करती थीं ।

एक दिन कमला जी के नेतृत्त्व में एक बहुत बड़ा जुलूस निकला । उस जुलूस में करीब पचासों हजार आदमी सम्मिलित थे। यदि मैं भूलती नहीं तो उस जुलूस में बाजे का भी प्रबन्ध किया गया था। जुलूस सिविल लाइन से होता हुआ आगे बढ़ा । किन्तु पुलिस के सिपाहियों ने उसे एलबर्ट रोड पर रोक लिया। जुलूस के सभी आदमी सड़क पर बैठ गये । पुलिस उन्हें रोक कर सड़क पर खड़ी रही । आधी रात तक दोनों ओर से मोर्चे बन्दी का यह दृश्य स्थित रहा ।

इस पुस्तक के आरम्भ में कह चुके हैं कि प० मोती लाल जी अपनी पतोहू पर कितना वात्सल्य भाव रखते थे। इसका उल्लेख करते हुए बतलाया है कि कमला जी के यहां पर जुलूस के साथ रोक लिए जाने पर पंडित जी किस प्रकार उत्तेजित होकर सिविल लाइन पहुँचे और अपने सिंह नाद से किस प्रकार वहां की स्थिति को सँभाला।

(१४)

उन दिनों करबन्दी का आन्दोलन भी बड़े जोरों में व्यापक हो चला था। इस आन्दोलन का यू० पी० में अधिक दौर दौरा था। दूसरे प्रान्तों में करबन्दी के आन्दोलन ने इतना उग्र रूप धारण नहीं किया था। यू० पी० के अधिकांश सत्याग्रही करबन्दी के आन्दोलन में ही जेल गये थे। इलाहाबाद इस आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र समझा जाता है। इलाहाबाद के इस जिले में इस आन्दोलन की धूम थी। कांगरेस के कार्य-कर्त्ता जिले के गांवों में जाकर करबन्दी आन्दोलन को आगे बढ़ाने की कोशिश कर रहे थे। उन में से सैकड़ों प्रति दिन गिरफ्तार भी किये जाते थे। किसी दिन करछना तहसील से भरी हुई लारी आती थी, तो किसी दिन सोराव से। किन्तु फिर भी सत्याग्रहियों की संख्या कम न होती थी।

कमला जी इलाहाबाद जिले के इस करबन्दी आन्दोलन की एक प्रमुख कार्य कर्त्री थीं। उन्होंने स्वयं गाँवों में घूमकर करबन्दी आंदोलन का प्रचार किया। वे स्वयं सबको के साथ न जाने कितने गावों में पैदल गई और न जाने कितनी सभाओं में उन्होंने इसके सम्बन्ध में व्याख्यान दिये। वे गर्मी के महीने में पैदल गावों में जाती थीं। उन्होंने धूप और शीत की कुछ भी परवा न की। उनकी इस उपेक्षा का उनके स्वास्थ्य पर भी अधिक प्रभाव पड़ा। यदि वे इस तरह अपने को राष्ट्र-यज्ञ में होम न कर देती तो उनका स्वास्थ्य इतने शीघ्र और इस भाँति अधिक खराब न हो जाता और वे कदाचित इतने शीघ्र भारत को विलपताहुआ छोड़कर स्वर्ग न सिधार न जातीं।

कमला जी स्वय तो कष्ट उठा लेती थीं, किन्तु दूसरों का कष्ट उनसे नहीं देखा जाता था। वे जब किसी को कष्टमें देखतीं; तब उनके हृदय में एक प्रकार की सहानुभूति सी दौड़ जाती थी। गावों के दौरे के समय वे स्वय न खातीं, किन्तु भूखे सत्याग्रहियों को खिला देती थीं। न जाने कांगरेस के कितने सत्याग्रही उनसे भोजन और वस्त्र पाते थे। कमला जी की इस सहानुभूति ही के कारण सत्याग्रही उनको माता के समान पूजा करते थे।

भला ऐसी सहानुभूति-हृदया महिला की बात कौन न मानता ? कमला जी ने थोड़े ही दिनों में गाँवों के निवासियों के हृदय पर विजय सी प्राप्त कर ली । वे उनके इशारे पर नाचने के लिए तैयार हो गये । गावों में चारों ओर कमला जी के नाम का डंका बज गया । उन दिनों इलाहाबाद के जिले के गावों में जितना कमला जी का प्रभाव सर्व-व्यापक हो चला था, उतना शायद किसी का न था । वे जब एक गांव में व्याख्यान देने के लिए गईं थीं, गिरफतार कर ली गईं । उन पर सरकार के विरुद्ध लोगों को भड़काने का अपराध लगाया गया था । इस अपराध में कमला जी को कई महीनों की सजा मिली और वे लखनऊ जेल में ले जाकर रक्खी गईं ।

(१५)

जिस समय सरकार और कांगरेस में अभी सुलह की बात चीत चल रही थी, कि इसी समय पंडित मोतीलाल जी की बीमारी और बढ़ गई । इनकी बीमारी से सारे देश में शोक की एक घटा सी छा गई । इस समय पंडित जवाहरलाल जी जेल में थे, और कमला जी भी। पंडित मोतीलाल जी बीमारी जब अधिक बढ़ी, तब सरकार ने कमला जी को जेल से छोड़ दिया ।

उस समय कमला जी लखनऊ के सेंट्रल जेल में थीं। लखनऊ से कमला जी को पुलिस-सुपरिन्टेंडेन्ट अपनी मोटर पर बैठाकर आनन्द भवन पहुँचाने आया था। उसके साथ एक स्त्री अधिकारी भी थी।

कमला जी आनन्द भवन पहुँचकर पंडित मोती लाल जी की सेवा-सुश्रूषा में लग गईं। इसी समय सरकार और काँगरेस में एक अस्थाई सन्धि हुई। इसी सन्धि के अनुसार काँगरेस के सभी नेता जेल से छोड़ दिये गये। पं० जवाहरलाल भी जेल से छूटकर प्रयाग आये।

उस समय प्रयाग में कार्य समिति की बैठक होने वाली थी। इसलिए बड़े बड़े नेता जेल से छूटते ही प्रयाग पहुँचे। महात्मा गांधी और सरोजिनी नाइडू भी आनन्द भवन में मौजूद थीं। पंडित मोतीलाल जी एक्सरे परीक्षा के लिये प्रयाग से लखनऊ ले जाये गये थे। वहीं ६ फरवरी को साढ़े ६ बजे पंडित जी का देहावसान होगया।

पंडित मोतीलाल जी की मृत्यु का कमला जी के हृदय पर अधिक प्रभाव पड़ा। जिस दिन पंडित मोती लाल जी मरे, उस दिन उन्होंने अनुभव किया, कि आज अपने एक सच्चे पिता के सच्चे प्रेम से सदा के लिये वंचित हो गईं।

(१६)

सन्धि के बाद महात्मा गाँधी युरोप गये। आन्दोलन कुछ दिनों के लिये बन्द हो गया। इस समय पंडित जवाहरलाल जी ने यू० पी० के कई शहरों का दौरा किया। वे लोगों से सन्धि के नियमों का पालन करने के लिये जोर दिया करते थे। कमला जी ने इन दिनों यही काम किया।

आन्दोलन में बराबर काम करने के कारण पंडित जवाहरलाल जी का स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया था। कमला जी भी फिर धीरे धीरे अस्वस्थ होने लगी थीं। इसलिए पंडित जवाहरलाल जी मई के महीने में कमला जी के साथ लंका चले गये। लंका में पंडित जवाहरलाल जी और कमला जी का अत्यन्त स्वागत हुआ।

पंडित जी जब कमला जी के साथ लंका से लौट कर आये तब फिर देश में एक सनसनी सी फैल रही थी। इस समय गोलमेज कान्फरेन्स भी खतम होगई थी। महात्मा गाँधी युरोप से भारत के लिए प्रस्थान कर चुके थे। महात्मा गाँधी मार्ग ही में थे, कि भारत में फिर आन्दोलन प्रबल रूप से चल पड़ा। परिणाम स्वरूप पंडित जवाहरलाल जी फिर गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये। और लोगों ने फिर कमला जी को धूप में इधर उधर फिर कर काम करते हुए देखा।

इधर कांगरेस के आन्दोलन ने प्रबल रूप धारण किया। और इधर सरकार का दमन चक्र भी जोरों से चला। सरकार ने थोड़े ही दिनों में कांगरेस के बड़े बड़े नेताओं को फिर जेल पहुँचा दिया। वह आन्दोलन पिछले साल के आन्दोलन से कहीं अधिक उग्र और कहीं सर्व व्यापक था। इस आन्दोलन में सरकार ने कई जगह गोलियां भी चलाई थीं।

इलाहाबाद भी उन शहरों में अपना एक विशेष स्थान रखता है। यहाँ के सभी प्रमुख कार्यकर्त्ता गिरफ्तार करके जेलों में पहुँचा दिये गये थे। बच गई थीं, केवल कमला और विजय लक्ष्मी। सरकार ने शहर में भी १४४ दफा लगा दी थी। सारी कांगरेस कमेटियां गैर कानूनी करार दे दी गई थीं। कांगरेस का आफिस जिस मकान में रहता, पुलिस फौरन उसे अपने अधिकार में कर लेती थी। परिणाम यह हुआ कि लोग अब छिप छिपकर काम करने लगे। कमला जी ने बड़ी सफलता से उस समय काम किया। पुलिस इनके पीछे सदैव पड़ी रहती थीं, किन्तु वे अपना काम करती ही जाती थीं। वे दिन भर घूम घूमकर स्वयंसेवकों का संगठन करतीं; उन्हें भोजन पहुँचातीं और उन्हें अहिंसा पर डटे रहने के लिये उपदेश देतीं। कमला जी की सफलता ही से उस विकट समय

में भी प्रयाग में स्वयंसेवकों और स्वयं सेविकाओं का सराहनीय स गठन था।

वह कमला जी के उस संगठन का प्रभाव था, कि प्रति दिन स्वयसेवकों की टोली सरकार के १४४ दफा को तोड़ने के लिए निकलती, और प्रति दिन गिरफ्तार होती। कई दिन तो पुलिस वालों की ओर से डंडे भी चलाये गये थे। एक दिन जब चौक में जुलूस निकला, तब पुलिस ने उसे रोक लिया। हजारों आदमी इस जुलूस को देखने के लिए चारों ओर खड़े हुए थे। इस जुलूस में कमला जी भी थीं। पुलिस के रोकने पर जुलूस सड़क के एक किनारे पर बैठ गया। जुलूस को तितर बितर करने के लिए सिपाहियों ने उन पर घोड़े भी दौड़ाने की कोशिश की थी। उस जुलूम में अधिकतर स्त्रियां ही थीं। पुलिस वालों ने एक घेरा बनाकर स्त्रियों को अलग कर दिया था। इस घेरे में कमला जी भी मौजूद थीं। डण्डे और घोड़े पुरुषों के ही ऊपर चलाये तथा दौड़ाये गये थे।

इस घटना से सारे शहर में एक उत्तेजना सी फैल गई। इसका परिणाम यह हुआ, कि इसके बाद जब जुलूस फिर निकला, तब सरकार को गोलियां भी चलानी पड़ी। उन दिनों कमला जी ने अपने जिस साहस का परिचय दिया था; उस साहस का दर्शन बड़े बड़े राष्ट्र कर्मियों में

भी नहीं हुआ करता। धन्य हैं कमला जी ! यह कमला ही जी का काम था, कि वे स्वयंसेवकों और जनता को भी अहिंसा पर दृढ़ रहने के लिए रात दिन उपदेश दिया करती थीं। वे विजली की भांति शहर के एक कोने से दूसरे कोने का चक्कर लगातीं। उन दिनों कांगरेस के सत्याग्रहियों को अपने यहां स्थान देना भी अपराध समझा जाता था। किन्तु कमला जी प्रति दिन प्रत्येक सत्याग्रही से मिलतीं और उसके खाने पीने का प्रबन्ध करती थीं। कमला जी की उस उदारता ही ने उन दिनों सत्याग्रहियों को ऐसा बना दिया था, कि वे कमला जी की एक एक बात पर मर मिटने के लिये तैयार रहते थे।

(१७)

सरकार का दमन चक्र जोरों से चल रहा था। कांगरेस की कार्य-समिति के बहुत से प्रभावशाली सदस्य गिरफ्तार किये जा चुके थे। जो लोग बचे थे, उनमें से प्रतिदिन कोई न कोई गिरफ्तार ही होता था। इसी समय कमला जी कांगरेस की कार्य-कारिणी की सदस्या चुनी गईं। पहले कमला जी कांगरेस की एक साधारण सदस्या की हैसियत से काम करती थीं। किन्तु उनकी सेवाओं ने लोगों को इतना आकर्षित किया, कि वे कांगरेस की कार्यकारिणी समिति की सदस्य चुन ली गईं।

उन दिनों पंडित मदनमोहन मालवीय जी भी कांग्रेस की कार्य-कारिणी समिति के सदस्य थे। सारे देश की भाँति बम्बई में भी आन्दोलन की धूम मची हुई थी। प्रतिदिन वहाँ सैकड़ों आदमी गिरफ्तार हो रहे थे। प्रतिदिन लम्बे लम्बे जुलूस निकल रहे थे और उन पर लाठी चार्ज भी की जाती थी।

एक दिन चौपाटी के मैदान से एक बहुत बड़ा जुलूस निकला। इस जुलूस में कार्य कारिणी समिति के सभी सदस्य थे। पंडित मदनमोहन मालवीय और कमलाजी भी इस जुलूस में सम्मिलित थीं। जब यह जुलूस कुछ आगे बढ़ा, तब पुलिस ने उसे रोक लिया। जुलूस में करीब पचास-साठ हजार आदमी सम्मिलित थे। लोगों का कहना है, कि इतना बड़ा जुलूस बम्बई में कभी न निकला था।

जब जुलूस पुलिस द्वारा रोका गया; तब लोग सड़क पर बैठ गये। पुलिस ने लोगों पर डण्डे चलाये। कमला जी को भी पुलिस के डण्डों से कुछ चोट आगई थी। मालवीय जी गिरफ्तार कर लिये गये थे। किन्तु वे पीछे छोड़ दिये गये। कमला जी ने बम्बई के इस जुलूस में भी अपनी अपूर्व वीरता का परिचय दिया था। उनकी वीरता और धीरता को देखकर बड़े बड़े नेताओं को भी आश्चर्य में आ जाना पड़ा था।

(१८)

आन्दोलन चल रहा था; पर धीरे धीरे देश के सारे सत्याग्रही जेल जा चुके थे। जो लोग बचे थे; उनमें इतना साहस न था, कि वे आन्दोलन को फिर आगे बढ़ाते। परिणाम स्वरूप आन्दोलन की प्रगति मन्द पड़ गई। इसी समय महात्मा गाँधी ने सामूहिक सत्याग्रह उठा लिया। सामूहिक सत्याग्रह उठा लेने के कारण सच्चे देश-सेवियों को एक प्रकार की ठेस सी लगी थी।

इधर यह हो रहा था, और उधर कमला जी आनन्द भवन में रोग शैय्या पर पड़ी हुई थीं। उनके पिछले रोग ने उनका फिर भयंकर रूप से आक्रमण कर दिया था। उन्होंने स्वयं इस रोग को निमंत्रण दिया था। वे जिस प्रकार अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करके दिन रात देश का काम करती थीं, उससे इस रोग का आक्रमण करना तो बिल्कुल स्वाभाविक ही था। उन्हीं दिनों पंडित जवाहर लाल जी की माता स्वरूपरानी भी अधिक अस्वस्थ्य होगई थीं। एक ओर कमला जी बीमार थीं और दूसरी ओर स्वरूपरानी जी। डाक्टर विधानचन्द्र राय कलकत्ते से उनकी चिकित्सा करने के लिये प्रयाग बुलाये गये थे।

इस समय पंडित जवाहरलाल जी जेल में थे। जब कमला जी और स्वरूपरानी जी की बीमारी अधिक बढ़ी;

तब सरकार ने उन्हें कुछ दिनों के लिये मुक्त कर दिया था। उस समय भारत के भाग्य अच्छे थे। कमला जी कुछ दिनों की लगातार चिकित्सा से अच्छी हो गईं। स्वरूपरानी जी को डाक्टर विधानचन्द्रराय की चिकित्सा से लाभ हुआ। कमला जी स्वस्थ होकर फिर मैदान में आईं और फिर सार्वजनिक कामों में अपने सहयोगियों का हाथ बँटाने लगीं।

(१९)

कुछ दिनों के बाद महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह उठा लिया। देश के सारे राजबन्दी छोड़ दिये गये। पंडित जवाहरलाल जी भी जेल से छूट कर प्रयाग आये। किन्तु पण्डित जवाहरलाल जी थोड़े ही दिनों तक जेल के बाहर रह पायें। कलकत्ते में आकर एक भाषण देने के कारण गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें दो वर्ष की सजा दी गई।

पण्डित जी की गिरफ्तारी के बाद बिहार भूकम्प में कमला जी ने भी बड़े जोरों से काम किया। उन्होंने सहायता फन्ड के लिये घर घर घूम कर लोगों से चन्दे माँगे। कुछ लोगों का कहना है, कि इस सहायता फण्ड के लिए कमला जी ने इतना काम किया, कि वे फिर बीमार होगईं। लोग कमला जी को काम करने से मना

करते थे, किन्तु उन्होंने कुछ भी ध्यान न दिया। वे बरा-बर अपने काम में लगी रहीं।

कमला जी धुन की बड़ी पक्की थीं। उनमें काम करने की अपूर्व शक्ति थी। वे दयालु तो थीं; किन्तु साथ ही एक ओर शासिका भी थी। वे स्वय नियमों का पालन करतीं और दूसरों से भी पालन करवाने की चेष्टा किया करती थीं। वे जिस काम को अपने हाथ में लेतीं, उसमें फिर जी जान से चिपट जाती थीं। कमला जी की इस प्रकृति न ही उन्हें सहायता फण्ड के इस काम में अधिक बीमार बना दिया। वे अस्वस्थ होकर चारपाई पर पड़ रहीं।

कमला जी की बीमारी धीरे धीरे अधिक बढ़ती ही गई। डाक्टर अटल उनकी चिकित्सा के लिये नियुक्त किये गये थे। वे कुछ दिनों के लिये कुछ अच्छी हो जातीं तो कुछ दिनों के बाद उनकी बीमारी फिर उग्र रूप धारण कर लेती। किन्तु फिर भी बीच में उनकी अवस्था कुछ सँभल गई थी। वे चलने फिरने के योग्य भी बन गई थीं।

इसी समय प्रयाग में काँगरेस कमेटी के चुनाव की एक आँधी चल पड़ी। इलाहाबाद के कांगरेसी चुनाव के मैदान में दो दलों में विभक्त होकर एक दूसर के ऊपर छींटे फेंकने लगे। कमला जी का सम्बन्ध यद्यपि किसी विशेष दल से न था, किन्तु फिर भी किसी दुष्ट ने नेहरू

पार्टी मुर्दाबाद और मालवीय पार्टी जिन्दाबाद नाम की एक नोटिस निकाल कर नेहरू परिवार को बदनाम करने की चेष्टा की थी। यह किसे नहीं मालूम है कि नेहरू परिवार पर कीचड़ उछालना सूर्य पर धूल फेंकने की चेष्टा करना है।

कमला जी की यह अन्तिम बीमारी थी। इस बीमारी ने उन्हें अपने च गुल से मुक्त न किया। उनकी अवस्था धीरे धीरे अधिक भयानक होती गई। जब उनके बचने की आशा न रही तब सरकार ने प० जवाहरलाल जी को कुछ दिनों के लिये जेल से छोड़ दिया। पण्डित जी शायद एक सप्ताह तक जेल के बाहर रहे। इसके बाद वे फिर जेल में चले गये, और कमला जी फिर जीवन और मृत्यु से संग्राम करने लगीं।

प्रयाग में जब चिकित्सा का कमला जी के स्वास्थ्य पर कुछ प्रभाव न पड़ा, तब कमला जी प्रयाग से भुवाली के अस्पताल में ले जायी गई। उन दिनों पंडित जवाहर लाल जी अलमोड़ा जेल में थे। भुवाली करीब होने के कारण पंडित जवाहरलाल जी को कमला जी का कुछ न कुछ समाचार मिल जाया करता था। कमला जी को भी एक प्रकार का सन्तोष ही रहता था।

किन्तु वहां भी कोई विशेष लाभ न हुआ। डाक्टरों ने उन्हें स्वीटजरलैण्ड जाने की सलाह दी। अतः कमला

जी डाक्टर और कुमारी इन्दिरा के साथ स्वीटजरलैण्ड चली गई। लूमान में बेडेन वलिर के सेनीटोरियम में इनकी चिकित्सा शुरू हुई। कई बार इनका स्वास्थ्य सँभला और कई बार गिरा। ऐसा जान पड़ता था, मानों वे मृत्यु से भी संग्राम कर रही थीं।

किन्तु उनका स्वास्थ्य अच्छा न हुआ। वह धीरे धीरे उन्हें मृत्यु के सन्निकट ले जाने लगा। उनकी बीमारी अधिक बढ़ गई। लोगों ने पण्डित जवाहरलाल जी के छुटकारे के लिये सरकार से प्रार्थना की। सरकार ने भी अपनी मनुष्यता का स्मरण कर के प० जवाहरलाल जी को जेल से छोड़ दिया। पण्डित जी जेल से छूटकर वायुयान द्वारा स्वीटजरलैण्ड गये। रोग-शय्या पर पड़ी हुई कमला को, पण्डित जवाहरलाल जी को देखकर कितनी प्रसन्नता हुई होगी, कितना आह्लाद मिला होगा!!

पण्डित जी जब स्वीटजरलैण्ड थे, उसी समय देश ने उन्हें कांग्रेस का सभापति चुना। कमला जी के कानों में भी यह समाचार पड़ा। बस, उस समय भी उनका स्वदेश भक्त हृदय तड़प उठा। उन्होंने अपनी बीमारी की परवाह न करके, पण्डित जवाहरलाल जी से कहा, कि आप मेरी चिन्ता न कीजिये। जाइये, स्वदेश की सेवा कीजिये, किन्तु पण्डित जवाहरलाल जी उन्हें कैसे छोड़

सकते थे ? अन्त में इसके कुछ दिनों के बाद ही वे गत २८ फरवरी १९३६ को सवेरे सदा के लिये इस संसार को छोड़कर चल बसीं। उनकी मृत्यु के समय पंडित जवाहरलाल जी और कुमारी इन्दिरा उनके पास ही थे।

(२०)

वहीं लूसान में कमला जी की अन्त्येष्टि क्रिया की गई। वहां से पंडित जवाहरलाल जी कमला जी का फूल लेकर वायुयान द्वारा भारत आये। बमरौली के हवाई स्टेशन पर देश के बड़े बड़े नेताओं ने पंडित जवाहरलाल जी का हृदय से स्वागत किया। उसी दिन आनन्द भवन से एक बहुत बड़ा जुलूस उठा। जुलूस कटरे से होता हुआ चौक गया और मुहम्मद अली पार्क में सभा के रूप में बदल गया।

सभा में कमला जी के संबंध में कुछ लोगों का भाषण हुआ। सभा में कई हज़ार आदमी सम्मिलित थे। सभी के चेहरे से शोक और करुणा टपक रही थी। जो मिला वही रोता हुआ दिखाई पड़ा। ऐसा जान पड़ता था, मानों इन सभी मनुष्यों का किसी ने हृदय छीन लिया हो। इलाहाबाद में कई बड़े बड़े नेताओं के मरने पर शोक सभायें की गई थीं, किन्तु उस दिन का सा शोक कभी किसी सभा में न देखा गया।

मुहम्मद अली पार्क से फिर एक जुलूस उठा। उस जुलूस में इस पुस्तक की लेखिका भी मौजूद थी। वह जुलूस वहां से चलकर त्रिवेणी के किनारे पहुँचा। त्रिवेणी में पंडित जवाहरलाल जी ने स्वयं अपने हाथों से कमला जी के फूल समर्पित किये। जिस समय पंडित जी त्रिवेणी की लहरों में कमला जी का फूल छोड़ रहे थे, उस समय का दृश्य बड़ा ही करुणाजनक था। वहां ऐसा कोई भी मनुष्य न था, जिसने कमला जी के लिये आँसू न बहाया हो।

(२१)

कमला जी कौन थीं, इनमें कितनी शक्ति थी, उनकी मृत्यु से राष्ट्र की कितनी क्षति हुई यह आपको नीचे दिये हुये नेताओं के वचनों और उद्गारों से भली भांति मालूम हो जायगा। कमला जी की मृत्यु पर सारे देश और कहीं कहीं विदेशों में भी शोक सभायें की गई थीं। कालिज, स्कूल और म्युनिसिपल दफ्तर तक बन्द हो गये थे। अनेक संस्थाओं और अनेक मनुष्यों ने पंडित जवाहरलाल जी के समवेदना-सूचक तार भेजे थे।

—❀—

राजा राममोहन राय

सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्॥

अर्थात्—सुख भोग की इच्छा करने वाले को विद्या कहाँ? और विद्या पढ़ने वाले को सुख कहाँ हो सकता है? इसीलिए विद्या चाहने वाला विद्यार्थी सुख को छोड़ दे या विषय-सुख चाहने वाला विद्या को।

बादशाह औरङ्गज़ेब के ज़माने (१६१६–१७०७) में बङ्गाल के नवाब के यहाँ श्रीकृष्णचन्द्र बैनर्जी नामक एक बड़े योग्य ऊँचे आहदेदार थे। नवाब ने इनके काम से प्रसन्न होकर इन्हें

'रॉय रॉय' की पदवी दी था जो पीछे चलकर केवल 'रॉय' ही रह गई। कृष्णचन्द्रजी परमभक्त वैष्णव थे। इसका अर्थ यह है कि शैव (शिव की पूजा करने वाले) या शाक्त (शक्ति या दुर्गा की पूजा करने वाले) के ये दुश्मन थे। पर इनकी योग्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी और नवाब इनको बहुत मानते थे। आपके तीन पुत्र थे। हरीप्रसाद राय, अमरचन्द्र राय और ब्रजविनोद राय।

ब्रजविनोद बाबू सबसे छोटे थे। पर आप अपने पिता से भी अधिक योग्य, परम भक्त वैष्णव और परोपकारी थे। ये नवाब सिराजुद्दौला के यहाँ मुर्शिदाबाद में किसी बड़े ऊँचे ओहदे पर अफसर थे। किन्तु आखीर दिनों में नवाब से मतभेद हो जाने के कारण इन्होंने नौकरी छोड़ दी और शेष जीवन घर पर ही बिताया। इनके सात पुत्र थे। इनमें पाँचवें का नाम रामकान्त राय था और ये ही हमारे राममोहन बाबू के पिता थे।

रामकान्त बाबू के विवाह की बड़ी रोचक कहानी है। जब ये बड़े हुए उनके पिता ब्रजविनोद बाबू बहुत बीमार पड़े और गङ्गा किनारे मरने के लिए लाये गये। इसी समय सिरामपुर ज़िले के, छुनारा स्थान के श्री श्यामाचरण भट्टाचार्य, जो शाक्त थे तथा राय बाबू के विरोधी दल के थे, इनके पास आये और बड़ी प्रार्थना करके उनसे एक वर माँगा। जब विनोद बाबू ने गङ्गाजी की शपथ खा ली तब भट्टाचार्य महाशय ने

यह वरदान माँगा कि, उनकी कन्या की शादी व अपने किसी एक लड़के से करने की आज्ञा द द ।

शाक्त होने के अलावा, भट्टाचार्य महोदय में दूसरी अयोग्यता यह थी कि व 'भङ्ग-कुलीन' या बुरे-कुल क समझे जात थ। इस कारण उनके यहाँ विवाह करना महा अनर्थ था। पर विमाद बाबू ता वचन हार चुके थे। इन्होंने अपने सातों पुत्रों स अपने वचन की रक्षाकी प्रार्थना की, किन्तु सबने अस्वीकार किया। केवल श्री रामकान्त राय तैयार हुए। इस प्रकार एक शाक्त की कन्या से इनका विवाह हो गया और कुछ ही दिनों में स्त्री भी वैष्णव हो गई। इस कन्या का नाम तारिखा था। घर में पाँचवें पुत्र का वधू होने क कारण यह 'फूल ठकुरानी' कहलाती थीं। हमारे चरित्रनायक पर फूल ठकुरानी का बड़ा प्रभाव पड़ा।

उस समय बहु विवाह की प्रथा प्रचलित ही थी। रामकान्त रायके भी दो स्त्रियाँ थीं। फूल ठकुरानी क तीन सन्तान थीं, एक कन्या दो पुत्र, जगन्मोहन राय और राममोहन राय। दूसरी स्त्री से केवल रामलोचन राय नामक पुत्र था। ये राममोहन राय को बहुत मानते थे और उनक शिष्य भी हो गये थे।

पिताजी

रामकान्त राय भा नवाब सिराजुद्दौला क यहाँ एक ऊँचे ओहद पर नौकर थ। अन्त में नौकरा छोड़कर राधानगर

चले गये। यहीं राजा बर्दवान से कुछ ग्राम इन्होंने लगान पर लिए—और यही इस वंश तथा राजा बर्दवान के बीच झगड़े की जड़ हुई और वर्षों तक मुकदमा चलता रहा। रामकान्त बाबू परम वैष्णव थे और जब कभी संसार के कामों से ऊब जाते थे बाग में बैठकर तुलसी-माला लेकर राम राम का जप किया करते थे।

इनका पुत्र राममोहन बड़ा बहस करने वाला था। इनकी बातें सुनकर वह उनमें एक न एक 'किन्तु'—'लेकिन' लगा ही बैठता, और बात काट देता था। इनको इसको बड़ा दुःख था कि इनका पुत्र भी इन्हीं के समान वैष्णव न होकर, धर्म के मामलों में दलीलें किया करता है और उसके विचार बिलकुल 'गन्दले' हैं। १८७६ के अपने 'मेमॉरैण्डम' में महाशय पेडम लिखते हैं कि समय समय पर अपने पुत्र के तर्क से घबरा कर ये झुंझला उठते और कहते—'तुम हर बात में एक 'किन्तु' लगाही दिया करते हो।

जो हो, इनका घरेलू जीवन सुखी था और इन्होंने अपने पुत्रों की शिक्षा का पूरा ध्यान रखा।

माताजी।

राममोहन राय की माता तारिणी अपने पति के समान ही बड़े संयम से रहती थीं तथा विष्णु की भक्त थीं। परोपकार इनमें उतना ही था, जितना इनके पति में। किन्तु इन्हें अपने

पुत्र के कारण बड़ी मानसिक पीड़ा होती थी। राममोहन राय दिन प्रति दिन, ज्यों ज्यों बड़े होते जाते थे, त्यों त्यों नास्तिक हुए जाते थे। ब्राह्मणों को पाखण्डी कहना, मूर्ति-पूजा में दोष निकालना उनके लिए मामूली बात थी, इसी कारण वे इनसे नाराज रहा करती थीं। जब १६ वर्ष की अवस्था में राम बाबू (राममोहन राय) घर से ज्ञान-उपार्जन करने चले गये, तब माता को स्वाभाविक दुःख हुआ। वहाँ से लौटने पर जब उनकी नास्तिकता और भी बढ़ गई तब माता ने उनका मोह एकदम छोड़ दिया और उनको इतना तङ्ग करने लगीं कि उन्हीं के कारण असल में राम बाबू को घर-द्वार और ग्राम छोड़ कर चले जाना पड़ा।

लन्दन के एक व्याख्यान में महाशय ऐडम ने तो यहाँ तक बतलाया था कि राममोहन राय की माता ने कलकत्ते की बड़ी अदालत में मुकद्दमा दायर किया था कि, राममोहन को पिता की सम्पत्ति का कुछ भी हिस्सा न मिले। बुढ़ौती में इन्होंने अपने पुत्र से कहा था कि, वे उसका मजहब स्वीकार करती हैं और अगर बुढ़ी न होतीं तो वे उसमें शामिल हो जातीं।

जो हो पर राममोहन राय का व्यवहार उनके साथ बड़ा अच्छा रहा। अपनी माता के विरुद्ध इन्होंने कभी किसीसे कुछ न कहा और सदा उनका आदर किया करते थे।

जन्म

अस्तु, ऐसे उच्च परिवार में, ऐसे महान् पिता माता से २२ वीं मई*, १७७२ इसवी में महात्मा —राजा राममोहन राय का जन्म हुआ। इनके पिता ने इनकी शिक्षा में खूब रुपया खर्च किया तथा उसमें किसी प्रकार की कञ्जूसी या कमी न की। राम बाबू की बुद्धि बहुत तेज थी और थोड़ी ही अवस्था में इन्होंने बङ्गला की पढ़ाई समाप्त कर दी। बाद को पिता ने इन्हें फ़ारसी पढ़ने के लिए बैठा दिया। फ़ारसी उस समय राज्य-भाषा थी। फ़ारसी पढ़ने के समय ही प्रसिद्ध फारसी-कवि, सूफ़ी-महात्माओं की वाणियाँ पढ़ने का मौक़ा इन्हें मिला और इनके विचारों का इन पर जो प्रभाव पड़ा वह जन्म भर बना रहा तथा उनकी रचनाओं से इन्हें सदैव प्रेम बना रहा।

फ़ारसी का ज्ञान प्राप्त कर ये अरबी पढ़ने के लिए पटना भेजे गये। पटना में ही कुर-आन को इन्होंने पहलेपहल पढ़ा तथा उसके उदार विचारों का इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इनके अध्यापक प्रसिद्ध यूनानीदर्शन शास्त्री अरिस्तू तथा यूक्लिड की ज्यामिति का अनुवाद इनसे कराते थे जिससे इनका बाहरी ज्ञान भी बहुत बढ़ गया था।

---

* इस तिथि के बारे में कुछ मतभेद है। किन्तु इन्हीं के समकालीन श्रीकिशोरीमोहन चैटर्जी ने प्रसिद्ध कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर को यही तिथि बतलाई थी और राम बाबू के छोटे पुत्र रामप्रसाद राय ने भी यही तिथि एक बार अपने मित्रों को बतलाई थी।

बालकपन में राम बाबू परम वैष्णव थे। विष्णु की तो इतनी भक्ति करते थे कि एक बार ये 'मान भञ्जन' नामक नाटक देखने गये। इसमें कृष्ण को राधा के पैरों पर गिरकर उन्हें मनाते हुए दिखलाया गया है। राम बाबू श्रीकृष्ण का यह अपमानजनक दृश्य बर्दाश्त न कर सके और रूठ कर चले आये। इनके जीवन में शुद्ध वैष्णव भक्ति का एक और उदाहरण मिलता है। एक संस्कार—जो पुरश्चरण कहलाता है, बहुत रुपया लगा कर इनके लिये कराया गया था। १५ वर्ष की अवस्था में, ये जोश में सन्यास लेने जा रहे थे, पर इनकी माता ने बड़ा प्रार्थना की और इन्हें ऐसा नहीं करने दिया।

इसी वय से इनके विचारों में परिवर्तन होता है। इसी समय से इनका अपने पिता से धर्म के सम्बन्ध में विवाद प्रारम्भ होता है। ये इसी समय से अपने विश्वास की पुष्टि के लिए उनसे बहस करने लगे थे। इसी समय इनका चित्त हिन्दू धर्म को उलझनों और खराबियों की ओर झुका—और प्रश्न में कौन धर्म अच्छा है? धर्म में जो इतनी खरा बियाँ दीखती हैं, क्या ये ठीक हैं? आपस का यह झगड़ा कैसा? कुरान की बातें ज़्यादा ठीक हैं या हिन्दू ब्राह्मणों की? ये सब प्रश्न इनके चित्त को चञ्चल करने लगे। बौद्ध धर्म के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करने के लिए, १६ वर्ष की अवस्था में ये तिब्बत ऐसे दुर्गम स्थल की यात्रा के लिए निकल पड़े।

तिब्बत में भी वहाँ के पण्डितों से इनकी न पटी। तिब्बती अपने लामा (धार्मिक गुरु) की बड़ी पूजा करते हैं। पर लामा की इज्ज़त करने की कौन कहे राम बाबू उनसे यही सवाल कर बैठते कि, जो आदमी होकर दुनिया में पैदा हुआ है वह (बुद्ध) किस प्रकार सृष्टि का रचने वाला हो सकता है? तुम लोग बुद्ध को ईश्वर क्यों मानते हो? तिब्बती बड़े जंगली होते हैं। वे भला कब इनकी नास्तिकता बर्दाश्त कर सकते हैं! वे फौरन इन्हें मारने को उतारू हो जाते।

किन्तु इस अवसर पर राम बाबू को जो अनुभव हुआ वह इनके जीवन भर काम आया—और वह था स्त्री जाति की उदारता तथा दयालुता। इनकी रक्षा करने वाला उस परिवार की स्त्रियाँ ही होतीं, जहाँ ये रहते थे। वे इनके सुख का भी बड़ा ख्याल रखती थीं। स्त्री जाति के इस उपकार तथा उदारता का, हर जगह जाने पर उनके प्रेम का इन्हें जो तीन चार वर्ष* तक अनुभव होता रहा, उसी ने नारी जाति के प्रति इनके हृदय में इतना आदर उत्पन्न कर दिया कि, यही आगे चलकर इनमें इतना मन्त्र फूँक सका, जिससे ये भारतीय नारियों के लिए महान् कार्य कर सके।

राम बाबू के आचरण पर हिन्दू धर्म का एक स्नाप आजन्म

---

* डा॰ लैण्ट कारपेन्टर (Dr Lant Carpenter) के मतानुसार इनकी यह प्रथम यात्रा केवल तीन या चार वर्ष तक रही।

बना रहा। कुलीन ब्राह्मण-परिवार का होने के कारण बचपन में ही इनका विवाह हो गया। परन्तु बहुत थोड़ी अवस्था में इनकी पहली स्त्री मर गई। उस मरे १२ महीने भी पूरी तरह न बीत पाये थे कि, इनके पिता ने इनका दूसरा विवाह कर दिया। इनमें सन्तानें पहली स्त्री के ही हुईं और वह ईसवी सन् १८२४ में यानी इनकी ५२ वर्ष की अवस्था में ही मर गई। दूसरी स्त्री विधवा होकर मरी।

काशी में

तिब्बत में पिता की बीमारी का समाचार सुनकर ये घर आये। किन्तु शीघ्र ही इनके पिता 'निराग' हो गये। घर पर राम बाबू की माता इत्यादि किसी से न पटी। ये इस समय मूर्तिपूजा के घोर विरोधी हो गये थे। इस कारण दूर के रिश्तेदार, नातेदार तथा ग्रामवासी सभी इनसे घृणा करने लगे थे। इस दशा में इनका ग्राम में रहना असम्भव हो गया।

अभी तक संस्कृत तथा हिन्दू शास्त्र का ज्ञान भी राम बाबू को पूरा न था। इस कारण ये काशी चले आये। घर से एक दम सम्बन्ध छोड़ दिया। ये किस प्रकार अपना समय बिताते या गुजारा करते थे, इसका ठीक पता नहीं। इन की जीवनी लिखने वालों सब से पहला लेखिका कुमारी कालेट ने लिखा है कि, शायद काशी में हस्तलिखित-ग्रन्थों की नकल करके

ये अपना पेट पालते थे। इनकी अरबी— फारसी की लिखावट बड़ी सुन्दर थी।

जो हो, काशी में इन्होंने जी तोड़ परिश्रम करके संस्कृत पढ़ी और हिन्दू शास्त्र का यथेष्ट ज्ञान पैदा कर लिया। इससे उस समय की प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध इनका विश्वास और भी दृढ़ होगया

सन् १७६३ में राम बाबू अपनी यात्रा से लौटे थे। और उसी साल काशी आये थे। काशी में संस्कृत पढ़ने के अलावा इन्होंने १७६६ में अँग्रेज़ी पढ़ना शुरू किया। इस समय अँग्रेज़ी पढ़ने वाले इसाई माने जाते थे और बड़ी बुरी निगाह से देखे जाते थे। पर राम बाबू को संसार की बुराई की चिन्ता न थी। ये अँग्रेज़ी परिश्रम के साथ पढ़ते थे किन्तु, इसमें अच्छी तरह गति वर्षों बाद प्राप्त कर सके। इसका कारण यह था कि अँगरेज़ी पढ़ाने का प्रबन्ध काफ़ी न था।

अभी तक एक बात असह्य थी। वह यह कि राम बाबू इच्छा रहने भी कभी खुल कर अपने का प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध घोषित नहीं कर रहे थे। इनकी बार बार इच्छा होती थी कि आजकल की बुराइयों का खिलकर भण्डाफोड़ किया जाय। एक विचार ऐसा करने से रोकता था और वह विचार था रानी पिताकी मानसिक वेदना का। इनके पिता परम वैष्णव थे तथा

अपने पुत्रों के विचारों से उनके हृदय पर काफ़ी चोट पहुँच चुकी थी। पर पुत्र के विचार किस गहराई तक समाज की कुरीतियों की खिलाफ हैं यह वे नहीं जानते थे और यदि उनको पता होता तो शायद यह दुःख उन्हें और भी जल्दी संसार से उठा लेता।

१८०३ में इनके पिता की अवस्था बहुत खराब हो गई। अन्त-समय राममोहन राय भी पिता के साथ थे और वे 'राम-राम' करते संसार से चल बसे।

पिता की मृत्यु ने इस पक्षीका पींजड़े से बाहर कर दिया। अब अपनी आवाज़ को बुलन्द करने तथा सारे संसार को अपना मंत्र सुनाने के लिए ये आज़ाद हो गये। राममोहन राय की आज़ादी ने भारत के भाग्य को पलटने का अवसर खड़ा कर दिया। इन्होंने काशी छोड़ दी और मुर्शिदाबाद चले गये।

बम-विस्फोट

इसी साल इन्होंने अपने विचारों का बम जनता के ऊपर पटका और यकायक उससे एक आग भभक उठी। मुर्शिदाबाद में 'तुहफ़त-उल मुवाहिदीन' यानी 'एक ईश्वर में विश्वास करने वालों का एक तोहफ़ा' नाम से इनका एक पत्र प्रकाशित हुआ। यद्यपि इनकी फ़ारसी भाषा मधुर थी, पर लिखने का ढङ्ग दृढ़ न था। जगह जगह पर विचार टूटे हुए मालूम पड़ते थे।

इस लेख का सारांश थोड़े में, यह था कि, सभी मज़हब एक सत्य पर निर्भर करने वाले इस विश्वास के आधार पर हैं कि दुनिया का पैदा करने वाला परमात्मा है। पर उनके बाद की बातों में इतना मतभेद है कि उसका कोई अन्त नहीं। पर जितने तौर-तरीके लोग बतलाते व समझते हैं, वे सब झूठ हैं और झूठ के आधार पर बने हुए हैं। असल में आदमी अपने दिमागी ख़यालात पकाया करता है।

सभी मज़हब वाले ईश्वर को एक नये रास्ते का चलाने वाला बतलाते हैं तथा उनका कहना है कि, जो इस रास्ते पर नहीं चलेगा वह नर्क को जायगा तथा ईश्वर उससे कभी प्रसन्न न होगा। उसे मरने पर तरह तरह की यातनायें दी जायँगी। हरेक दूसरे को काफ़िर व पैदी बतलाने में अपना वक्त ज़ाया करता है। इसका नतीजा यह होता है कि फूट के बीज बो दिये जाते हैं और आपस में आज जो फ़ूटमत दिखलाई पड़ता है, वह सब इसी मज़हबी फूट का नतीजा है। लेकिन यह बात साफ़ समझ में आती है कि ईश्वर ने कुदरत तो एक ही बनाई है। चाहे मुसलमान, हिन्दू या ईसाई, जो भी कोई हो, सबही उससे बराबर फ़ायदा या नुकसान उठाते हैं। अगर बर्सात से हानि होगी तो सबकी बराबर होगी। एक मज़हब के कायदे को माननेवालों के लिए कम या ज़्यादा न होगा। इसके अलावा हम अपने जिस्म को ही लें। चाहे हिन्दू या मुसलमान जो भी कोई हो सबका नाड़ियें, सबका ज़रूरतें,

सबके दिमाग व पूरी माड़ियों की गढ़न एकसी होगी। मज़हबों की मुखालिफ़त प्रिसम या कुदरत से मुख्तलिफ है।

ब्राह्मण कहता है कि यह उसका वैदिक और इम्बन्दत्त अधिकार है कि वह वेदमन्त्र का पाठ करे, पवित्र मन्त्र पढ़े और कर्मकाण्ड आदि कराये। चाहे मुसलमान उन पर कितनी ज्यादती करें, वे अपना विश्वास छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं। पर मुसलमान कहता है कि कुरान में लिखा है कि बुतपरस्त (मूर्ति-पूजक) काफ़िर होते हैं इनको मार डालो और जहाँ पाओ वहाँ इनका कत्ल कर सवाब लूटो। वह ऐसा करना पैगम्बर को खुश करना व उनके हुक्म को बजा लाना समझता है। पर क्या कभी किसी ने सोचा है कि इन सब खुराफ़ात क्या उस पाक परवरदिगार उस मिहरबान, उस कुदरत, दीनों दुनिया के मालिक के कायदे के खिलाफ़ नहीं है? क्या यह बकोदा उसके हुक्म की उदूली नहीं करना है? क्या यह सब मज़हबों के अन्धे मानने वालों की मनगढ़न्त या शरारत का नतीजा नहीं है?

हरेक मज़हब के मौलाना दुनिया में मुवाहिदीनों (एक ईश्वर में विश्वास करने वालों) की कम तादाद देखकर यह समझते हैं कि, हम तादाद में ज्यादा हैं, इसलिए हमारी राय की ज्यादा वक्त होनी चाहिए, लेकिन दुनिया में सचाई की परख उसके कहनेवालों की तादाद से कभी भी नहीं की जा

सकती। सबकी ताकत उसके मालम बातों को साबित व कमी नहीं जाना जा सकती।

चुनांचे इसीके मुतल्लिक आदमी चार दर्जे में बांटे जा सकते हैं।

(१) वे धोखेबाज़ जो जान बूझकर, लोगों को धोखा देने के लिए, या अपनी आर खींचने के लिए, मज़हबी उसूलों के नये नये कायदे गढ़ा करते हैं और इस तरह आपस में फूट और झगड़ा पैदा करते हैं।

(२) वे धोखा खाए हुए आदमी, जो बिना सच्ची बातों का पता लगाये उन धोखेबाज़ों के पीछे चल जाते हैं। यह मुतलक पता नहीं लगाते कि वे सच्चे हैं या झूठे।

(३) वे आदमी जो खुद धोखा खाये हुए हैं और धोखे बाज़ हैं—यानी अपने यक़ीन (विश्वास) को दूसरों से पाकर, बिना उसकी सच्चाई का पता लगाये, उस पर खुद चलते हैं और दूसरों को चलना सिखलाते हैं।

(४) वे आदमी, जो पाक परवरदिगार की मिहरबानी से न धोखा देते हैं और न धोखा खाते हैं।

खुदा के एक आवाज़ बन्दे ने इन चन्द अलफ़ाज़ों को बिना किसी नफ़रत या तास्सुब के लिखा है।

राम मोहन बाबू के इन विचारों से मज़हबों के मौलानाओं व पण्डितों के शरीर में आग लग गई। उन्होंने इनको तरह तरह की गालियाँ देना शुरू की। मुसलमान अलग नाराज़

थे, हिन्दू अलग। किन्तु इस निर्मय आत्मा को तो अपना सन्देश सुनाना था।

इसके बाद राम बाबू ने मुख़्तलिफ़ मज़हबों पर मुबाहिसे निकाले। इसमें इन्होंने मुहम्मद साहब पर भी आक्षेप किया था। इससे मुसलमान बहुत नाराज़ हुए। मुसलमानों की नाराज़गी के कारण ही ख़ास तौर पर, मुर्शिदाबाद छोड़कर राम बाबू को अपना कार्य-क्षेत्र कलकत्ता बनाना पड़ा और जो पाठक इस कथन में श्रद्धा के साथ विश्वास रखते हैं कि 'सब भले के लिए होता है' वे आगे चलकर देखेंगे कि, इस ज्योति के लिए कलकत्ता जाना कितना अच्छा हुआ।

राम बाबू इस उम्र में भी विद्यार्थी थे। उनका प्रधान काम 'असली ज्ञान' प्राप्त करना था। इसी कारण अपना अमीर घराना छोड़कर इन्होंने ग़रीबी अख़्तियार की थी। इसी कारण ये इधर-उधर मारे मारे फिरते थे।

आंधी का पहला झोंका

सन् १७९३ में लार्ड कार्नवालिस, (भारत के बड़े लाट) ने भारत में ज़मींदारी के बन्दोबस्त को मुक़र्रर करने का मस्विदा बनाया था। तीन वर्ष बाद कम्पनी ने इसे मञ्जूर कर लिया। इसलिए बङ्गाल में नये सिरे से बन्दोबस्त की तथा ज़मीन के लगान की जाँच और उसकी रक़म तै करने की ज़रूरत पड़ी।

यह काम ज़िले के कलक्टरों के अधीन कर दिया गया। कई ज़िलों में तो कलेक्टरों को मालगुज़ारी एक दम तै कर देने का हक़ तक दे दिया गया था। इसलिए इस काम में योग्य आदमी ही लगाये गये तथा ईमानदारी और हिसाब का काम होने के कारण चतुर सहायकों की ज़रूरत पड़ी।

राममोहन राय का परिचय इस समय एक बड़े सुयोग्य अँग्रेज़ तथा कम्पनी के अफ़सर श्री जान डिगबीस हो गया था। श्री डिगबी महाशय अपनी ईमानदारी तथा न्याय-प्रियता के लिये प्रसिद्ध थे। १८०१ में ही इनका परिचय राम बाबू से हुआ। श्री डिगबी ने लन्दन से प्रकाशित श्री राममोहन राय के 'केन उपनिषद्' तथा 'वेदान्त का सारांश' नामक ग्रन्थों का अनुवाद सम्पादित किया था। उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है कि जब १८०१ में मेरी उनसे भेंट हुई, तब वे अँग्रेज़ी थोड़ी बहुत बोल सकते थे, पर लिख नहीं सकते थे। लगातार मेरे साथ रहने के कारण मेरे पत्रों को बराबर देखते तथा उनका अर्थात् लिखते लिखते उन्हें अँग्रेज़ी लिखने का अच्छा अभ्यास हो गया था।

डिगबी साहब १८०६ में रंगपुर ज़िले में नया बन्दोबस्त करने के लिये कलक्टर नियुक्त हुए। इन्होंने राममोहन बाबू को ज़बरदस्ती अपना दीवान बनाया—इस समय से वे सरकारी नौकरी में—बङ्गाल सिविल सर्विस में—हो गये और दस वर्ष तक सरकारी नौकर रहे। यह बड़े सम्मान व ज़िम्मेदारी का पद था।

उस समय यूरोपियन अफ़सरों हिन्दुस्तानी सहायकों—नीच कम चारियों—के लिए बड़े कड़े कायदे थे। उन्हें अफसरों के सामने हर समय खड़ा रहना पड़ता था। साथ ही, इनको साधारण से साधारण हुक्म दिया जा सकता था। श्री डिगबी ने हुक्म निकाल कर श्री राममोहन राय को इन सब बन्धनों से मुक्त कर दिया था*।

अस्तु, बन्दोबस्त का काम उस समय बड़ा कठिन था। लगान तथा मालगुज़ारी के मामले में बहुत से झगड़े पड़े हुए थे। बहुत से झगड़े तो इतने पुराने थे कि उनका फैसला ही नहीं हो पाया था। बहुत से ज़मींदार पूरी तरह बेइमानी पर तुले बैठे थे। अमीन तथा अमलाओं का मन आई थी। घूस खाकर गलत नक्शे तैयार कर अफ़सरों की आँख में धूल झोंकना इन्हें खूब आता था। इसलिए यह काम बड़ी होशियारी का था ही। कलक्टर और उसका दीवान दोनों काफ़ी घूस लेकर काम चला सकते थे और खूब रुपया पैदा कर सकते थे।†

किन्तु बन्दोबस्त के काम में डिगबी साहब ने इमानदारी तथा अच्छे काम के लिए बड़ा यश कमाया था। इनके दीवान राममोहन राय का यश भी खूब फैला। एक प्रसिद्ध लेखक

---

* Mr R Montgomery Martin in the 'court journal' Oct—5—1838

† पंडित शिवनाथ शास्त्री के ब्रह्म समाज के इतिहास में इसका पूरा विवरण है।

न लिखा है कि द्विगबी साहब का जो कुछ नाम हुआ, उसके दीवान के कारण* वे उसे सरलतापूर्वक अमीन व अमलदारों की सरकारी समझ जाते थे कि, पक्षमानी किसी प्रकार हो ही नहीं सकती था।

घरेलू झगड़

एक ओर यह सरकारी काम हो रहा था दूसरी ओर घरू झगड़े भी बहुत जा रहे थे। १८०३ में पिता के मर जाने के बाद उनकी सम्पत्ति रामबाबू के बड़े भाई जगमोहन राय को मिली। ये बचारे भी अधिक दिन तक न जी सके और १८११ में इनका देहावसान हो गया। इनकी मृत्यु पर यह सम्पत्ति गोविन्दप्रसाद राय नामक उनके पुत्र को मिल गई। राम बाबू की माता ने अदालत में यह दरखास्त दी कि मूर्ति-पूजा आदि के विरुद्ध हो जाने के कारण राम बाबू हिन्दू नहीं रहे अतएव सम्पत्ति पर उनका कानूनन अधिकार न रहे। अदालत से वे यह मुकदमा हार गई। किन्तु राम बाबू को इस विषय में बहुत परेशानी उठानी पड़ी।

मुकदमा जीत जाने पर भी उन्होंने अपनी माता की सम्पत्ति न छीनी और उसे अपने भतीजे के पास रहने दिया। यह भी इनकी लापरवाही थी कि, लगान न अदा कर सके और

---

* मि० G. S. Leonard History of Brahmo Samaj में इस पर बहुत जोर देते हैं।

कुछ दिनों में जायदाद नीलाम पर चढ़ा दी गई। रामबाबू ने उस जायदाद को नीलाम में उस रुपये से ख़रीद लिया जो सरकारी नौकरी में उन्होंने बचाया था। इतना होने पर भी, माता तथा रिश्तेदारों को उन्होंने अपनी रियासत से न निकाला। बहुत दिनों तक इनकी माता ही सब कर्ताधर्ता थीं।

राम बाबू के परिवार में इन के विचारों के कारण कितनी हलचल मची रहती थी इसकी बहुत सी कहानियाँ मिलती हैं। एक कहानी इस प्रकार है:—

अपनी माता से मिलने के लिए एक बार ये घर गये थे। पर माता ने इनसे मिलना अस्वीकार किया। उनकी शर्त थी कि, यदि ये उनके राधा-गोविन्द की मूर्ति को प्रणाम कर आवें तो वे भेंट कर सकती हैं। राम बाबू मूर्तियों के सामने गये और उनको प्रणाम कर कहा—'हे मेरी माता के देवी देवता, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।'

दूसरी कथा है कि, एक बार बीमार पड़ने पर डाक्टरों ने राम बाबू को 'अमृती' (जो बकरी के गोश्त का होता है) खिलाया। यह समाचार सुनते ही इनकी माता ने बड़ा शोर-गुल मचाया और सभी सगे-सम्बन्धियों को बुलाकर यह यह घोषणा की—'देखो, राममोहन की इस चाल ने साबित कर दिया कि वह अब कितना नीच हो गया है। अब वह पूरा

इलाज हो गया है। हमको चाहिए कि हम उस घर से एक दम निकाल दें ।

इन दो कथाओं से पाठक बहुत कुछ साम्य समझ गये होंगे। राममोहन की माता उनको कितना प्यार करती थीं इसके दो एक उदाहरण हम आगे दे आये हैं। अपनी सगी माता अपने पुत्र के खिलाफ कैसे हो सकती है और साथ ही ऐसी अवस्था में जब कि, अपना बड़ा लड़का मरा भी गया हो—यह सोचने की बात है। इसमें कारण साफ है। इनकी माता परम भक्त थीं और इन्हें अपने धर्म पर अटल विश्वास था। अपने पुत्र का गलत राह पर जाना उनसे सहा नहीं जा सकता था और इसी कारण साम, दाम, दण्ड, भेद हर प्रकार से वे उसे ठीक रास्ते पर लाना चाहती थीं। उनके लिए इस समय राममोहन पुत्र नहीं थे समाज के एक शत्रु थे—और वास्तव में प्रत्येक माता का जो अपने पुत्र को अपने विश्वास के अनुसार गलत रास्ते पर जाते देखे, उस पुत्र साथ ऐसा बर्ताव न करना चाहिए किन्तु उसका कहना चाहिए। हाँ, उसे अपना विश्वास ठीक है या गलत इसकी भी परीक्षा करनी चाहिए।

राममोहन ने अपनी माता से ही दृढ़ता तथा विश्वास पर अटल रहना सीखा था। उन्होंने अपनी माता से ही धैर्य पूर्वक अपने सगे-सम्बन्धियों से भी लड़ना सीखा था—यदि ऐसा न होता तो अपने विरोधियों से घबरा कर वे सब कुछ छोड़कर शान्त हो बैठते।

दुश्मन

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके दुश्मन बढ़ते जा रहे थे और बहुत ज़्यादा बढ़ गये थे। अपनी माता की आफ़तों से परीशान होकर रघुनाथपुर नामक ग्राम में पहले एक श्मशान भूमि को खरीद कर इन्होंने अपने लिये एक मकान बनवाया। इसी मकान में इनका परिवार रहता था और स्वयं राम बाबू दौरे पर सरकारी काम से जाया करते थे। इसी मकान के सामने इन्होंने एक चबूतरा बनवाया था जिसके तीन तरफ़ तीन चीज़ें लिखी थीं।

> ॐ = अ उ म्—सृष्टि का प्रथम शब्द—ईश्वर का बोधक।
>
> तत्सत् = वही सत्य है।
>
> एक मेवा द्वितीयम् = ईश्वर एक है दूसरा नहीं।

इसी चबूतरे पर, घर रहने पर, आप पूजा करते थे। इनकी पूजा केवल भगवान् का मौन ध्यान रहा करता था। इनके विश्वास के कारण इनके दुश्मन इस एकान्त स्थान को भी आकर घेर लेते थे। सवेरे थे, इनके मकान के पास आकर मुर्गे जैसी बाँग देते थे। (हिन्दू घरों में मुर्गे की बाँग बहुत अशुभ समझी जाती थी, पालना तो धर्म विरुद्ध था ही)। रात्रि को ये मूर्ख लोग मकान में गाय की हड्डी फेंक देते थे। इससे राम बाबू लेशमात्र भी विचलित न हुए पर स्त्रियाँ बहुत परीशान होती थीं। सरकारी

नौकर—बड़ी इज़्ज़त के ओहदे पर होने के कारण यदि ये चाहते तो इन बदमाशों को काफ़ी दण्ड दिला सकते थे। ये धैर्यपूर्वक इन मूर्खताओं को बर्दाश्त करते गये। परिणाम यह हुआ कि, कुछ दिनों में शत्रुगण ढीले पड़ गये।

डिगबी साहब रंगपुर में ही रहते थे इस कारण राम बाबू को भी यहीं रहना पड़ता था। रंगपुर काफी बड़ा था और हर प्रकार के आदमी इस नगर में पाये जाते थे। राजपूताने के जैनी मारवाड़ियों से राममोहन राय की यहीं भेंट हुई और यहीं उन्होंने जैनियों का पवित्र धर्म-ग्रन्थ कल्प-सूत्र पढ़ा।

जैनियों ने इनका विशेष विरोध न किया। रंगपुर में इनका सबसे बड़ा विरोधी जजी अदालतका दीवान, संस्कृत तथा फ़ारसीका विद्वान् गौरीकान्त भट्टाचार्य्य नामक महापुरुष था। इन महाशय ने एक पुस्तक लिखकर राममोहन रायके विचारों की धज्जियाँ उड़ाने की चेष्टा की। इनके साथ एक बड़ा गरोह राममोहन राय के खिलाफ़ इकट्ठा हो गया। राम बाबू को अपने सिद्धान्त के आगे किसी बात की चिन्ता न थी और वे निर्भय होकर अपने विश्वास के अनुसार काम करते रहे।

महाशय डिगबी राममोहन राय को कितना मानते थे, यह हम पीछे बतला आये हैं। १८१४ में आप विलायत चले गये। उस समय भी आपमें और राम बाबू में बराबर पत्र

व्यवहार जारी रहा। डिगबी साहब से राम बाबूको आगे चल कर जो सहायता मिली उसका वर्णन आगे किया जायगा। आपके चले जाने पर राममोहन राय कलकत्ता चले गये और यहीं आपने अपना प्रधान कार्य्य-क्षेत्र बनाया।

सरकारी नौकरी में इनके केवल दस वर्ष बीते। इनका जीवन इतना सादा और सरल था कि निजी खर्च बहुत कम होता था। इसीलिए आप अन्त में एक लाख रुपया बचा सके। पर इनके कुछ दुश्मनों ने इन पर चोरी का अभियोग लगाया— किसी ने कहा कि घूस खाई है। इस आशय का एक लेख इनके मरने के बाद छापा गया था।* पर कुमारी कालट ने तथा अन्य अंग्रेज़ी और हिन्दुस्तानी लेखकों ने ऐसी दलील करनेवालों को खूब फटकारा है। वे लिखते हैं कि, सबसे बड़ा प्रमाण कि राम बाबू बड़े ईमानदार आदमी थे, यह है कि वे श्री डिगबी की अधीनता में काम करते थे। यदि दीवान ही बेईमान होता तो कलक्टर ईमानदारी तथा अच्छे बन्दोबस्त के लिए इतनी नेक नामी क्यों पाता—और यदि श्री डिगबी राममोहन राय को अति उच्च चरित्र वाला न मानते तो इनका इतना आदर कैसे करते?

---

* दिसम्बर १८४२ में 'Calcutta Review" में भी किशोरी चन्द्र मित्र का लेख। १८८८ में London के Saturday review में भी यही लिखा था। पर श्री Leonard ने History of Brahma Samaj में इसके खूब पुर्जे उड़ाये हैं।

सती भावज की वेदना

अब राममोहन राय के जीवन की एक अति महत्वपूर्ण का उल्लेख किया जायगा।

सन् १८११ में इनके बड़े भाई जगमोहन राय मर गये, इन्होंने अपनी भावज को सती होने से बहुत मना किया। इनकी माता ने साफ कह दिया था कि मैं सती न होऊँगी। व अमीर थी—बड़ी थीं—उनको कौन बोलता था। पर इस बहू ने समाज में वाहवाही के डर से सती हो जाना ही निश्चय किया।

चिता में जिस समय आग लग गई और उसकी लपटें शरीर को झुलसाने लगीं, यह स्त्री बेचारी अपना धैर्य न सम्हाल सकी और चिता से कूद कर भागने लगी। इस तरह समय का, धर्म की तथा हिन्दूपन की नाक कटी जा रही थी—तभी तो धर्म के ठेकेदारों ने बाँस से मार मार कर बेचारी को जबरदस्ती लाश पर बैठाया और उसका सिर चूर चूर कर डाला। उसकी चिल्लाहट सुनाई न पड़ने देने के लिये ज़ोर ज़ोर से नगाड़े बजाये जाने लगे तथा खूब ही हल्ला मचाया जाने लगा। इसी में बेचारी का आत्मा कूच कर गई और वह भस्म हो गई।

यह राक्षसी कृत्य राममोहन राय के कोमल हृदय के बर्दाश्त के बाहर था। इन्होंने उसी समय शपथ खाई कि,

प्रवतक इस प्रथा का कानूनन रुकवा न दूँगा चैन न न लूगा—और ईश्वर सदैव सज्जन की टेक रखता है—क्योंकि शपथ खाने के १६ वर्ष बाद ही सरकारी कानून द्वारा यह रिवाज एक दम बन्द कर दिया गया और यह काम जुर्म करार दिया गया।

कलकत्ते में आगमन

राममोहन राय के समय में भारत की जो दुर्दशा थी यह हम पाठकों को बतला चुके हैं। बहु विवाह, पाखण्ड, असभ्यता, बाल-विवाह जाति-पाँति प्रथा की भयकरता तथा सबसे बढ़ कर मूर्ति-पूजा ये सब ऐसी बुराइयाँ थीं जो भारत को खाये जा रही थीं। सती प्रथा भी घोर घोरे अंगर्षापन की हद तक पहुँच चुकी थी। अकेले कलकत्ते में ही, यहीं के समीप १८१५में २०, सन १८१६ में ४० सन १८१७ में ३६ और १८१८ में ४३ स्त्रियों को सती होना पड़ा था। इसमें १००-६० वर्ष से लेकर १ १६ वर्ष की लड़कियाँ थीं। यह सब सामाजिक सत्यानाश की बातें दिन ब दिन बढ़ती जा रही थीं।

राम बाबू ने १८१४ में कलकत्ते में पैर रखते ही अपने को इन सब के विरोध के लिए खड़ा कर दिया। इस कारण इनका जीवन कैसा आफ़त का रहा होगा, यह पाठक सोच सकते हैं।

धीरे धीरे राम बाबू के हृदय में यह विश्वास जम गया कि भारत की उन्नति की सबसे बड़ी शत्रु मूर्त्ति-पूजा है। वास्तव में मूर्ति-पूजा जो परमात्मा को पहचानने के लिए जिस ध्यान की जरूरत पड़ती है, उस ध्यान को शुरू करने के लिए एक सीढ़ी है। पर ईश्वर की उपासना की अन्तिम सीढ़ी मूर्ति पूजा को ही समझ लेना और केवल उसके तड़क भड़क व शृंगार में ही मन लगाना अपने आत्मा के ज्ञान को खोना है। इसके पर्दा सत्-सब छूट गया था रहा था—"टुन टुन टुन टुन घण्टा बजायें और करें नक-अपना। ठाकुरजी को भोग लगायें, गपक जायँ सब अपना।

बस, यही धर्म-कर्म था। राम बाबू ने उस समय जो अपने विचार प्रकट किए हैं, उनसे पता चलता है कि वेद-शास्त्र पढ़ने पर इनका दृढ़ विश्वास हो गया कि अपने धर्म-ग्रन्थ का असली ज्ञान न होने के कारण ही लोगों में इतना मूढ़ विश्वास फैला है। जो जो सुधार ये चाहते थे, वे सभी वेदों में थे—अतएव वैदिक सभ्यता का पुनः ज्ञान ही मूर्खों को ठीक रास्ते पर ला सकता था। आपने लिखा है:—

"मूर्ति की पूजा कर हिन्दू केवल एक भौतिक पदार्थ की पूजा करते हैं। कौन सी उपासना उचित है? किस प्रकार उस परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करना चाहिए? यह सब वे भूल गए हैं। मूर्ति की उपासना करके वे ईश्वर की शक्ति की हँसी उड़ाते हैं। गर्मी में आप उन्हें पंखा झलते हैं। जाड़े में आप

उन्हें रुलाइ उड़ाते हैं। सुबह शाम आप उनको खाना खिलाते हैं। पर यह मानने की बात है कि जो स्वयं ऋतुओं को बनाने वाला, जाड़ा, गर्मी तथा बरसात का मालिक है, जो सृष्टि को उत्पन्न करता है तथा हम सबका अन्न दाता है, वही परब्रह्म क्या खिलाने लायक है?

"मैं अपने राष्ट्र में यह पतनोन्मुख प्रणाली देखकर बिना दुःख किये नहीं रह सकता। यही प्रणाली जाति को नीचे गिरा रही है क्योंकि, यह तुम्हारे मन को छिछला कर रही है—और जब कि, तुम्हारे में गम्भीरता, उदारता धैर्य तथा नम्रता आदि सब गुण हैं, तुम गढ़े में हो यद्यपि आप ऊंच भविष्य के योग्य हैं। इसी कारण मैं अपने शास्त्रों की असली धर्म-ग्रन्थों की हूबहू अनुवाद के साथ टीका छाप रहा हूं ताकि, आप जानें कि असल में धर्म क्या है और क्या रहा है। इसीसे आप ईश्वरोपासना का शुद्ध प्रकार जान जायेंगे तथा ब्राह्मणों के इस प्यारे धर्म की खूबियाँ समझ सकेंगे। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि, वे हमको सत्पथ दिखलाने में समर्थ हों तथा धार्मिक-शिक्षा के साथ यह महान् आचरणका मन्त्र भी दे सकें कि, दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम अपने साथ दूसरों द्वारा किया जाना चाहते हो।'

ईशोपनिषद् की टीका छापने के समय उसके साथ आपने जो भूमिका जोड़ी थी, उसीका यह सारांश है। १८१६ में ही वेदान्त-सूत्र का प्रधान अङ्ग आपने बङ्गला में अनुवाद कर छाप

दिया। १८१६ में वेदान्तका सारांश' बङ्गला हिन्दुस्तानी, अँग्रेज़ी तीनों भाषाओं में छाप दिया। इसके उपरान्त केन और ईश उपनिषदों का बङ्गला और अंग्रेज़ी अनुवाद छापा। 'वेदान्त का सारांश'* और केन-उपनिषद् का अंग्रेज़ी टीका आपने महाशय डिगबी के पास लन्दन भेज दी थी। इसी समय आपने उनको एक पत्र लिखकर बतलाया था कि आप क्या काम कर रहे हैं और डिगबी साहब के जाने के बाद से, अब तक क्या काम किया है। इसका हमें—इस पत्र से बड़ी सहायता मिलती है।

राम बाबू अपने ग्रन्थ मुफ़्त बाँटा करते थे। इससे इनका प्रचार बहुत होता था। कलकत्ते में, मानिकटोला मुहल्ले में, इनके सौतेले भाई श्री रामलोचन राय ने एक बड़ा मकान इनके लिये बनवाया था और उसे अंग्रेज़ी ढंग से सजा दिया था। राममोहन बाबू इसीमें रहते थे और यही इनका इतिहास प्रसिद्ध निवास हो गया।

१८१७ में आपने माण्डूक्य उपनिषद् का बङ्गला अनुवाद प्रकाशित किया। इसी साल इनका कठोपनिषद् का बङ्गला और अंग्रेज़ी दोनों अनुवाद छपवाये। इसी साल आपने "हिन्दू ईश्वरवाद का समर्थन"† नामक अत्यन्त योग्यतापूर्ण ग्रन्थ दो भागों में लिखा। इस समय आप के विचारों की शोहरत दूर

* Abridgement of Vedant.

† A Defence of Hindu Theism.

दूर तक पहुँच गई थी। कलकत्ता आने के पहले ही वहाँ के निवासी आप को जान गये थे। इस कारण वहाँ का परम भक्त हिन्दू समुदाय पहले से ही आप का दुश्मन बना बैठा था। दूर मद्रास में भी आप के विचारों ने घोर हिन्दुओं को बड़ा नाराज कर दिया था। मद्रास गवनमेण्ट कालिज के अँगरेजी अध्यापक श्री-शङ्कर शास्त्री ने स्थानीय समाचार-पत्र 'मद्रास कूरियर' में राम बाबू के विचारों की धज्जियाँ उड़ाते हुए एक पत्र प्रकाशित किया था। इसी पत्र का उत्तर—और उसके साथ पत्र लेखक के विचारों की कड़वी आलोचना—यही इस हिन्दू ईश्वर वाद की पुस्तक में था। हिन्दू अवतारों का कपाल कल्पित बतलाते हुए आपने उनके सम्बन्ध में जो अपमानजनक कहा-नियाँ फैली हुई थीं या पुराणों में पाई जाती थीं—उनका उदाहरण देकर दिखलाया कि ईश्वर को इतना नीचे गिरा देना कैसी मीचता है? यह सो पुस्तक के पहले भाग में था।

इसी समय कलकत्ता गवर्नमेण्ट कालिज के संस्कृत पण्डित श्री मृत्युञ्जय विद्यालङ्कार ने आपके सिद्धान्तों के विरुद्ध 'वेदान्त चन्द्रिका' नामक पुस्तक लिखी। इसको पूरा पुस्तक का दूसरा भाग 'वेद की एक ईश्वर-वाद प्रणाली का द्वितीय समर्थन' नाम से इसका जवाब प्रकाशित किया।

यह तो थोड़े से सामान्य विरोधी हुए। इनका काम तो केवल लेखों द्वारा विरोध करना था। पर राम बाबू को वहस में बात चीत में, व्याख्यानों खुली सभाओं में रात दिन अपने विरोधियों

का सामना करना पड़ता था। कलकत्ता आने के एक वर्ष बाद हा आत्मीय सभा[1] नामक एक मित्र मण्डली आपने स्थापित की थी। इस मण्डली में इनके मित्र, शिष्य और इनके जैसे विचारों के लोग मेम्बर होते थे और प्रति रविवार को इसकी सभा होती थी। इसमें सबसे पहले राम बाबू या उनके मित्र द्वारा रचित ईश्वर की प्रार्थना गाया जाती थी और बाद में आत्मा, परमात्मा, वेदान्त आदि पर वादविवाद होता था। सभा का मूल उद्देश्य पवित्र हिन्दू धर्म में लोगों की भक्ति दृढ़ करना था। धीरे धीरे यह सभा बड़ी प्रसिद्ध संस्था हो गई।

अपने विरोधियों से इनकी जो टक्करें होती थीं उसका एक प्रसिद्ध उदाहरण सन् १८१९ के दिसम्बर की एक घटना है। इस समय श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री नामक एक मद्रासी पण्डित अपने शास्त्रीयज्ञान के लिए बड़े प्रसिद्ध थे। इन्होंने खुले आम चैलेंज दिया कि राममोहन राय मुझसे खुली सभा में मूर्ति-पूजा पर बहस करलें'। परम भक्त हिन्दू समुदाय के नेता श्री राधाकान्तदेव की अध्यक्षता में यह सभा आत्मीय सभा की ही बैठक में हुई—और किस प्रकार अपने तर्क व शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा राम बाबू ने शास्त्रीजी को पराजित किया, यह इतिहास में प्रसिद्ध हो गया।

बहस में हारने पर शत्रु लोग और तरह परेशान करने की कोशिश करते थे। कलकत्ते की 'सुप्राम कोर्ट' में

फिर वह मामला पेश हुआ। इस बार इनके भतीजे ने यह मुकद्दमा दायर किया कि राममोहन राय अब हिन्दू नहीं रहे इसलिए कानूनन ये पुश्तैनी जायदाद के एक टुकड़े के भी हकदार नहीं हो सकते। इसके पहले इन्हें जाति के बाहर करने की भी बड़ी कोशिश की गई तथा बहुत दिनों तक इनके लड़के की शादी रुकी रही। अन्त में एक प्रतिष्ठित ज़मींदार के यहाँ विवाह हो गया और सुप्रीम कोर्ट से मुकद्दमा भी खारिज हो गया।

इस समय तक विदेशों में—इङ्गलैण्ड फ्रांस तथा जर्मनी में भी आपका नाम फैल गया था और वहाँ के विद्वान् बड़े आदर के साथ आप का नाम लेते थे। उस समय की पादरी मिशनों की जो रिपोर्ट छपी हैं उसमें राम बाबू के नवीन विचारों की बड़ी प्रशंसा गायी गई है। लन्दन से प्रकाशित होने वाले धर्म सम्बन्धी एक मासिक-पत्र में इनके 'वेदान्त के साराश' नामक पुस्तक की बड़ी प्रशंसा गायी गई है। कुमारी मेरी कार्पेन्टर* (स्वर्गीय) ने राममोहन राय के अन्तिम दिन' नामक एक पुस्तक लिखी है। इसमें आपने मद्रास में नये ईसाई बने एक भारतीय श्री विलियम राबर्टस का लन्दन के एक गिर्जाघर के पादरी श्री टी० बालशम (रवरेण्ड) के नाम एक पत्र प्रकाशित किया है। इस में राम बाबू के एक-ईश्वरवाद, ईश्वर की एकता तथा पवित्र ईश्वरीय सिद्धान्तों के प्रचार की बड़ी प्रशंसा

* List divs of Ram mohan Ray Miss Mary onrpenter

छापी गई है। फ़्रांसीसी नगर ब्लाय के प्रधान पादरी ग्रे
ग्रेगायर का एक पत्र जिसमें राममोहन राय को एक उठता
हुआ धार्मिक सुधारक, अनुपम बुद्धि का योग्य पुरुष तथा परम
पिता की एकता का मानने वाला बतला कर बड़ी तारीफ़ की
गई थी।*

अस्तु, इससे केवल यह पता चलता है कि उस समय इन
महात्मा का कितना प्रचार हो रहा था। विदेश-स्वदेश में
प्रचार के अलावा इनकी निजकी मित्र-मण्डली भी खूब बढ़ रही
थी। जैसा महापुरुष होता है वैसी ही उसकी मित्र-मण्डली भी
होती है। इस समय द्वारकानाथ ठाकुर (टैगोर) ब्रजमोहन
मजूमदार, हलधर बासु नन्दकिशोर बासु तथा राजनारायण
सेन सरीखे धुरन्धर विद्वान इनके चेले थे। पाठक, बहुत सी
पुस्तकों में इन महाशयों का ज़िक्र पढ़ेंगे। इनके अलावा हरि
हरानन्द नाथ स्वामी नाम के साधु भी इनके परम भक्त और
मित्र थे। यद्यपि आपने साधु होकर घर-बार छोड़ दिया था, पर
रङ्गपुर में राम बाबू से भेंट होने से उनके विचारों पर इतने
लट्टू हो गये कि तब से उन्हीं के साथ छाया की तरह
रहने लगे और रामचन्द्र विद्या वागीश—ब्रह्म-समाज के
प्रथम मंत्री इन्हीं के छोटे भाई थे। नाथ स्वामी वामा

* Former bishop of Blois Abbe Gregoire in the monthly Repository

चारी या वाममार्गी थे। ये शक्ति के पूजक थे। इनका वाममार्ग एक ईश्वर में विश्वास रखना सिखलाता था। इस प्रकार १८१७ तक की जीवनी हम बतला चुके। अब १८१८ में प्रवेश करेंगे।

सती-प्रथा का इतिहास

राजा राममोहन राय के जीवन का सबसे उज्ज्वल कार्य भारत से सती प्रथा को नष्ट कराना है किन्तु उनके पहले का इतिहास जान लेना उचित होगा।

सती-प्रथाका इतिहास खून के अक्षरों में लिखने लायक है। मनुष्य-जाति में पुरुष जो सबसे अधिक नीचता कर सकता है, वह यही है। जिस समय मुगलों का यहाँ पर राज्य था, उसी समय से इस रिवाज़ को, बिना जनता को नाराज़ किये, रोकने की काफ़ी चेष्टा की जाती थी। इतिहास से पता चलता है कि, यह प्रथा, उस समय भी प्रचलित थी जिस समय सिकन्दर ने भारत पर हमला किया था—कम से कम पञ्जाब में ज़रूर थी। जो हो, मुगल बादशाहों ने इसे रोकने की थोड़ी बहुत कोशिश की थी और इस विषय में अकबर की कोशिशें प्रसिद्ध हैं। * कहीं कहीं ऐसी मिसाल मिलती है कि सरकार ने मना तक कर दिया था। पेशवा-मराठे सम्राट् भी इस प्रथा को नष्ट करना चाहते थे, तथा कइ पेशवा तो स्वयं जाकर विध-

* Asiatic journal january 1824

धाओं को सती होने से रोकते थे और समाज से उसकी रक्षा करते थे। वे उसके लिए पेन्शन का भी प्रबन्ध कर दिया करते थे।

जब यूरोपियन शक्तियों ने भारतभूमि पर पैर रक्खा, इंग्लैंड, पुर्तगीज़, डच तथा फ़रांसीसी तीनों ऐसे "भयानक" रिवाज़ को देखकर घबरा उठे और इन्होंने उसे रोकने की कोशिश की। इसमें इनको सफलता भी मिली। अंग्रेज़-सरकार भी चाहती थी कि, यह प्रथा रुक जाय, किन्तु प्रथासे बढ़कर वे अपना राज्य ज़रूरी समझते थे और फुटकर मिसालों को छोड़कर, सरकार की ओर से इसे रोकने की कोई कोशिश नहीं की गई। किन्तु अंग्रेज़ इस भयानक रिवाज़ को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे इसलिए समय समय पर इनकी इसमें दखल दाज़ी की मिसालें मिलती हैं।

पहली मिसाल सन् १७७२ की है जिस साल हमारे चरित नायक पैदा हुए थे। इस साल दक्षिण-भारत में त्रिपेटी नामक स्थान में कप्तान टोमिन यह सुनकर कि एक विधवा का बलिदान होने वाला है, सीधे उस स्थान पर चले गये और विधवाको छुड़ा लाये। क्रोध में आकर जनता ने उन पर हमला कर दिया तथा जान देने पर उतारू हो गई। पर इस शेर ने विधवा को लौटाया नहीं। दूसरी मिसाल जनवरी १७८६ की है जब कि शाहाबाद ज़िले के कलक्टर ने एक विधवा को सती होने से बचाया था। इस विषय में कोई सरकारी

हिदायत न होने के कारण आपने बड़े लाट को—उस समय लार्ड कार्नवालिस बड़े लाट थे—पत्र लिखकर अपने कार्य के विषय में राय माँगी। लाट साहब ने इनके कार्य की सरा हना करते हुए यह लिखा कि, जहाँ तक हो जनता को नाराज़ न किया जाय। 'साथ ही सरकारी हस्तक्षेपसे हिन्दुओं को उभारा न जाय।'

इस घटना के १६ वर्ष बाद, जनवरी १८०२ में ज़िला बिहा-रके ज़िलाधीश महाशय एलफ़िंस्टनने एक १२ वर्ष की अभा गिनी विधवाको जलाय जाने से बचाया और आप लिखते हैं कि, 'वह इसी कारण मेरी अत्यन्त कृतज्ञ थी।' आपने भी बड़े लाट लार्ड वेलेज़ली को पत्र लिखकर अपने कार्य के विषय में सलाह माँगी थी। लाट साहब ने भारत की सबसे बड़ी अदालत—न्यायालय (निजामत अदालत) को एक पत्र लिखकर इस विषय में हिंदू शास्त्रों की आज्ञा का पता लगाने का हुक्म दिया। अदालत ने पण्डितों से पूछकर कुछ कायदे सरकार की जानकारी के लिये भेजे—जिनके हिसाब से कानून बनाया जा सके। लेकिन ७ वर्ष तक सरकार ने कुछ न किया।

सात वर्ष बाद बुन्देलखण्ड के जिलाधीशने निज़ामत अदा लत को एक पत्र लिखकर यह पूछा कि, वह इस मामले में—सती प्रथा के मामले में क्या करें? अदालत ने उनका खत बड़े लाट, लार्ड (मार्क़िस) हेस्टिंग्स के पास भेज दिया। आठ महीने बाद, निजामत अदालत क पुराने कागज़ों के मुताबिक निश्चित

क़ायदे बना दिये गये, जिसमें शास्त्रों के अनुसार, सती होने की इच्छा न रखने वाली, गर्भवती, नशा खिलाई हुई, या नशे में चूर स्त्री को 'सती' करना मना किया गया था। इसके अलावा १६ वर्ष की अवस्था से नीचे की लड़की भी सती नहीं की जा सकती थी। इस क़ायदे से सबसे बड़ा नुकसान जो हुआ वह आगे खुला, यानी, सरकारने कुछ अवस्थाओं को छोड़कर प्रथा को क़ानूनी और उचित मान लिया।

१८१५ में यह कायदा और भी बढ़ाया गया और उन स्त्रियों का सती होना भी रोक दिया गया जिनके छोटे-छोटे बच्चे हों। १८१७ के बाद से लगातार तादाद रखी जाने लगी कि कितनी स्त्रियाँ सती होती हैं। इस तादाद को यदि पाठक पढ़ेंगे—प्रथम चार वर्ष की संख्या देखकर ही वे दङ्ग रह जायँगे :—

	कलकत्ता डि०	ढाका डि०	मुर्शिदाबाद डि०
ईसवी सन् १८१५ में	२५३	३१	११
" " १८१६ में	२८६	२४	२१
	पटना डि०	काशी डि०	बरेली डि०
" " १८१५ में	२०	४८	१५
" " १८१६ में	५६	६५	१३
	कलकत्ता डि०	ढाका डि०	मुर्शिदाबाद डि०
" " १८१७ में	४४२	५२	४२
" " १८१८ में	८४४	५८	३०
	पटना डि०	काशी डि०	बरेली डि०
" " १८१७ में	४६	१०३	१६
" " १८१८ में	५७	१३७	१३

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि १८१८ ई० में चार वर्ष में ही २३६५ स्त्रियाँ जला दी गई। खास बात यह है कि, इधर ज्यों ज्यों सरकार संख्या घटाने की तथा प्रथा को रोकने की कोशिश कर रही थी, उधर यह प्रथा अधिक भयानक होती जा रही थी। इस कारण हताश होकर लार्ड हेस्टिंग्सन सितम्बर १८१७ में सभी ज़िलाधीशों से इस बढ़ती के कारणों की रिपोर्ट माँगी। इसमें सबसे सूचनापूर्ण रिपोर्ट हुगली ज़िले के कलक्टर श्री ओकले की है। आप की रिपोर्ट का सारांश है:—

कलकत्ते की 'सती' की संख्या सब स्थानों से चौगुनी होने का प्रधान कारण यह है कि यहाँ के युवक तथा पुरुष सब से ज़्यादा दुराचारी और भ्रष्ट हैं। काली की ये उपासना करते हैं। कलकत्ते में काली-पूजा ही प्रधान पूजा है। और देवी को माँस व शराब चढ़ा कर खूब माँस व शराब पीना तथा रात दिन नशे में डूबे बदचलनी करते रहना ही काली की पूजा करना है। बदचलनी करते रहना पूजा में शामिल है। जो सब जगह से निकाला जायगा वह कालीजी का पूजक बन जायगा। वह लोग 'स्त्री' को जलाने में एक बड़ा मज़ा पाते हैं। इसमें इनको राक्षसी सुख मिलता है। इसी कारण कलकत्ते और उसके आस-पास खास कर बर्दवान—जो राममोहन राय जी का खास ज़िला था—यह प्रथा खूब ज़ोरों पर है।

सरकारी दस्तन्दाज़ी के बाद सतियों की संख्या बढ़ जाना तो मामूली बात है। जब सरकार कुछ भी दखल नहीं देती थी, हिन्दुस्तानी जानते थे कि अँग्रेज़ बड़ी घृणा तथा दुःख की निगाह से इस प्रथा को देखते हैं। पर जब से सरकार की ओर से पुलिस का दखल शुरू हुआ है और खास हालतों में ही सती करने का हुक्म मिला है, वे जान गये हैं कि सरकार ने अब तो खुल कर इज़ाज़त दे दी है कि 'अच्छा' जो खास हालतें बतलाई गई हैं, उनमें न सही। इसी कारण लोगों को भय न रहा, और उनकी राक्षसी प्यास ज़ोर मारने लगी, इस कारण 'सतियों' की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ गई है।

अन्त में इस ज़िलाधीश ने यह सिफ़ारिश की थी कि, 'कानून-द्वारा इस प्रथा को फ़ौरन रोक देना चाहिए तथा इससे केवल वे लोग ही नाराज़ होंगे जिन्हें कोई लाभ होता है, जैसे ब्राह्मण। वे तो इसी प्रथा के कारण जी रहे हैं।

एक ओर यह हो रहा था, दूसरी ओर सरकार की दस्तन्दाज़ी को देख कर कलकत्ते के नागरिकों की ओर से, कुछ मियाँ मिट्ठू पण्डितों ने अपने को कलकत्ते का प्रतिष्ठित नागरिक लिखकर यह प्रार्थना पत्र लाट साहब के पास भेजा कि, सनातनधर्म-द्वारा आज्ञा प्राप्त यह प्रथा उचित है और सरकार को इसमें कुछ भी हस्तक्षेप न

करना चाहिए। किन्तु, यह समाचार मालूम होते ही, नगर के बहुत से प्रमुख महाशयों ने लाट साहब के पास प्रार्थना-पत्र भेजा और उसमें उन मियाँ मिट्ठुओं से यह सवाल किया कि, उन्हें अपने को सारे नगर का प्रतिनिधि कहने का क्या हक़ है! साथ ही इन्होंने लाट साहब से प्रार्थना की कि, उनकी (मियाँ मिट्ठुओं की) प्रार्थना ग़लत है और सरकार क़ानून बनाकर 'स्त्रियों की इस हत्या' को रोक दे।

१८२६ में लार्ड हेस्टिंग्ज चले गये। उन के बाद लार्ड एम्हर्स्ट बड़े लाट होकर आये। यद्यपि आप भी इस प्रथा को अमानुषी मानते थे, परन्तु इस बारे में विशेष कार्य उनसे न हो सका।

सती-प्रथा का भयंकर दुश्मन

राममोहन राय ने अपनी भावज के सती होने पर जो शपथ खाई थी, वह मैं पाठकों को बतला चुका हूँ। पर एक अंग्रेज़ लेखक का कहना है कि भावज के सती होने के समय राम बाबू वहाँ नहीं थे, जब पीछे इन्हें समाचार मिला इन्होंने शपथ खाई। जो हो, सती-प्रथा के विरुद्ध इन्होंने उसी समय से काम करना शुरू कर दिया। श्री हेमचन्द्र सरकार एम० ए० का कहना है कि पुराने विचार के हिन्दू उन से

इसी कारण और भी घृणा करते थे। कलकत्ते आने पर राम बाबू श्मशान घाट पर जाकर विधवाओं को सती होने से रोका करते थे। ये ब्राह्मणों से कहते कि पहले विधवा को बैठाकर आग न जलाओ—शास्त्र में लिखा है कि पहले आग जलाई जाय और तब पीछे से विधवा उसमें प्रवेश करे। उनकी इन्हीं दस्तन्दाज़ियों के कारण हिन्दू समुदाय और भी नाराज़ होता जाता था।

१८१८ से इन्होंने केवल ज़बानी नहीं, लिखकर भी लड़ाई शुरू की। इन्होंने सती प्रथा पर सवाद क रूप में एक निबन्ध प्रकाशित किया। इन्होंने उसमें इस प्रथा के विरोध और समर्थन में बहुत से प्रमाण दिये। इस सम्वाद में समर्थक महोदय ने स्त्रियों को जलाने का कारण यह बतलाया है कि वे बहुत जल्दी पथभ्रष्ट हो जाती हैं इसलिए उन्हें जला डालना ही ठीक है। इस मूर्खता की दलील का विरोधी महाशय ने ऐसा खरा और बढ़िया जवाब दिया है कि, वह पढ़ने ही लायक है। उसको पढ़कर यह भी पता चलता है कि नारी-जाति क लिये राम बाबू के हृदय में कितना स्थान था। आपने साफ़ लिखा है:—

"आप कहते हो कि स्त्रियाँ स्वभाव से ही दुर्बल हैं। उनका चित्त चंचल होता है और वे बड़ी जल्दी बुरी राह पर चलने लगेंगी—और इसी अनुमान पर आप उन्हें जला

डालते हैं—मौत की सजा देते हैं, लेकिन मुझे इस बारे में आप लोगों से कुछ कहना है।

शारीरिक शक्ति में ज़रूर स्त्रियाँ पुरुषों से कम होती हैं और इसीका फायदा उठाकर उन्होंने उनमें वे सुन्दर योग्यतायें नहीं आने दी हैं जो उनमें स्वभाव से ही भरी होती हैं। हम उनके पढ़ने का, शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करते। हम उनको पढ़ने का, मौका ही नहीं देते तब हम कैसे जानें कि वे कितनी योग्य हैं। हम उनको पढ़ाने की चेष्टा न करके उनको मूर्खा कहते हैं। करनाटक के राजा की स्त्री लीलावती कालिदास की स्त्री भानुमती अपनी विद्या के लिये प्रसिद्ध हैं। वेदों में लिखा है कि महर्षि याज्ञवल्क्य ने गूढ़तम ज्ञान अपनी स्त्री मैत्रेयी को समझाया, और वह सब समझ गई। इसलिए यह सरासर गलत खयाल है कि स्त्रियाँ मूर्ख होती हैं।

आप कहते हैं कि वे दुर्बल—स्वभाव की होती हैं। मुझे यह सुनकर आश्चर्य होता है। मौत का नाम सुनते ही मर्द काँप उठता है पर किस दृढ़ता के साथ वे अपने पति की लाश पर बैठ कर आग में जल जाती हैं। इससे बढ़कर दृढ़-निश्चय का और कौन उदाहरण होगा।

आप कहते हैं कि वे विश्वासपात्र नहीं होतीं। उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए। मुझे आश्चर्य होता है। ज़रा ग्राम में, नगर में जाकर पता लगाइये कि स्त्रियों से दस गुने

ज़्यादा मर्द धोखेबाज़ होते हैं। आदमी पढ़ना-लिखना जानते हैं। सरकारी नौकरी में आये दिन वे बेईमानी किया करते हैं, पर उनकी धोखेबाज़ी कोई नहीं पकड़ता। स्त्रियों में एक कमज़ोरी ज़रूर है—और वह यह है कि, वे बड़ी आसानी से दूसरों पर विश्वास कर बैठती हैं, और इसी कारण दुनियाँ में इतनी अंधेर, परेशानी व तकलीफ उठाती हैं।

कहा जाता है कि स्त्रियों में विलास ज़्यादा होता है। वे बुरे रास्ते पर जल्दी चलती हैं। यह तो विवाह की प्रणाली से ही जाना जा सकता है। एक पुरुष दो या तीन स्त्रों से विवाह करता है। वह कई बार विवाह करता है पर बेचारी स्त्री केवल एक विवाह करती है और वह भी, अपने पति के मरजाने पर संसार का सारा सुख छोड़ कर उसके साथ चिता पर जल जाने को तैयार रहती है या जीवन बिताती है।

'स्त्रियों में गुणका ज्ञान नहीं है' यह कहा जाता है। पर कितने शर्म व लज्जा की बात है कि गुण के खान की जो मूर्ति ही है उसी को हम ऐसा कहते हैं। आप में से कितने कुलीन ब्राह्मण १०—१२ कन्याओं से विवाह कर लेते हैं। इनमें से बहुत सी स्त्रियों को तो केवल विवाह के दिन ही देख पाते हैं। तिस पर भी वे अपने सतीत्व को अपनी कुलीनता को बचा कर, जन्म भर अपने

पिता की दासी बनी पड़ी रहती हैं और कभी आप को एक शब्द भी बुरा नहीं कहतीं। विवाह के समय स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी बन जाती है। पर विवाह के बाद उसके साथ दास-दासी से भी बुरा बर्त्ताव किया जाता है। घर का सारा काम उन्हें करना पड़ता है। वह घर में पड़ी सड़ा करती है। पति बाहर आनन्द करते हैं। वह उनको आनन्द करते देख कर भी कुछ नहीं बोलती। यदि परिवार दरिद्र है तो घरका अपना से अपना काम उसे करना पड़ता है। गाय का गोबर पाथने से लेकर पति की सारी नौकरी बजानी पड़ती है। तिस पर, यदि कुटुम्ब बड़ा है, तो सास, ननद, देवर, जिठानी सब की झिड़की सुननी पड़ती है। मर्द खा-पीकर बाहर चले जाते हैं, तब वह भोजन करती है। बेचारी क्या रूखा-सूखा खा रही है, उन्हें पता भी नहीं चलता। छोटे तथा कहीं कहीं बड़े बड़े घरों में भी ज़रा से क़सूर पर स्त्रियाँ पीटी जाती हैं। पर यह सब अवस्था वे शान्तिपूर्वक बर्दाश्त करती हैं। दया की ऐसी सुन्दर मूर्ति और गुणों की प्रतिमा होने पर भी आप लोगों के दिल में दया नहीं आती और आप उन्हें बाँध कर जला डालते हैं।"

सती प्रथा के विरुद्ध इससे बढ़ कर हृदय को कपा देने वाली और कौन बात हो सकती है। पर केवल महिलाओं का गुण-वर्णन करके ही नहीं, किन्तु, मनु आदि का शास्त्रीय उदाहरण देकर भी आपने इस प्रथा को अशास्त्रीय तथा धर्म-

विरुद्ध सिद्ध किया था। यह पर्चा आपने के १६ महान बार १८२० में आपने इसी पर्चे के आगे दोनों—'विरोधी और समर्थक की और भी बातचीत'—प्रकाशित की थी। इसमें और भी दलीलों द्वारा साफ़ साफ़ शब्दों में इस घोर अन्याय को फटकारा गया था। यह पर्चा बड़े लाट की धर्मपत्नी को सादर समर्पित था। जिससे पता चलता है कि लाट साहब की भी इनके आन्दोलन के साथ सहानुभूति थी।

ऊपर हम दूसरी अर्ज़ी का ज़िक्र कर आये हैं—वह जो कलकत्ते के नागरिकों की ओर से मियाँ मिट्ठू लोगों के जवाब में भेजी गई थी—उसका ज़्यादा तर हिस्सा राममोहन राय ने ही लिखा था। इस प्रकार इस कुप्रथा को रोकने में वे जी जान से लग गये।

सत्य-संग्राम

"सत्येन पूयते साक्षी धर्मःसत्येन वर्द्धते।
तस्मात् सत्यं हि वक्तव्यं सर्व वर्णेषु साक्षिभिः॥ मनु०—

अर्थात्, सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता है और सत्य बोलने से धर्म बढ़ता है, इससे सब वर्णों में साक्षियों को सत्य ही बोलना श्रेष्ठ है।

सती-प्रथा के संग्राम पर लिखना समाप्त कर हम अब

राम बाबू के जीवन के एक दूसरे आवश्यक पहलू पर चलते हैं। सती-प्रथाका संग्राम तो बहुत दिनों तक चलेगा।

इस समय भारत में ईसाई धर्म का धीरे धीरे फैलाव हो रहा था। भारत-सरकार के ही खर्चे से यद्यपि उसने—कम्पनी ने—यह घोषणा की थी कि भारतीयों के धर्म में कोई दस्तन्दाज़ी न करेगी—पादरी लोग ईसाई धर्मका प्रचार किया करते थे। किन्तु इस समय कोई बड़ा योग्य पादरी भारत में न था। केवल सिरामपुर में मि० केरी और मार्शमान (दोनों डाक्टर थे) नामक बड़े उत्साही पादरी थे। इनमें केरी पहले जूते का व्यवसाय करते थे। अतः अधिक शिक्षा इनकी नहीं हो सकी थी। धर्म के प्रचारका सबसे प्रमुख काम यही था कि ईसामसीह का चित्र व ईसाइयों का वेद 'बाइबिल' चारों ओर खूब बाँटा जाता था। हिन्दुओं में समाज के अत्याचारों से पीड़ित चमार भङ्गी 'टोप या कोट' के लालच से ईसाई हो जाया करते थे। जो बंगाली दो चार अक्षर अँग्रेज़ी पढ़ लेते थे, वे भी, हिन्दू समाज की कुप्रथाओं से घृणा करने के कारण ईसाई धर्म को ही शिक्षितों का धर्म मान बैठते थे और ईसाई हो जाते थे। इस प्रकार ईसाई होने का कारण अपने धर्म का अज्ञान ही था।

हमें यहाँ ईसाई धर्म के विस्तार तथा उन्नति का इतिहास नहीं देना है, साथ ही राजा राममोहन राय की इस क्षेत्र में पूरी

कार्यवाही भी नहीं बतलाना है। किन्तु फिर भी, थोड़ा स
जानकारी ज़रूरी है।

राममोहन राय बाबू का उनके विचारों के कार
ईसाई लोग खूब जानते थे। इनके विषय में एक ईसा
पादरी ने १८१६ में यहाँ तक लिखा था कि अपनी फ़ारस
की क़ाबलियत के कारण ये मौलवी राममोहनराय क
जाते हैं। इसी साल प्रसिद्ध पादरी महाशय येट्स ने इन
प्रशंसा अपने पत्र में की थी।

राम बाबू ने कलकत्ते आते ही ईसाई-धर्म का अध्ययन शु
किया था। १८१७ में महाशय डिगवी का पत्र लिखते समय रा
बाबू ने यह लिखा भी था कि जनता का नैतिक-सदाचारम
जीवन सिखलाने के लिए तथा ईश्वर की ओर जीवन की एक
का पाठ पढ़ाने के लिए बाइबिल से बढ़ कर—ईसाई धर्म से ब
कर—और कोई ग्रन्थ या धर्म नहीं है। स्मरण रहे कि आप
सदाचार के पाठ में ईसाई धर्म को सब से ऊपर रक्खा था
धर्म का मुकाबिला नहीं किया था। पर ईसाई धर्म की पढ़ा
आप ने केवल अँगरेज़ी पढ़ कर ही समाप्त नहीं कर दी किन्
यूनानी और हिब्रू भाषा पढ़कर ईसाई धर्म के पहले स्वरूप यहूदी
धर्म को पढ़ा। इसके बाद आपने ईश्वर की शिक्षा, शान्ति तथ
सुख का प्रदर्शन, नामक ग्रन्थ लिखा। यद्यपि आपने इस
नाम में यह भी जोड़ दिया था कि शीघ्र ही इसका बंगला तथ

संस्कृत अनुवाद छापा जायगा पर आप को समय न मिल सका।

यह पुस्तक बड़ी योग्यता के साथ लिखी गई थी और इसमें साफ़ शब्दों में यह लिखा गया था कि संसार के कल्याण के लिए, मनुष्यता का पाठ पढ़ाने के लिए, एकता के सूत्र में बाँधने के लिए ईसाई धर्म से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है। किन्तु, आप ईसामसीह को स्वयं देवता या देव-पुत्र मानने को तैयार नहीं थे। आप उन ईसाइयों के समान नहीं थे जो ईश्वर, ईसामसीह तथा पवित्र धर्म ग्रन्थ (बाइबिल) तीन वस्तु की पूजा करते हैं। वे ग्रन्थ को एक दैवी वस्तु या ईसामसीह को ईश्वर मानने के लिए तैयार नहीं थे। इन्हीं के मत के समान मतवाले ईसाई यूरोप में भी बहुत से थे और इन्हीं "यूनिटेरियन" यानी त्रि वस्तु-तीन चीज़ (ईश्वर, ईसा, धर्म-ग्रन्थ) में नहीं विश्वास रखने वाले कहलाते थे। ये सब से बड़ा ईश्वर को ही समझते थे और उसी की पूजा को मुख्य वस्तु मानते थे।

राम बाबू के इस विचार के कारण बङ्गाल के पादरी बहुत नाराज़ हुए और उन्होंने इनके विरुद्ध लेख आदि लिखने शुरू किये। सिरामपुर के पादरी अँगरेज़ों ने "भारत का मित्र" नामक एक त्रैमासिक पत्रिका निकालते थे। इसमें राम बाबू का पुस्तक की कड़ी आलोचना छापी गई। फिर

म्या था—इसी समय से आप में और बङ्गाल के प्र रियों में बहस की जो लड़ाई छिड़ी वह बहुत दिनों तक रही। किन्तु, हमें इस झगड़ेको देकर व्यर्थ समय नहीं बढ़ाना है। यह ज़रूर है कि ईसामसीह को देवता न मान कर तथा बाइबिल के आश्चर्य भरे पुराणों के समान किस्सों पर सन्देह प्रकट कर राम बाबू ने ईसाई समाज का वैर अपने सर ओढ़ लिया था। किन्तु, ईसाई धर्म में जिस बुद्धि से इनको विश्वास था, वह अचल तथा दृढ़ रहा और समय समय पर ये अपने विरोधियों को मुँहतोड़ उत्तर देते रहे।

भारत में पादरी लोग क्यों असफल रहे, इसका एक बड़ा अच्छा कारण राम बाबू ने लिखा था और उसमें आपने बतलाया था कि पादरी लोग धर्म की शिक्षा देना जानते ही नहीं। भारतीय मस्तिष्क कैसा है, इसका उनको ज्ञान नहीं है। उनका बाइबिल की प्रतियाँ मुफ़्त में बाँटी जाती हैं। भारतीय प्रजा के अपने भी अन्ध विश्वास हैं। उसका अपना भी रहस्य भरा धर्म है। इसीलिए उसे जो नई बातें बतलाई जाती हैं, वह उसे अपने धर्म के साँचे में उतार लेता है। उस ईसामसीह के पवित्र संदेश, जीवन की एकता, ईश्वर की एकता का पाठ न पढ़ाकर ठोस ईसाई उसूल बतला दिए जाते हैं— और उन्हीं उसूल के समान उसूल हमारे यहाँ भी भरे पड़े हैं। अबतक ईसामसीह की निजी पूजा से हटकर उनके पवित्र

उपदेशों को जीवन की साधारण ज़रूरियातों के संग न समझाया जायगा, तबतक कुछ न होगा।

किन्तु, ये सब पते की बातें ईसाईयों को और भी नाराज़ करनेवाली थीं। उन्हीं से वाद-विवाद के कारण राम बाबू को कई पत्रिकायें लिखनी पड़ीं। १८११ में आपने 'ईसाई जनता से दूसरी प्रार्थना' प्रकाशित की। यह पहली प्रार्थना से छः गुनी बड़ी थी तथा इसमें अपने ऊपर किये गये सभी आक्षेपों का उत्तर दिया गया था। इसमें भी आपने ईसा मसीह को मनुष्य तथा ईश्वर के बीच सम्बन्ध करानेवाला एक व्यक्ति माना था।

यह झगड़ा हमारे लिए विशेष रोचकता नहीं रखता। कलकत्ता आने पर राम बाबू की एक बड़े ही न्यायप्रिय तथा उदार अँग्रेज़ सज्जन श्री डैविड हेयर से मित्रता हो गई। श्री डेविड हेयर भारत के हित के लिए बहुत काम करते थे तथा यहाँ अँग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार के लिए तो ये जी-जान देते थे। इनसे घनिष्टता के कारण राम बाबू का आगे चल कर गुरु-शिष्य का सम्बन्ध हो गया। डेविड हेयर उनकी आत्मीय-सभा के मेम्बर हो गये।

इस समय एक बड़ा आदमी इनका चेला हो गया था। वे थे महाशय विलियम ऐडम्ज़। विलियम ऐडम्ज़ मद्रास के योग्य पादरियों में से थे तथा पूर्वी विषयों की

इनकी योग्यता बड़ी पक्की थी। इनको राम बाबू से धी
धीरे घनिष्ठता बढ़ती गई और परिणाम यह हुआ कि इन्हीं
साथ मिल कर राम बाबू ने बाइबिल का पूरा अनुवाद बंग
में कर डाला। धीरे धीरे साथ रहते रहते महाशय एडम्स
राम बाबू की राय से सहमत होगये। अन्त में १८२१
वे भी 'ईश्वर ईसामसीह, धर्म-ग्रन्थ' इन तीनों पर विश्वा
छोड़कर 'एक ईश्वर' पर विश्वास करने लग गये। १८२२
महाशय ऐडम्ज़ ऐसे योग्य आदमी का यह धर्म-परिवर्त
ईसाइयों को और भी नाराज़ कर बैठा और उन्होंने उ
काफ़िर तथा नीच तक कह डाला। पर यूरोप के 'यूनिटेरियन
सम्प्रदाय के लोग इससे प्रसन्न ही हुए।

धीर धीरे ऐडम्ज़ तथा राम मोहन बाबू की घनिष्ठता बढ़
आ रही थी। श्री एडम्ज के ही एक पत्र से मालूम होता है कि
राम बाबू को तर्क तथा विद्या में हरा सकने में असमर्थ हो
क कारण ईसाई-समाज ने रुपये तथा पद का लोभ देक
इनको ईसाई बनाना चाहा। कलकत्ते के प्रधान गिर्जाघर
बड़े पादरी डा० मिडिलटन ने इनको अपने यहाँ बुलवा भेजा
और कहा—

'देखो राम बाबू, यदि तुम ईसाई हो जाओगे तो तुम्हें
पद और धन दोनों मिलेंगे और तुम्हारा नाम भारत से लेकर
इङ्गलैण्ड तक में फैल जायगा तथा तुम्हारे मरने पर भी लोग
बड़े आदर से तुम्हारा नाम लेंगे।"

राम बाबू हृदय से हिन्दू थे। हिन्दू धर्म की असलियत इन्हें मालूम थी। ये जानते थे कि पराये धर्म में जो भी कुछ ज्ञान है, वह सब अपने धर्म में है। पर वह इतना गूढ़ है कि उसकी व्यावहारिक शिक्षा मिलना कठिन है। ईसाई धर्म की प्रशंसा इसीलिए थी कि वह जनता के हृदय तक सरलता से पहुँच सकता था। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं था कि वे ईसाई होना चाहते थे। इनका ईसाई धर्म का समर्थन उन हिन्दुओं को, जो ईसाई धर्म पर भक्ति करना अज्ञानवश सीख गये थे तथा ईसाई पादरियों को ही सब कुछ समझते थे—ये देखने लगे कि ईसाई-धर्म में सभी बातें पूरी तरह निश्चित नहीं हैं। इसमें भी विवादपूर्ण प्रश्न हैं। राममोहन राय के यहन-मुबाहिसे ने उसकी बुराइयाँ सबके सामने रख दीं। उन्होंने एक ईश्वर में विश्वास करने की नीति का प्रतिपादन किया।

डा० मिडिलटन ऐसी महान् आत्मा को फुसलाकर ईसाई बनाना चाहते थे तो यह उनकी मूर्खता थी। डा० मिडिलटन के यहाँ से लौट कर राम बाबू सीधे मि० ऐडम्स के यहाँ आये। वहाँ आपने भोजन किया। यह एक कुलीन ब्राह्मण के लिये आश्चर्यजनक बात थी। परन्तु राम बाबू इन सब व्यर्थ के बन्धनों से ऊपर थे। आपने घण्टों एडम्स साहब से बातें कीं तथा मिडिलटन साहब की क्षुद्रता पर विचार किया। इनकी पारस्परिक मित्रता की पक्की गाँठ यहीं से पड़ी और यही घटना आगे चल कर इनके जीवन में बहुत प्रभाव

जान सकी। एडम्स साहब राम बाबू के व्यक्तित्व से कितने प्रभावित होते थे। इसको उन्होंने इस प्रकार अपने एक पत्र में लिखा है :—

"मैं किसी के सामने इतना प्रभावित नहीं होता था जितना इस दृढ़ निश्चयी, पुरुष-राम मोहन राय के सामने"

इसी समय से ईसाई धर्म के प्रति प्रवाह बदलता है। एक ब्राह्मण होकर राम बाबू ने अपने देश वालों को ईसाई धर्म का गुण बतलाकर उसे ही सुख तथा शान्ति पाने का एक मात्र साधन बतलाया था। एक ब्राह्मण होकर भी आपने एक अंग्रेज़ के साथ बाइबिल का बंगला में अनुवाद किया था। यही नहीं, आपने भारतीय पादरियों की कार्यवाहियों की कड़ी टीका करनी शुरू कर दी।

ब्राह्मण-पत्रिका

१४ जुलाई १८२१ को सिरामपुर के 'मिशन-प्रेस' से समाचारदर्पण नामक एक ईसाई पत्रिका निकलनी शुरू हुई। इसकी पहली ही संख्या में वेदांत-शास्त्र पर एक कड़वी आलोचना भरा लेख छापा गया जिसमें इस पर अस्त-व्यस्त अनियमित विचारों का दोष लगाकर यह बतलाया गया था कि इसके सिद्धान्त ईश्वर एक है—या अनेक—इस पर कोई निश्चित राय नहीं देते तथा सृष्टि की उत्पत्ति उसके विनाश और ईश्वर की ज़िम्मेदारी के विषय में कोई भी पक्की बात

नहीं बतलाई गई है। इस लेख के विरोध में दलीलें भी माँगी गई थीं। राममोहन राय तो वेद के 'एकमेवाद्वितीयम्' के प्रबल समर्थक थे। भला वेदान्त शास्त्र को इस प्रकार झूठा क़रार देना इन्हें कब अच्छा लगता। आपने फ़ौरन इसका प्रतिवाद प्रकाशनार्थ भेजा किन्तु सम्पादक महोदय ने इसे दबा दिया।

राममोहन राय इस प्रकार हारनेवाले नहीं थे। इन्होंने फ़ौरन 'शिवप्रसाद शर्म्मा' के उपनाम से, अपने सम्पादन में "ब्राह्मणिकल मैगज़ीन" नामक एक पत्रिका अँग्रेज़ी में निकाली। उसका उद्देश्य था–'ईसाई पादरियों के आक्रमणों से हिन्दू-धर्म की रक्षा करना।' प्रथम तथा द्वितीय अङ्क में आपने 'वेदान्त-सूत्र' सम्बन्धी 'समाचार दर्पण' के लेखों को फिर से छापा और उनके साथ अपना जवाब भी छापा। इस पत्रिका का प्रचार जादू की तरह से बढ़ा। इसका कारण यह था कि लोग, यह महसूस करने लगे थे कि हिन्दू-धर्म वैसा नहीं है–जैसा व समझा करते थे। इस पत्रिका के साथ दूसरे अँग्रेज़ी पादरी पत्र 'भारत का मित्र' 'दी फ़ैण्ड आव इण्डिया' की मुठ भेड़ हो गई और बहस पुनः 'यूनिटेरियन' व 'ईश्वर, ईश, धर्म-ग्रन्थ' पर उतर आई। राम बाबू 'शिवप्रसाद शर्म्मा' के नाम से इसका जवाब दिया करते थे। धीरे धीरे यह पादरी पत्र गाली-गलौज़ पर उतर आया और 'शिवप्रसाद शर्म्मा' ने साफ़ लिख दिया कि, 'हम को आपस में गाली-गलौज़ न करके, एक धर्म

की बात पर बहस करना है।' इसी पत्रिका में आपने यह भी लिखा था कि भारत में ईसाई मिशनों का होना वृटिश सरकार के इस वादे के खिलाफ़ है कि भारतीय धर्म में किस प्रकार का हस्तक्षेप न किया जायगा।

इस प्रकार की बहस का यही परिणाम था कि, राममोहन राय धर्म के असली तत्त्व पर पहुँचते जा रहे थे।

यूनिटेरियन-समिति

सन् १८२२ में, राजा राममोहन राय की सहायता से 'कलकत्ता यूनिटेरियन समिति' नामकी एक संस्था खोली गई। उसका उद्देश धर्म परिवर्तन नहीं, किन्तु ईसा के सिद्धान्त के विषय में जनता को सच्चा ज्ञान देना तथा उस विषय का अज्ञान दूर करना था। इसका साधन—'पुस्तकें अंग्रेज़ी तथा देशी भाषाओं में प्रकाशित करना तथा मौखिक वाद-विवाद द्वारा विचार करना' था। इस संस्थाका सारा कार्य राम बाबू के व्यय से चलता था। एक तो इनकी आय ही क्या थी। जो थी, वह परोपकार के काम में ख़र्च हो जाती थी। संस्था के प्रथम मंत्री श्री ऐडम्ज़ इन्हीं के खर्च से जीवन बिताते थे। संस्थाका एक निज़ी छापाखाना था। वह भी राम बाबू का था।

ईसाई-समाज इनको चैन लेने देना नहीं चाहता था। दिसम्बर १८२१ में 'फ्रेण्ड आफ् इण्डिया'' में १२८ पृष्ठ में राम बाबू के ईसाई-धर्म-सम्बन्धी सिद्धान्तों के धुर्रे उड़ाने की

कोशिश की गई थी। राम बाबू ने २५६ पृष्ठ का हमारा 'ईसाई जनता से अन्तिम निवेदन' लिखा। इनकी पहली पुस्तकें ईसाई मिशन के ही छापेखाने में छपी थीं। उन्होंने इसे छापना ना मंजूर कर दिया। इसलिए इनको टाइप वगैरः खुद खरीद कर किताब छापनी पड़ी। इस पुस्तक में इतने सुन्दर ढङ्ग से ईसाई जनता के सामने सारी स्थिति रखी गई थी कि, शायद उन्हें इनकी दलीलों के जवाब देने पर दुःख हुआ हो। यह बहस समाप्त नहीं हुई और बहुत दिनों तक चलती रही। नवम्बर १८२२ में 'ब्राह्मणिकल मेगज़ीन' बन्द कर दिया गया। उसका उद्देश्य समाप्त हो चुका था, इसलिए अब उसकी कोई ज़रूरत न समझी गई। इस पत्रिका के बन्द होने के बाद एक प्रकार से ईसाइयों से भी लड़ाई समाप्त हो गई। इनकी समिति कुछ विशेष उन्नति न कर सकी। इसके लिए राम बाबू ने जो रुपया खर्च किया था उसके बदले में इन्हें गालियाँ और ईसाइयों की जली-कटी बातें सुननी पड़ती थीं। उस समय अपने कई विदेशी मित्रों को पत्र लिखते समय राम बाबू ने लिखा था कि—"मैं ईसा के पवित्र सिद्धान्तों के प्रचार के लिए अपना सर्वस्व, अपना जीवन तक उत्सर्ग कर सकता हूँ", इसीसे लोग उनको ईसाई कहते थे।

१८२३ में 'प्रसन्न कुमार ठाकुर'' द्वारा लिखित एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित हुई। उसका नाम था, 'एक ईश्वर में विश्वास रखनेवाले अपने देशी भाइयों से नम्र निवेदन'

उसमें वेदों द्वारा 'ईश्वर एक है' यह प्रमाणित करते हुए, सभी धर्मों ने ईश्वर एक ही बतलाया है, यह सिद्ध कर, एक परमात्मा में विश्वास करने की प्रार्थना की गई थी। इसे पुस्तिका न कह कर, एक लेख कहें तो अधिक उत्तम होगा। यह प्रसन्नकुमार और कोई नहीं राममोहन बाबू ही थे। इनका उपनाम था प्रसन्नकुमार।

मुकद्मा

इसी साल रामबाबू पर वह मुक़द्मा दायर हुआ जिसने आठ वर्ष तक इन्हें परेशान रक्खा था। अपने भतीजे से मुक़द्मा जीते इन्हें तीन वर्ष ही बीते थे कि वर्द्धमान के राजा ने इनके ऊपर १२,००२) रुपये का दावा किया। इनके पिता ने ७,२०१) रुपये राजा बर्द्धवान से अपने बकाया लगान को चुकता करने के लिये लिए थे। यह रक़म उसी रुपये का सूद तथा असल रक़म जोड़ कर बनी थी। राम बाबू का कहना था कि, निजी बैर के कारण इन पर यह मुकद्मा चलाया गया है। राममोहन के दामाद ने, जो राजा बर्द्धवान के लड़के के दीवान थे, लड़के के मर जाने पर उसकी विधवा रानी की ओर से वकालत करके, राजा से उस विधवा रानी को रुपये दिलवाये थे, जिसका उसको हक था। विधवा के अधिकार के लिए इस वकालत की असली जड़ राजा साहब ने राममोहन राय को ही समझा और इसी कारण मुक़द्मा इनके खिलाफ़ बैर

निकलने के लिये चलाया गया—पर राममोहन राय की दलील थी कि:——

(१) पिता-द्वारा सम्पत्ति के हक से रहित कर दिये जाने के कारण वे उनके के कर्ज़ों के ज़िम्मेदार नहीं।

(२) पिता की ज़िन्दगी में एक बार भी तकाज़ा नहीं किया गया।

(३) १२ वर्ष तक जो कर्ज़ा नहीं माँगा जाता वह कानूनन कर्ज़ नहीं रह जाता।

मामला तै न हुआ और कलकत्ते की अदालत से राममोहन राय मुकद्दमा हार गये। राजा बर्दवान ने इनको चौपट करने के लिये रुपये बहा दिये थे। इस अदालत में हार जाने पर राम बाबू ने सदर दीवानी अदालत में अपील की। १० नवम्बर १८११ को वे यहाँ से भी मुकद्दमा हार गये—और इस प्रकार एक विधवा के अधिकार के लिए लड़ने का यह फल हुआ कि वे खुद महा दरिद्र हो गये।

राजा राममोहन राय की जीवनी का त्याग भरा रहस्य पाठकों ने पढ़ ही लिया है। सत्य की लड़ाई में इनको जो दुःख झेलना पड़ा वह संसार के प्रायः सभी प्रचारकों को झेलना पड़ता है। किन्तु, ये चारों ओर काम होने पर भी, धैर्य्यपूर्वक सब काम संभाले जाते थे। बहुत से महात्माओं की जीवनी में यह होता है कि वे एक बात को लेकर उसी के लिए आन्दोलन और युद्ध करते हैं। किन्तु राममोहन राय

उसमें वेदों द्वारा 'ईश्वर एक है' यह प्रमाणित करते हुए, सर्व धर्मों मे ईश्वर एक ही बतलाया है, यह सिद्ध कर, एक परमात्मा में विश्वास करने की प्रार्थना की गई थी। इसे पुस्तिका न कह कर, एक लेख कहें तो अधिक उत्तम होगा। यह प्रसन्नकुमार और कोई नहीं राममोहन बाबू ही थे। इनका उपनाम था प्रसन्नकुमार।

मुकद्दमा

इसी साल रामबाबू पर वह मुक़द्दमा दायर हुआ जिसने आठ वर्ष तक इन्हें परेशान रक्खा था। अपने भतीजे से मुकद्दमा जीते इन्हें तीन वर्ष ही बीते थ कि वर्द्धमान क राजा ने इनके ऊपर १२,००२) रुपये का दावा किया। इनके पिता ने ७,२०१) रुपये राजा वर्द्धमान से अपने बकाया लगान को चुकता करने के लिये लिए थे। यह रक़म उसी रुपये का सूद तथा असल रक्म जोड़ कर बनी थी। राम बाबू का कहना था कि निजी बैर के कारण इन पर यह मुकद्दमा चलाया गया है। राममोहन के दामाद ने, जो राजा वर्द्धमान के लड़के के दीवान थे, लड़के के मर जाने पर उसकी विधवा रानी की ओर से वकालत करके, राजा से उस विधवा रानी को रुपये दिलवाये थे, जिसका उसको हक था। विधवा के अधिकार के लिए इस वकालत की असली जड़ राजा साहब ने राममोहन राय को ही समझा और इसी कारण मुक़द्दमा इनके ख़िलाफ़ बैर

निकालने के लिये चलाया गया—पर राममोहन राय की दलील थी कि:——

(१) पिता-द्वारा सम्पत्ति के हक से रहित कर दिये जाने के कारण वे उनके के कर्ज़ों के ज़िम्मेदार नहीं।

(२) पिता की ज़िन्दगी में एक बार भी तकाज़ा नहीं किया गया।

(३) १२ वर्ष तक जो कर्ज़ा नहीं माँगा जाता वह कानूनन कर्ज़ नहीं रह जाता।

मामला तै न हुआ और कलकत्ते की अदालत से राममोहन राय मुकदमा हार गये। राजा बर्दवान ने इनको चौपट करने के लिये रुपये बहा दिये थे। इस अदालत में हार जाने पर राम बाबू ने सदर दीवानी अदालत में अपील की। १० नवम्बर १८३१ को वे यहाँ से भी मुकदमा हार गये—और इस प्रकार एक विधवा के अधिकार के लिए लड़ने का यह फल हुआ कि ये खुद महा दरिद्र हो गये।

राजा राममोहन राय की जीवनी का त्याग भरा रहस्य पाठकों ने पढ़ ही लिया है। सत्य की लड़ाई में इनको जो दुःख झेलना पड़ा वह संसार के प्रायः सभी प्रचारकों को झेलना पड़ता है। किन्तु, ये चारों ओर काम होने पर भी, धैर्य्यपूर्वक सब काम संभाले जाते थे। बहुत से महात्माओं की जीवनी में यह होता है कि वे एक बात को लेकर उसी के लिए आन्दोलन और युद्ध करते हैं। किन्तु राममोहन राय

के लिए तो चारों ओर लड़ाई ही थी। देश की सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक तथा धार्मिक हर एक स्थिति से उन्हें लड़ना पड़ता था।

शिक्षा क्षेत्र

"विद्या विलास मनसो धृति शील शिक्षा,
सत्यव्रता रहित मान मलापहाराः।
संसार दुःख दलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहित कर्म परोपकाराः॥

अर्थात्, जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता है, सुन्दर शील स्वभावयुक्त, अभिमान व अपवित्रता से रहित, दूसरों की मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जीवों के दुःखों को दूर करने से सुशोभित, वेद विहित कर्मों से परोपकार करने में लगा रहता है, वे नर-नारी धन्य हैं।

राजा राममोहन राय असाधारण दिमाग के आदमी थे। यह बात इनके दिमाग में पहले से आ गई थी कि जबतक भारतीय पढ़े लिखे न होंगे, तबतक वे अँगरेज़ी सल्तनत में इज़्ज़त पाने के अधिकारी न होंगे। साथ ही, अपनी अँगरेज़ी की लियाकत के कारण, अँगरेज़ी अखबारों को देख कर इन्हें विश्वास हो गया था कि समाचारपत्र भी जनता को शिक्षित करने और उसके अज्ञान को दूर करने के लिए प्रधान साधन

है। अतः जनता के हित के लिए दो बातें इन्होंने सोचलीं—शिक्षा के लिए स्कूल खुलवाना तथा समाचार पत्र निकालना।

समय अनुकूल पाकर राममोहन राय ने पत्र निकालना निश्चय कर लिया और ९ दिसम्बर १८२१ को इनका प्रसिद्ध पत्र 'संवाद कौमुदी' प्रकाशित हुआ। यह पत्र बङ्गला भाषा में "सार्वजनिक हित' के उद्देश्य को लेकर उत्पन्न हुआ था।

बङ्गाल में, देशी भाषा का,देशी सम्पादन में, देशी विचारों को लेकर प्रकाशित होने वाला यह पहला पत्र था। यह एक नई और मज़ेदार बात थी। इसी कारण राममोहन राय को देशी-समाचार पत्रों का स्थापक तथा पिता कहते हैं। इसी समय उर्दू में 'जामी जहान नुमा' और बङ्गला में 'समाचार चन्द्रिका' नामक पत्र प्रकाशित होने शुरू हुए थे— पहला पत्र—जहान नुमा, राम बाबू के ही, आगे चल कर प्रकाशित होने वाले पत्र "मिराज़' के विरोध में निकला था और 'समाचार चन्द्रिका' 'संवाद-कौमुदी' के विरोध में। इस प्रकार समाचार पत्रों को जन्म देने का श्रेय भी राम बाबू को ही है और देशी समाचार पत्र जगत् आप का सदैव आदर से नाम लिया करेगा।

'संवाद-कौमुदी' साधारण जनता के लिए था। राम बाबू पढ़ी-लिखी जनता के लिए और भी ऊँचे दर्जे का पत्र निकालना चाहते थे और इसीलिए अगले वर्ष, १८२२ में, "मिरात-

उल अकबर" यानी 'मुस्लिमता का आइना' नामक एक साप्ताहिक समाचार पत्र निकाला। इसके पहले ही अङ्क में 'आयर्लैण्ड, उसकी मुसीबतें और नाराज़गी' पर एक लेख था जिसमें उस देश की पराधीनता और स्वाधीनता के संग्राम का अच्छा चित्र खींचा गया था। इस लेख में आयर्लैण्ड की नाराज़गी का कारण लिखा था—"इङ्गलैण्ड के बादशाहों ने न्याय से आँख मूँद कर, अपने खुशामदियों को आयर्लैण्ड के सरदारों की रियासतें दे डालीं" उस समय बादशाह के लिए इतने साफ़ शब्दों में लिखना बड़ी हिम्मत का काम था।

यह फ़ारसी अख़बार स्वदेश व अलावा विदेश की ताज़ी ख़बरों पर अपनी मुकम्मल राय दिया करता था। इस पता चलता है कि राम बाबू को सारे संसार की राजनीतिक अवस्था का ज्ञान था। इन्हीं दिनों रूस के ज़ार तुर्किस्तान पर हमला करना चाहते थे किन्तु, इङ्गलैण्ड व आस्ट्रिया के दबाव देने से वे ऐसा न कर सके। राम बाबू ने तुर्किस्तान को बचाकर कर्तव्य-पालन के लिए इन दो राज्यों की बड़ी तारीफ़ की तथा उस समय की सच्ची अवस्था का वर्णन अपने अख़बार में लिखा। उन दिनों यूरोपीय राजनीति में जो चालबाज़ियाँ घुस आया करती थीं तथा इङ्गलैण्ड जो जो चालें चला करता था उनका ज़िक्र भी इनके समाचार पत्र में बराबर रहता था। इस प्रकार स्वदेश के अलावा विदेशों की स्थिति का भी ज्ञान देशी जनता को होने लगा।

अँगरेज़ी-शिक्षा

बुरा हो या भला, जब भारत में अँगरेज़ी राज्य स्थापित हो गया उस समय ऐसी बातें सोचनी चाहिएँ जो उस राज्य के अन्दर रहने पर भी जनता के लिए सब से ज़्यादा फ़ायदे की हों। भारत में शिक्षा का कैसा बेढ़ङ्गा हाल था, यह हम पाठकों को बतला चुके हैं। सरकारी सहायता न मिलने के कारण तथा अपने ही घर के भीतर बन्द रहने के कारण संस्कृत तथा फ़ारसी मृतप्राय हो रही थीं। पुरानी पुस्तकों को छोड़ कर इनमें नई पुस्तकें थी ही नहीं और जनता को संसार के विज्ञान, गणित, ज्योतिष तथा अन्य सब उन्नतियों का पता भी न था। उसमें स्वतन्त्रा की भावना भरनेवाली पुस्तकें थी ही नहीं। यूरोप की शिक्षाप्रद राजनीति का ज्ञान न था। अदालतों का काम भले ही फ़ारसी में होता हो, पर कम्पनी के कागज़ात तो अँगरेज़ी में ही आते थे। इस कारण बिना अँगरेज़ी जाने देश के राजनीतिक मामलों का ज्ञान भारतीयों को नहीं हो सकता था—साथ ही, वे राज के ऊँचे पदों पर भी नहीं पहुँच सकते थे।

अँगरेज़ी अँगरेज़ी राज्य के फैलाव के समान, अपनी खूबसूरती में, अपने ज्ञान में, उत्तम उत्तम पुस्तकों में बढ़ रही थी तथा इसे लोग 'धनी भाषा' कहने लगे थे। यहाँ अँगरेज़ी शिक्षा का कुछ भी प्रबन्ध न था। सरकार खुद

चाहती थी कि भारतीय अँग्रेज़ी पढ़ कर होशियार बढ़ा जाय और इसीलिए वह उनको संस्कृत तथा फ़ारसी पढ़ाती थी—और इसी कारण राम बाबू ने भारत में अँग्रेज़ी शिक्षा की जड़ जमाने का निश्चय किया। इसलिए पहले हम पाठकों को अँग्रेज़ी शिक्षा का थोड़ा सा इतिहास बतला दें।

अँग्रेज़ी का पहला जाननेवाला बङ्गाली कौन था—इसकी बड़ी रोचक कहानी है। प्रथम अँग्रेज़ी बङ्गला शब्दार्थ कोष बनाने वाले बाबू रामकमल सेन लिखते हैं कि जब पहले पहल अँग्रेज़ व्यापारी बङ्गाल आये तो उन्होंने हुगली के व्यापारियों से एक दुभाषिया मँगवाया। सेठ लोग दुभाषिये का ठीक अर्थ न समझ सके और इन्होंने एक धोबी भेज दिया। यह धोबी जहाज़ पर जाकर, अँग्रेज़ों के साथ रहने लगा और उनकी बोलचाल की अँग्रेज़ी बहुत कुछ सीख गया—और बङ्गालियों में अँग्रेज़ी जाननेवाला यह पहला आदमी था। इस प्रकार अँग्रेज़ों की बोली को सबसे पहले एक धोबी ने सीखा।

जो कुछ टूटी-फूटी अँग्रेज़ी इस धोबी को आती थी, उससे ज़्यादा बङ्गाली कभी न सीख सके। व्यापार का सम्बन्ध बढ़ता ही जाता था पर धोबीनुमा भाषा से काम चल जाता था। पर जब अँग्रेज़ी राज्य हो गया, और सन् १७७४ में कलकत्ते में बड़ी अदालत 'सुप्रीमकोर्ट' क़ायम हो गई, उस समय

जज को समझाने के लिये अँग्रेजी के अधिक ज्ञान की ज़रूरत पड़ी और भाषा का शुद्ध ज्ञान बङ्गालियों को होने लगा। अँग्रेज़ी दुभाषिये, क्लर्क तथा दलालों की सरकारी तथा व्यापारी हर काम में ज़रूरत पड़ती थी। इसलिए अपने लाभ के लिए कुछ बङ्गाली यूरोपियनों से अँगरेज़ी पढ़ने लग गये थे। शरबूर्न नामक यूरोपियन कलकत्ते के एक मुहल्ले में अपना निजी अँगरेज़ी का एक स्कूल चलाता था। द्वारकानाथ ठाकुर ने यहीं पर अँगरेज़ी पढ़ी थी। अराटून पेत्रूस नामक दूसरा यूरोपियन भी १० बङ्गालियों को अँगरेज़ी पढ़ाया करता था। इन बङ्गालियों में सबसे होशियार जो हो जाते वे स्वयं इसे पढ़ाने लगते। जिस साल राममोहन राय कलकत्ते में आकर बसे थे, उससे एक वर्ष पहले कम्पनी के मालिकों ने बड़े दबाव पर 'कम से कम एक लाख रुपया' भारतीयों की शिक्षा के लिए दिया था पर यह रकम बहुत दिनों बाद मिल सकी। १७८० में बड़े लाट वारेनहेस्टिंग्स ने मुसलमानी लड़कों को अरबी व फ़ारसी पढ़ाने के लिए कलकत्ते में एक मदरसा खोला था। इसके ६ वर्ष पहले बनारस में एक अँग्रेज़ अफ़सर ने हिन्दुओं को उनके 'क़ानून, धर्म तथा साहित्य' की शिक्षा देने के लिए एक संस्कृत कालिज खुलवाया था जो आगे चलकर प्रसिद्ध 'क्वींस कालिज' हो गया। १८५० में कलकत्ते में सरकारी नौकरों के फ़ायदे के लिए फ़ोर्ट विलियम कालिज खोला गया था। किन्तु

राममोहन राय के कलकत्ते आने के पहिले बालकों को अंग्रेज़ी की शिक्षा देने का कोई भी प्रबन्ध खास न था।

इसका प्रधान कारण यह था कि अंग्रेज़ सरकार में आपस में इस बात पर मतभेद था कि हिन्दुस्तानी 'नेटिव' को अंग्रेज़ी पढ़ने दिया जाय। बहुत से अंग्रेज़ यह सोचते थे कि इनको अंग्रेज़ी पढ़ाने का यह अर्थ होगा कि, यह सावधान हो जायगें, नयी रोशनी जग जायगी, राजनीति सीख जायगे तथा संसारिक अवस्था ज्ञान लेने से स्वाधीनता की भावना इनमें भर जायगी, इस कारण भारत में अंग्रेज़ी राज्य की जड़ कमज़ोर हो जायगी।

पर मेकाले के समान दूसरे प्रकार के अंग्रेज़ कहते थे कि हिन्दुस्तानियों को हमेशा गुलाम बनाये रखने का यही एक उपाय है कि उनको अंग्रेज़ी पढ़ाकर, अपनी सभ्यता में रंगकर, ईसाई बनाकर भारतीय सभ्यता से छुटकारा दिला दिया जाय— भारतीय सभ्यतामें' रंगे रहने के कारण उनमें अपनापन रहेगा। पर अब वे हमारी सभ्यता में रंग जायगें तो उनमें से अपनापन जाता रहेगा और वे सदा के लिए हमारे गुलाम रहेंगे

जो हो, पर राममोहन राय जानते थे कि हिन्दू सभ्यता इतनी छिछली नहीं है कि कच्चे घड़े की तरह फूट जाय। सदियों के मुसलमानी राजको इसे पलटने की ताक़त न रही तो ज़माने भर की भाषाएं पढ़ने से, सिवाय लाभ के और कुछ हानि न होगी। और हानियाँ यदि होंगी तो उनके दूसरे

उपाय किये जा सकते हैं। इन्होंने जी जान से भारत में अँगरेजी शिक्षा के प्रचार की कोशिश शुरू कर दी। इन्होंने पहला काम तो यह किया कि यहाँ के मिशनों को अँगरेज़ी पढ़ाने के फायदे दिखा कर उन्हें यह काम अपने हाथ में लेने के लिए आग्रह किया। जब यहाँ के मिशनों से कुछ न हो सका तो विलायत के मिशनों से भारत में आकर ईसाई-धर्म-प्रचार तथा साथ ही शिक्षा-कार्य करने का अनुरोध किया। कई मिशन पहले तो तैयार न हुए पर भारत में 'ईसाई धर्म कब फैल सकता है' इस विषय पर पत्र लिखते समय राम बाबू हमेशा शिक्षा कार्य पर ही ज़ोर देते थे। १८२१ में कलकत्ते में *महाशय ऐडम्स* की अध्यक्षता में 'यूनिटेरियन मिशन' राम बाबू के ही प्रयत्नों से खुला था और उसे इन्होंने अपने पास से पाँच हज़ार रुपये दिये थे तथा श्री द्वारकानाथ ठाकुर ने २,५००) रुपये।

हम यह बतला चुके हैं कि श्री डैविड हेयर तथा राम बाबू में बड़ी मित्रता हो गई थी। डैविड हेयर भारत में अँगरेज़ी शिक्षा के प्रचार के बड़े पक्षपाती थे। हेयर एक बार बिना बुलाये ही आत्मीय सभा की बैठक में चले गये थे। यहीं से हेयर और राम बाबू की मित्रता हुई। इसी मित्रता के परिणामस्वरूप हेयर ने सभा की उन्नति की पूरी चेष्टा की। उसके उद्देश्य की उन्नति का सबसे बड़ा साधन एक स्कूल खोलना समझा गया।

राम बाबू ने इस विचार को बहुत पसन्द किया और

स्थान स्थान पर सभायें करके हिन्दू बालकों की पढ़ाई के लिये एक स्कूल खोलने का पक्का विचार कर लिया। चन्दा उगाहा जाने लगा। राम बाबू ने देखा कि हिन्दू जनता का उनसे नाराज़गी दिन व दिन बढ़ती ही जा रही है, उनके विचारों के कारण लोग उनके दुश्मन हो रहे हैं। इसलिए राम बाबू ने सोचा कि इस स्कूल की स्थापना में यदि वे खुल कर चेष्टा करेंगे तो शायद अधिक लोग सहायता न दें—इसका यह भय भी था लालच था नहीं। अतः इन्होंने अपना नाम स्कूल के सहायकों की लिस्ट में से हटा लिया और जो कुछ सहायता हो सकी, गुप्तरीति से करते रहे। यह हिन्दू कालिज १८१६ में स्थापित हो गया। वास्तव में यह हिन्दू कालिज नहीं, हिन्दू स्कूल था।

राममोहन राय ने शिक्षा का काम अपने हाथ में लेते ही इसका काम जल्दी से शुरू कर दिया। १८२२ में, कुछ मित्रों के चन्दे को छोड़कर, अपने ही चन्दे से आपने एक एंग्लो इंगलिश स्कूल खोला और इसमें हिन्दू लड़कों को मुफ्त में अंगरेज़ी शिक्षा देने का प्रबन्ध था। इस स्कूल में ईसाई धर्म की शिक्षा न दी जाती थी किन्तु सदाचार के उपदेश दिये जाते थे।

१८२३ में जिस धार्मिक विवाद की दलदल में राम बाबू को फँसना पड़ा था, वह हमारे पाठक जानते ही हैं। इसी साल इन पर एक और बहुत बड़ा काम आ पड़ा। वृटिश सरकार भारतीयों की शिक्षा के लिए रुपये की मंज़ूरी दे चुकी थी और यह विचार हो रहा था कि यह रकम

देशी भाषा की पढ़ाई में लगायी जाय या अँगरेज़ी की। राम बाबू अँगरेज़ी के पक्ष में थे। इस समय 'देशाभाषा' तथा 'अँगरेज़ी भाषा' दो दल हो गये। राम बाबू का कहना था कि ऐसी भाषा के लिए शिक्षा का प्रबन्ध करने से क्या लाभ जो देश में प्रचलित हो, जिसे लोग जानते हों और पढ़ सकते हों। किन्तु देशी भाषा की ओर बृटिश सरकार भी थी और उसने कलकत्ते में संस्कृत कालेज खोलना निश्चय कर लिया।

इससे राम बाबू हताश न हुए। आपने लार्ड एमहर्स्ट जो उस समय बड़े लाट थे—के पास एक प्रार्थनापत्र भेजा जिसमें बड़ी योग्यता के साथ संस्कृत पढ़ाने के दोष तथा अँगरेज़ी पढ़ाने के लाभ लिखे गये थे। इनके आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि संस्कृत कालेज के स्थान पर हिन्दू कालिज (फ़रवरी १८२४) में स्थापित हो गया। इसी में संस्कृत कालिज भी शामिल कर दिया गया।

इसके दो ही वर्ष बाद, एक सुन्दर तथा स्वच्छ मकान में राम बाबू ने अपने खर्च से 'वेदान्त कालिज' खोला जहाँ शुद्ध वेदान्त की शिक्षा दी जाती थी, जिससे हिन्दू 'एकमेवाद्वितीयम्' का पाठ सीख जायँ। हिन्दू जनता के लिए यह बड़े उपकारका काम था। यहाँ ईसाइयों का एकेश्वरवाद भी बतलाया जाता था तथा थोड़ी अँगरेज़ी भी पढ़ाई जाती थी। इस विद्यालय के खोलने का कारण केवल वैदिक सिद्धान्त के प्रचार की इच्छा थी।

सती प्रथा का अन्त

'सत्यमेव जयति नानृतम्'

मुण्डकोपनिषद्

स्त्रियों के प्रति भारतीय समाज का अत्याचार केवल सती प्रथा ही नहीं थी। किन्तु, पुरुषों ने औरतों को परवश करने का एक और बन्धन बना रक्खा था। पति के मरने पर उन्हें उसकी सम्पत्ति में कोई हक़ ही नहीं मिलता था। इस कारण वे या तो पूरी मुसीबत और गरीबी के साथ दूसरे की गुलामी कर रहती थीं या बुरे राह पर पैर रख कर वेश्या आदि का पेशा अख़्त्यार कर लेती थीं—या इन सब मुसीबतों से बचने के लिये पति के साथ चिता पर जल जाती थीं। उसे विधवा विवाह करने की आज्ञा नहीं थी—यदि वह ऐसा करती तो समाज उसे घृणित समझता था इस कारण हर प्रकार से बेचारी पराधीन रहती थी। संस्कृत के एक कवि ने स्त्रियों के बारे में इस प्रकार एक श्लोक कहा है:—

पिता रक्षति कौमारे, भर्त्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रास्त्रस्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति॥

अर्थात् पिता कुमारी अवस्था में रक्षा करता है, पति जवान होने पर रक्षा (पालन) करता है। बुढ़ापे में पुत्र लोग पालते हैं, इसलिए स्त्री स्वतन्त्रता कभी नहीं पा सकती।

वेदों में स्त्री के लिए जो अधिकार हैं, उनका तो कोई ज़िक्र ही नहीं करता। स्त्री को पुरुष के ही समान अधिकार है और जहाँ कुछ नहीं है, वहाँ उनको विधवा विवाह करने की आज्ञा तो है। पुरुषों को तो एक नहीं बहुत सा स्त्रियाँ तक रखने की आज्ञा दे दी गई है जिससे उसकी मृत्यु होने पर अनेक अनाथ हो जाती हैं। कुछ नहीं तो कम से कम पुत्र को जो सम्पत्ति मिले उसका एक चौथाई हिस्सा तो माता के लिए होना चाहिए। कुलीन ब्राह्मणों का बहुविवाह तो प्राचीन धर्म-ग्रन्थों की आज्ञा के बिल्कुल विरुद्ध है।

इस प्रकार की दलीलों से भरा एक सुन्दर निबन्ध "हिन्दू उत्तराधिकार कानून के अनुसार स्त्रियों के प्राचीन अधिकारों पर आघात" नाम से १८२२ में राम मोहन बाबू ने प्रकाशित किया। इससे पाठक समझ सकते हैं कि स्त्रियों के प्रति उनके हृदय में कितना आदर था और वे उनके दुःख से कितने दुःखी थे। उनका पारिवारिक जीवन भी सुखी न था। पिता ने दो विवाह कर दिये थे। राम बाबू दोनों स्त्रियों का आदर करते थे। इनके शुद्ध हिन्दू न रह जाने से वे अपने पति के साथ रहना ना पसन्द करती थीं, साथ ही लड़कों को बिरादरी से खारिज होने का डर था। १८२६ में इनकी एक स्त्री मर गई पर दूसरी के भाग्य में विधवा होना लिखा था। बहु विवाह से राम बाबू को इतनी नफ़रत थी कि, इन्होंने अपनी सम्पत्ति का बँटवारा

करने का जो वसीयतनामा लिखा था उसमें उस लड़के को हक से खारिज कर दिया था जो एक से अधिक विवाह करे।

इसी समय १८२५ में दक्षिण भारत में अकाल पड़ा। इस अवसर के लिए जो अपील निकाली गई उसमें राम मोहन का भी हाथ था। इस प्रार्थना में जनता से चन्दा देकर अकाल-पीड़ित क्षेत्रों में मुफ्त भोजनालय खुलवाने की प्रार्थना की गई थी ताकि, ज़रूरत के-हिसाब से हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब के लिये, उनके धर्म के मुताबिक उस में भोजन मिले। इस निवेदन में ईसाइयों से ईसामसीह की उदारता के नाम पर, मुसलमानों से मुहम्मद साहब तथा उनकी दयालुता के नाम पर तथा भीष्म और श्रीकृष्ण के परोपकार का उदाहरण देकर हिन्दुओं से प्रार्थना की गई थी। राममोहन राय ने उपदेशों द्वारा सब को यह बतलाया कि प्रत्येक मज़हब में मनुष्य तथा समाज की सेवा की भावना का एक उद्‌गम स्थान बतलाया है। अतएव आपने सब से एकता की प्रार्थना की।

एक ओर समाज कार्य हो रहा था, दूसरी ओर इनके दुश्मन इनकी परेशानी बढ़ाते जाते थे। राममोहन राय के पुत्र वर्दवान के कलक्टर के मुख्य कर्मचारी थे। इन पर रुपये गड़बड़ करने का मामला चलाया गया। महाशय पेडम्स लिखते हैं कि इनके अफ़सर की नादानी तथा नीचे के कर्मचारियों की जालसाज़ी से मामला चला था। जो हो, बहुत

समय तक राम बाबू को इसी की चिन्ता में पड़े रहना पड़ा। अन्त में, १८२६ में इनका पुत्र सदर निज़ामत अदालत से छूट गया।

राम बाबू के पुत्रों को घर की औरतों ने ठीक उनके विचारों का उलटा—मूर्तिपूजक बनाया था। अपने बड़े लड़के को ये बहुत प्यार करते थे। उसी पर इनका विश्वास था। इन्होंने झिड़की, फटकार या किसी प्रकार से अपने पुत्रों के धार्मिक-विश्वास को बदलने का प्रयत्न न किया। उन्हें अच्छी अच्छी शिक्षा देकर ससार में छोड़ दिया। वे भी कुछ समय तक उसी पुराने ढर्रे पर चलते रहे। परन्तु अन्त में राह पर आ गये और मूर्ति-पूजा आदि छोड़ कर राम बाबू के ही विश्वास के हो गये तथा इनके विचारों के पूर्ण समर्थक हो गये। बड़े आदमी का प्रभाव जितना काम करता है उतना दण्ड या भय नहीं।

सती-आन्दोलन के नये रूप

लार्ड एम्हर्स्ट के सामने सती-प्रथा को रोकने के लिये जो सरकारी तथा गैर सरकारी दवाव पड़ रहा था—वह सब व्यर्थ गया। किस प्रकार दिन प्रति दिन अँग्रेज़ अफ़सर इस प्रथा को रोकने के लिये तैयार होते गये तथा शिक्षित भारतीय भी इससे घृणा करने लगे यह एक लम्बा-चौड़ा इतिहास है। परन्तु इतना बतला देना काफ़ी होगा कि निज़ामत अदालत में

अब लोग भी इस प्रथा को नष्ट करा देने के ही पक्ष में हो
जा रहे थे। लाट साहब को सलाह देनेवाली कौंसिल के
मेम्बर भी किसी न किसी प्रकार की रुकावट के पक्ष में
थे। भाय दिन कलक्टर लोग इस प्रथा को नष्ट करने के
लिये सती होती औरतों को रोकते थे। राममोहन राय का
आन्दोलन बहुत से शिक्षित भारतीयों को समाज के विरुद्ध
कर चुका था।

लार्ड एम्हर्स्ट बड़ी कमज़ोर तबीयत के आदमी थे।
"ऐसा करने से कहीं देशी सेना न भड़क उठे" इस बात का
डर उन्हें रात दिन लगा रहता था। अधूरा सुधार वे करना नहीं
चाहते थे। इस प्रकार इनके समय में कुछ न हुआ। १८२८ में
इनका कार्य-काल समाप्त हो गया और ये विलायत लौट
गये। इनके स्थान पर लार्ड विलियम बैंटिक बड़े लाट हो
कर आये।

लार्ड विलियम बैंटिक को कम्पनी ने शासन-सुधार करने
के लिये भेजा था। यह शासन-सुधारका काम साधारण
नहीं था। पर लार्ड बैंटिक उन दृढ़-निश्चयी अँग्रेज़ों में से
थे जो एक बार एक कामको हाथ में लेकर, बिना किसी डर के
उसे पूरा करके ही छोड़ते थे। भारत में आते ही इन्होंने सती-
प्रथा के विरुद्ध अँगरेज़ों में घोर घृणा तथा पढ़े लिखे भारतीयों
में अत्यन्त 'नाराज़गी' देखकर यह समझ लिया कि यह सुधार
ज़रूरी है। वास्तविक भारतीय मत किधर है, इसका इनको

पूरा पता न था। इनको यह बतलाया गया कि पढ़े-लिखे भारतीयों के मुखिया और सती प्रथा के दुश्मन राममोहन राय हैं। इन्होंने अपने आदमी को राम बाबू को बुला लाने के लिये भेजा। राममोहन राय ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि, मैं आजकल संसार से अलग होकर केवल धार्मिक काय में लगा हूँ। इसलिए लाट साहब मुझे क्षमा करें। जब यह आदमी लौटकर लाट साहब के पास आया और उनको राम बाबू का उत्तर बतला दिया तब लार्ड बैंटिक ने पूछा—

"तुमने किस तरह से मेरी बात उनसे कही थी?"

"मैंने लार्ड महोदय, यह कहा था कि बड़े लाट आपको देखकर प्रसन्न होंगे।"

"नहीं, नहीं, इस तरह जाकर कहो कि, 'मि० विलियम बैंटिक आपसे मिलना चाहते हैं। आप कृपाकर उनसे मिलने का कष्ट कीजिए।"

जब राममोहन राय को लाट साहब का यह सन्देश सुनाया गया, तब वे इस नम्रता के सामने कुछ भी उत्तर न दे सके। उन्होंने उनसे भेंट की। आपने इनको जो सलाह दी थी, उसे सुनकर पाठक आश्चर्य करेंगे। दूसरा कोई होता तो इस मौक़े को हाथ से न जाने देता और फ़ौरन यह सलाह देता कि यह प्रथा एक दम बन्द कर दी जाय। पर राम बाबू ने सलाह दी कि इसे एक दम न बन्द कर दिया जाय किन्तु धीरे धीरे रोका जाय। इसका प्रधान कार्य यह होगा कि पुलिस का

हस्तक्षेप बहुत बड़ा किया जाय, और बहुत सी कठिनाइयाँ उन होने में रखी जायँ। इस प्रकार यह रिवाज़ आपसे आप हो जायगा।

राम बाबू लाट साहब से पहले मिलने न गये इससे निर्भय होना प्रमाणित होता है। लाट साहब के आदमी ने नहीं बतलाया था कि, उनको किसलिए बुलाया गया है, इस लिए उन्होंने समझा था कि, केवल दरबारी सलाम की प्रथा होगी और उनकी आत्मा इस प्रकार झुकने के लिए तैयार थी। जब उनको लाट साहब की मित्रता मालूम पड़ी तो सज्जनोचित व्यवहार करने को बाध्य हुए। इन्होंने किस कारण सती प्रथा को एक दम बन्द करना उचित न समझा—इसका प्रधान कारण यह है कि, जनता के अन्ध विश्वास ने इनको बहुत पीड़ा पहुँचाई थी, अतः वे इससे डरते थे और नहीं विद्रोह-द्वारा समाज की तथा सरकार की हानि करना नहीं चाहते थे।

लार्ड विलियम बेंटिंक को भारत की असली अवस्था का पता था। वे नित्य प्रति देखते थे, उन्हीं स्थानों में जहाँ यूरोपियनों का सबसे बड़ा अड्डा था, सतियों की संख्या बढ़ते देख कर समझ गये थे कि ब्रिटिश सत्ता के लिए यह आपत्ति कारक है। दूसरी बात यह थी कि बङ्गाल तो सदियों से गुलामी का पाठ सीख चुका था। अँगरेज़ी राज्य में आये भी उसे बहुत समय हो गया था। इसलिए दासता तथा अधीनता का यह प्रभाव

ो गया था। यह अवध थोड़े ही था जहाँ की प्रजा में अपने ...चारों के लिए खून उबलता रहता हो। इसलिए उसके ऊपर ...ोर कानून चला कर बलवे का भय व्यर्थ था और इसी ...तरह अन्त में ४ दिसम्बर १८२६ को इन्होंने यह कानून अपनी कौंसिल में पास कर दिया कि "सती-प्रथा एक दम ...नाजायज़ तथा दण्डनीय है। जो भी कोई, इच्छापूर्वक या अनिच्छापूर्वक, किसी तरह भी किसी स्त्री को सती होने में सहायता देगा, या जानते-बूझते भी न रोकेगा वह आत्म-हत्या में सहायता देनेवाला समझा जायगा। यदि उसकी राय से यह काम होगा तो उसे मौत की सज़ा दी जायगी या जो सज़ा अदालत देगी, भोगेगा।" इस प्रकार यह महा-भ्रष्ट और जङ्गली प्रथा समाप्त हो गई।

ब्रह्म-समाज की स्थापना

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥ मनु०

अर्थात् धर्म की यदि रक्षा की जाती है तो वह रक्षा करता है, यदि उसका नाश किया जाता है तो वह मार कर देता है।

राममोहन राय के शिष्यों ने उनकी दिनचर्या में लिखा है कि वे नित्य प्रातःकाल उठा करते थे। इसके बाद रोज़ नियमपूर्वक घूमने जाया करते थे। स्नान करने के पहले

दो मज़बूत आदमी इनके बदन की मालिश किया करते मालिश कराते समय राम बाबू मुग्धबोध की संस्कृत व्याकर पढ़ा करते थे।

स्नान के बाद भोजन करते और फिर दो बजे तक काम करते थे। इसके बाद ये अपने यूरोपियन मित्रों से मिलने के लिए चले जाते थे। रात्रि का भोजन ७ या ८ बजे होता था। दो वक्त के अलावा और किसी समय ये भोजन नहीं करते थे। दिन का भोजन भारतीय ढङ्ग और रात्रि का पूरे अँगरेज़ी ढङ्ग से होता था।

बाहर जाने के समय राम बाबू एक दुशाला अपने कन्धे पर डाल लिया करते थे तथा सर पर पगड़ी रखते थे। बिना इसके ये कभी बाहर नहीं जाते थे। घर पर चपकन, और पायजामा पहने रहा करते थे। ये नङ्गे सर कभी नहीं रहते थे। बङ्गला बहुत सुन्दर बोलते थे पर अँगरेज़ी बहुत समझ कर बोलते थे ताकि, कहीं व्याकरण की गलती न हो जाय।

यह तो उनकी आदतों के बारे में हुआ। अब हम उनके जीवन के सब से महत्वपूर्ण विषय पर आते हैं। सती-प्रथा का अन्त कराना राम बाबू का जितना पवित्र कार्य था, उतना ही पवित्र कार्य ब्रह्म-समाज की स्थापना करके हज़ारों बङ्गाली युवकों को ईसाई बनने से बचाकर एक नया पथ निकालना था। हम इस पुस्तिका में धर्म का लम्बा-चौड़ा वर्णन करना नहीं चाहते। राम बाबू 'ईश्वर एक है' इसमें विश्वास

रखते थे। ईसाई इनको अपना अनुयायी मुसलमान और हिन्दू अपना अनुयायी मानते थे। इसका कारण यह था कि, राम बाबू किसी धर्म के दास नहीं थे। वे सब धर्मों की सचाई मानने के लिए तैयार थे तथा एक ईश्वर में विश्वास रखते थे।

'एक ईश्वर मानने वाले' "यूनिटरी मिशन की" स्थापना में राम बाबू का जो हाथ था, वह हम बतला चुके हैं। अन्त में इस मिशन को विलायत से भी बहुत कुछ सहायता मिली। श्री एडम्स इसके वैतनिक कर्मचारी थे। किन्तु, राम बाबू ने इसमें अधिक भाग लेना बन्द कर दिया। इनके एंग्लो इंग्लिश स्कूल में श्री एडम्स ईसाई धर्म का जो उपदेश दिया करते थे, वह भी राम बाबू को पसन्द न था। और मिशन की ओर से रोज़ प्रार्थना करने का जो सभा-भवन खोला गया था, उसमें दिन पर दिन कम आदमी आने लगे। परिणाम यह हुआ कि कमिटी के मेम्बर तक इसमें नहीं आते थे। अन्त में १८२७ में यह संस्था फिर जिलाई गई। १८२८ के शुरू में यह संस्था बिलकुल मर सी गई। बेचारे एडम्स एक दम अकेले पड़ गये और इन्हें जो पुरस्कार (वेतन) मिलता था वह भी देना बन्द कर दिया गया।

इस समय राम बाबू ने तथा उनके मित्र श्री प्रसन्नकुमार तथा द्वारकानाथ ठाकुर आदि ने यह बात देखी कि भारत में अँगरेज़ी शिक्षा का यह परिणाम हो रहा है कि बङ्गाली इसाई होते चले आ रहे हैं। ये ईसाई केवल इस कारण होते हैं

कि इनका समाज बड़ा संकुचित है समाज की बुराइयाँ म
मन पर बड़ा बुरा प्रभाव डालती हैं। इस कारण वे ईसाई ध
को सब से अच्छा समझ बैठते हैं।

ऐसे युवकों को सत्पथ पर लाने के लिए उनको एक म
रास्ता दिखलाना था जिससे अपनी भारतीय संस्कृति व सभ्य
का सच्चा स्वरूप उनको दीख पड़े, उनकी आत्मा को सन्तोष मि
सके और वे अपनी धर्म की प्यास बुझाने के लिए बाह
न जायँ।

राम बाबू को धर्म के प्रश्नों पर बातचीत करने का बड़ा
शौक था। रंगपुर में रहते समय धार्मिक बातों पर बहस
करने के लिए तथा 'एक-ईश्वर' के मन्त्र का उपदेश दे
के लिए वे सभायें किया करते थे। १८१५ से १८१
तक कलकत्ते में आत्मीय सभा खूब चली। बाद को य
सभा टूट गई। इसके बाद निजकी मित्र मण्डली इकट्ठा क
धर्म के प्रश्न पर विवाद करने के लिए राम बाबू सभा
करते थे। इन दिनों जनता को धर्म का असली महत्त्व
और उसका असली तत्त्व समझाने के लिए वे ऐसी
एक सभा खोलने का विचार कर रहे थे जहाँ आज़ादी से
'एक ईश्वर' है, इस प्रश्न पर विचार हो सके। यूनिटेरियन
मिशन के सदस्य ईसामसीह के बड़े भक्त थे। इनके प्रभाव के
कारण ईसाई बढ़ रहे थे। इसलिए एक धर्म-सभा खोलने का
इनका विचार हुआ।

उन दिनों बङ्गाल से एक ज़ोरदार पत्र "हरकारा" निकला करता था। इसीके दफ़्तर में यूनिटेरियन मिशन का प्रार्थना भवन था। एक दिन राममोहन राय तथा उनके दो शिष्य ताराचन्द्र चक्रवर्ती और चन्द्रशेखरदेव लौट रहे थे। देव बाबू ने कहा :—

"हम दूसरों के यहाँ प्रार्थना करने क्यों जायँ? हम अपना एक सभा-भवन ही क्यों न स्थापित करलें।"

बस विचार पक्का हो गया। राम बाबू के मन में पहले से जो बात थी, वह और भी दृढ़ हो गई। आपने अपने मित्र द्वारका-नाथ ठाकुर, राय कालीनाथ मुंशी तथा प्रसन्नकुमार घोष सब से सलाह की—और सब को यह विचार पसन्द आ गया। चितपुर रोड पर, कमललोचन बाबू के मकान में, सार्वजनिक उपासना-भवन खोल दिया गया और यह 'हिन्दू सस्था कह-लाई। इसमें 'ब्रह्म' के विषय में वार्त्तालाप तथा उपासना ही प्रधान विषय था इसलिए पहले इसका नाम 'ब्रह्म सभा' रक्खा गया।

२० अगस्त १८२८ को ब्रह्म सभा में प्रथम प्रार्थना हुई। पं० रामचन्द्र शर्म्मा ने प्रारम्भिक भाषण दिया। "ईश्वर एक है-हमारे धर्म शास्त्रों ने ईश्वर एक ही माना है। पीछे की सम्पूर्ण बातें कपोल कल्पना हैं।" इस प्रकार यह सभा धीरे धीरे बढ़ती गई। दो ब्राह्मण स्थायीरूप से वेद-पाठ के लिये नौकर रख लिये गये। उत्सवानन्द विद्यावागीश उपनिषदों में से पाठ

किया करते थे। इसके प्रथम मंत्री श्री ताराचंद्र चक्रवर्ती नियुक्त हुए।

किन्तु, ईसाइयों के यूनिटरी मिशन को छोड़कर हिन्दुओं यूनिटरी मिशन की स्थापना से राम बाबू के अंग्रेज़ मित्र नाराज़ हुए। उनके प्रथम शिष्य श्री एडम्स तक इससे उदास हुए। किन्तु शिक्षित भारतीय जनता के ५५ मस्तिष्क का एक आश्रय मिल गया। उन्होंने इस समाज की स्थापना को बहुत पसन्द किया और धीरे धीरे ब्रह्म-समाज के प्रति लोगों का अनुराग बढ़ने लगा।

पण्डित समाज तो अवश्य ही इससे बड़ा नाराज़ हुआ। आगे चलकर उसने 'धर्म-सभा' नाम से एक सभा इसके जवाब में खड़ी कर दी। ब्रह्म-समाज आज तक कायम है परन्तु धर्म-सभा विलीन हो गई।

महाशय ऐडम्स ने राममोहन राय को वेद का प्रचार करते देखकर लिखा था:—

"मैं समझता हूँ कि राममोहन राय वेद को ईश्वरीय वाक्य नहीं मानते किन्तु मूर्त्ति-पूजा को नष्ट करने के लिए एक शस्त्र मात्र मानते हैं। सच बात तो यह है, और मैं उसे साफ़ कहूँ कि यूनिटेरियन-एक ईश्वर में विश्वास करनेवाले ईसाई धर्म को भी केवल एक ईश्वर के विश्वास उत्पन्न कराने के लिए एक हथियार मानते हैं।"

ईश्वर को एक-मानना 'अद्वैत वाद'—तो नहीं है। ताहिर

परस्ती' यही राम बाबू के जीवन का एक मन्त्र था, ये ईश्वर के प्रेम में मस्त रहते थे। उसकी यादगार में सुन्दर बङ्गला-कवितायें लिखा करते थे। ये कवि होना ज़रूर चाहते थे, पर उन दिनों भरतचन्द्र की कविता की इतनी धाक थी कि, "मैं होड़ में नहीं जीत सकता" यह कह कर उन्होंने इस विषय में विशेष चेष्टा न की।

ब्रह्म-सभा विश्व-धर्म की रक्षा के लिए उत्पन्न हुई थी। इस समय ज़रूरत थी कि, इस सभा की बाकायदा रजिस्ट्री करा कर, इसको एक ट्रस्ट के सुपुर्द कर दिया जाय। सभा की सम्पत्ति राममोहन राय तथा इनके कई मित्रों के नाम थी, पर ८ जनवरी १८३० को यह 'ट्रस्ट' बन गया और इसकी सम्पत्ति के ज़िम्मेवार तीन आदमी बना दिये गये। मकान बनाने के लिए स्थान इनको मुफ़्त मिला। नाम मात्र के लिए उसका १०) रुपया मूल्य ले लिया गया। ६०८०) रुपया एक कम्पनी के यहाँ सभा के स्थायी कोष में जमा कर दिया गया। इसके सूद से सभा का साधारण खर्च चलता था।

अमानत-नामा

यह ट्रस्ट डीड राममोहन राय का तैयार किया हुआ था। इसी में ब्रह्म-सभा (अब इसका नाम ब्रह्म-समाज) का असली उद्देश्य भी लिख दिया गया। स्थानाभाव से हम इसका

साराश भी नहीं दे सकते। किन्तु, इतना जान लेना चाहिए कि यह इमारत हर प्रकार की जनता के सार्वजनिक सभा के स्थान में आ सकती है। यह एक परमात्मा-अगम्य-अनन्त की पूजा के काम में आयेगी—किन्तु उस ईश्वर की पूजा में जिसके साथ कोई नाम व धर्म को, रूप-रेखा का पुछल्ला नहीं जोड़ दिया गया है। यहाँ कोई मूर्ति, किसी प्रकार का चित्र, पच्चीकारी आदि न रह सकेगी, यहाँ कोई दावत विशेष प्रयत्न को छोड़ कर नहीं हो सकेगी। किसी व्यक्ति की पूजा न होगी—ईश्वर के अलावा किसी की प्रार्थना न की जायगी। अमानत रखनेवाले अच्छे चरित्र के आदमी नौकर रखे जाँयगे। समाज की अमानत रखनेवालों को इतनी बातें बतलाई गई।

शिष्यों के प्रति

राममोहन राय का व्यवहार अपने शिष्यों के प्रति बड़ा उदार था। वे इनको बड़ी सरलता के साथ धर्म के गूढ़ रहस्य समझाते तथा समाज की बुराइयाँ बतलाया करते थे। वे शिष्यों पर कभी नाराज़ तो होते ही नहीं थे। बड़े प्रेम से उनको अपने पास रखते तथा बड़ी प्रतिष्ठा के साथ उनसे बातचीत करते थे। उनके प्रति प्रेम-व्यवहार का ही यह फल था कि वे भी अपने गुरू को जी-जान से मानते थे। वे अपने शिष्यों की, मित्रों की हर प्रकार की मुसीबतें अपने सर पर ओढ़ लें

के लिए तैयार रहते थे। विदेशी-मित्रों को आप कितनी सहायता करते थे वह मि०पेइम्ज़ को अपने पास से रुपया देकर बहुत दिनों तक पालने की मिसाल से जाना जा सकता है।

ईसाई पादरी की सहायता

राममोहन राय के विचार बड़े उदार थे। प्रत्येक 'सत्य धर्म' इनको प्रिय था। यद्यपि वे स्वयं ईसाई नहीं थे किन्तु किसी भी धर्म के विस्तार में कभी भी रुकावट न डालने की आदत होने के कारण, इन्होंने इस धर्म के प्रचार में सहायता तक की। यह हम पहले ही बतला चुके हैं कि इन्होंने भारत में अँगरेज़ी शिक्षा का कोई प्रबन्ध न देखकर विलायत तथा यहाँ के पादरियों को ईसाइ-धर्म-प्रचारक संस्थाओं-द्वारा, भारत में अँगरेज़ी शिक्षा प्रदान करने के लिये स्कूल खोलने का आग्रह किया था। इनके प्रस्ताव को ईसाइयों ने फ़ौरन ही स्वीकार नहीं कर लिया। उनमें बहुत से आदमी यह सोचने लगे थ कि हिन्दुस्तान में अँगरेज़ी स्कूल खोलकर, अँगरेज़ी-पढ़ाइ के साथ ही साथ ईसाइ धर्म का प्रचार किया जाय।

जिस साल ब्रह्म-समाज की स्थापना हुई उसी साल भी अलेक्ज़ेंडर डफ़ नाम के पादरी ने—जिनका नाम भारत की अँगरेज़ी-शिक्षा के इतिहास में बड़े आदर से लिया जाता है—

मिशन से भारत में अँगरेज़ीस्कूल-खोलने और प्रचार करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। जिस समय राम बाबू ने सलाह विलायत के ईसाई मिशनों को दी उस समय डफ़ को यह सलाह बहुत पसन्द आई और उन्होंने इस विषय में बाबू से पत्र-व्यवहार भी किया था। मिशनों-द्वारा भारत अँगरेज़ी स्कूल खोलने का सारा श्रेय यों डफ़ साहब को है और असल में इन्होंने यह काम पहले पहल शुरू किया था। किन्तु इनके हृदय में विचार उत्पन्न कराने का श्रेय राम बाबू को है। मिशन-स्कूलों से भारत में बड़ा उपकार हुआ है इसमें कोई सन्देह नहीं—और इस उपकार के लिए हम राम बाबू के कर्ज़दार हैं।

भारत पधारने पर डफ़ साहब कलकत्ते उतरे और रा मोहन राय से मिलने गये। राम बाबू इनसे बड़ी प्रसन्नता पूर्वक मिले तथा उन्हें हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। यद्यपि ब्रह्म-समाज नामक संस्था स्थापित करने उसके विरोध में ईसाई-दल को सहायता देना एक मामूली बात न थी। पर, राम बाबू का तो कहना था कि सत्य की सदा जय होगी, अतएव सबको अपने पथ पर चलने आने दो।

डफ़ साहब को स्कूल खोलने के लिए मकान की ज़रूरत थी। इन्हीं दिनों ब्रह्म-समाज अपना किराये का मकान छोड़कर नये मकान में जा रहा था। राम बाबू ने ६०) महीने पर वह मकान इनको दे दिया—यद्यपि ब्रह्म-समाज से ७२) किरा

लिया जाता था। यही नहीं, आपने अपने नये ख़याल के मित्रों के लड़कों को इस स्कूल में भर्ती कराकर डफ़ साहब की सहायता की। १३ जुलाई, १८३० को इस स्कूल को खोलने का उत्सव हुआ। डफ साहब ने अँग्रेज़ी और फिर बंगला में प्रभु ईसा की प्रार्थना की। राम बाबू भी इस उत्सव में शरीक थे। ईसा की प्रार्थना में शरीक होने तथा ईसाई-स्कूल में हाथ बटाने के कारण उनके मित्रों में गलतफ़हमी फैल गई। जब डफ साहब ने उन्हें तथा सभी उपस्थित मण्डली को बाइबिलकी प्रतियाँ बाँटकर उसे पढ़ने को कहा, तब राम बाबू बीच में ही बोल उठे।

"डा० होरेस हेमैन विल्सन के समान ईसाइयों ने हिन्दू धर्म शास्त्रों को पढ़ा। किन्तु, वे हिन्दू नहीं हो गये। मैंने खुद पूरा कुरान पढ़ा है, लेकिन मैं मुसलमान नहीं हो गया। यही नहीं मैंने पूरी बाइबिल पढ़ डाली है, लेकिन तुम जानते हो कि मैं ईसाई नहीं हूँ। तब आप इसे पढ़ने में क्यों डरते हो ? इसे आप पढ़ें और पढ़कर अपने लिये निश्चय करलें।"

इस कथन से विरोधियों का मुंह बन्द हो गया। राम बाबू रोज़ सबेरे ६ बजे लगातार एक महीने तक और पीछे कभी कभी बाइबिल की पढ़ाई के समय आया करते थे। उनके इस उदाहरण का बंगाली जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इनके एक धनी शिष्य श्री काशीनाथ राय चौधरी ने कलकत्ते से ४० मील दूर अपना एक मकान डफ़ साहब के निरीक्षण में एक

स्कूल खोलने के लिये दे दिया। स्कूल के मास्टरों की तनख्वाह
चौधरी साहब ने स्वयं देने का वादा किया। मिशन स्कूलों
का यहीं से प्रारम्भ काल शुरू होता है।

मार डालने की चेष्टा

राममोहन राय के धार्मिक विचारों ने भयानक तूफान
खड़ा कर दिया था। यह सभी लोग जानते थे कि सती-प्रथा के
बन्द होने में इनका बहुत बड़ा हाथ है। ईसाई पादरियों को
इनसे भी सहायता मिलती थी, यह छिपी नहीं थी। बहु-विवाह
का तीव्र विरोध कर कुलीन ब्राह्मणों को इन्होंने बहुत नाराज़ कर
दिया था। मूर्त्ति-पूजा के खिलाफ प्रचारकार्य ने पण्डे, पुरो-
हितों को अपनी दुश्मन बना दिया था। ब्रह्म-समाज की स्थापना
के बाद और उसके पहले भी जो प्रचार के पर्चे ये लोग बाँटते
थे, वे शुद्ध तथा बड़ी सरल बंगला में होते थे। गाँव गाँव में
राममोहन राय के लिखे पर्चे बँटा करते थे। इनकी "संवाद
कौमुदी" का बड़ा प्रचार था। इस कारण साधारण जनता
नई बातें समझने लगी थी। उसके दिमाग में भी इनकी
बातें कुछ कुछ घुसने लगी थीं। इसका नतीजा यही हुआ
कि पण्डित-मण्डली जानी दुश्मन हो गई। जब उन्हें यह
समाचार मिला कि ये विलायत-यात्रा ऐसा बड़ा पाप करने
वाले हैं—तब तो उन्होंने तै कर लिया कि, यह धर्म

नका शत्रु है । यदि यह इस पागलपन में है तो इसाइ क्यों नहीं हो जाता अपने को हिन्दू क्यों कहता है ? यह तो एक प्रकार से आस्तीन का साप है। इस कारण मूर्ख पण्डितों ने तै किया कि इस 'पापी' को "भारत की पवित्र आर्य भूमि" से उठा देना चाहिए ।

गो माँस भक्षक और विधर्मियों से तो डर के मारे बोलना नहीं तथा अपने ही धर्म वाले के उदार विचारों से चिढ़कर उसे मार डालने की चेष्टा करना यह कोइ समझदारी की बात हो सकती है ? मूर्खों ने राम बाबू के कमरे में एक सूराख तक यह देखने के लिए बना लिया था कि, कोई ऐसा काम करते इन्हें पकड़ लें जो धर्म विरुद्ध हो और फिर जाति से निकाल दें । इन पर दो बार हमले हुए । इनकी जान लेने के बड़े बड़े षड्यन्त्र का समाचार सुनकर घरमें बर्छे-हथियार रखे गये, रात-दिन भाले लिये लोग पहरा देते थे । राम बाबू के पास एक कटार तथा तलवारनुमा छड़ी सदा रहती थी। इनके मित्र मि० मार्टिन सदा इनके साथ साथ रहते थे ।

विलायत-यात्रा

भारत की राजनैतिक स्थिति एक दम पलट गई थी । मुगलों का सितारा अस्त हो चुका था । मुगल साम्राज्य का एक धुंधला दीपक बादशाह अकबर अंग्रेज़ों का गुलाम हो रहा था । अपनी अवस्था के सुधार के लिए तथा अपनी ओर से

वकालत करने के लिए उसे एक योग्य आदमी की ज़रूरत थी। उस समय भारत में राममोहन राय से अधिक योग्य आदमी कौन हो सकता था। अतः उसने इनसे ही निवेदन किया।

राममोहन राय सभ्यता तथा आज़ादी के इस देश को देखने का बहुत दिनों से विचार कर रहे थे। साथ ही इनको अपने देशवासियों के हृदय में से यह अन्ध-विश्वास मिटाना था कि विदेश-यात्रा पाप है। इस कारण इन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इस कार्य को स्वीकार कर लिया। मुगल-सम्राट् का प्रतिनिधि होने के लिए बहुत बड़ी हैसियत का आदमी चाहिए था, इस लिए सम्राट् ने उनको 'राजा की' उपाधि दी और इस समय से राममोहन राय राजा राममोहन राय हो गये।

राजा राममोहन राय अपनी घरेलू मुसीबतों से भी ऊब गये थे। अतः इन्होंने भारत छोड़कर विदेश में मन को हलका करना भी निश्चय किया। नवम्बर के शुरू में आप इङ्गलैण्ड के लिए रवाना हो गये। वहाँ पहुँचते ही इतिहास-प्रसिद्ध मी जेरमी बेंथम से इनकी भेंट हुई और बेंथम साहब ने इनका परिचय कराते हुए कहा—

"यह उज्वल चरित्रवाला महापुरुष मनुष्य जाति का सच्चा सेवक है।"

इधर राममोहन राय विलायत जा रहे थे, उधर ब्रह्म समाज स ज़रासी सम्पर्क या सम्बन्ध रखनेवाले परिवारों या पुरुषों को पुराने विचारवाले जाति से निकाल कर बाहर

कर रहे थे। राजा राममोहन राय अपने साथ हिन्दू रसोइया, दूध के लिये दो गाय तथा हिन्दू नौकर ले गये थे। सब पर वार हो रहा था पर न जाने लोग इनसे खुलकर झगड़ने की हिम्मत क्यों नहीं करते थे। इनको जाति से बाहर कराने की हिम्मत किसी को न पड़ी।

१६ नवम्बर को आप कलकत्ते से रवाना हुए। ८ अप्रैल को प्रसिद्ध नगर लिवरपूल पहुँचे। यहाँ से मैन्चेस्टर नामक मशहूर कपड़े के कारखानेवाले नगर को देखते हुए लन्दन पहुँचे।

लिवरपूल नगर में ज्योंही इनके आने की खबर लोगों को लगी, वे इन पर टूट पड़े। प्रत्येक आदमी इनसे मिलने के लिए उत्सुक रहता था। रात दिन इनको लोगों से मिलते रहना तथा दावतें खाना पड़ता था। खाते, पीते 'सोते, उठते, बैठते कोई न कोई इनसे मिलने के लिए बैठा ही रहता था। इस प्रकार जादू की तरह इनका नाम विलायत में फैल गया था।

इस नगर में यद्यपि अधिक दिन तक राजा साहब नहीं रह सके थे, फिर भी थोड़े ही दिनों में जनता पर इनका बड़ा प्रभाव पड़ा। जिन "पुराने खयालवाले ब्राह्मणों की जड़ता" की यहाँ शिकायत थी, उसी जातिके एक पुरुष को सुधार की बातें करते देखकर लोगों को आश्चर्य और श्रद्धा होती थी और वे उनकी बड़ी कद्र करने लगे थे। इसी नगर में प्रसिद्ध ऐतिहासिक

विलियम रोस्को से इनकी भेंट हुई और इनको विलायत में दावत देने वाला यह पहला व्यक्ति था।

मैंचेस्टर में जाने की कथा भी बड़ी रोचक है। ज्योंही ये कारखानों की ओर गये, सब काम करनेवाले काम छोड़कर 'दिल्ली के बादशाह' (भारत के बादशाह) को देखने के लिए दौड़ पड़े। कितनों ही ने जल्दी में हाथ भी न धोये थे। व ऐसी ही अवस्था में उनसे हाथ मिलाना चाहते थे। औरत मजदूरिनियाँ उनको छाती से लगाना चाहती थी। बड़ी कठिनाई से राजा साहब अपने को बचा सके। इनको आगे बढ़ने के लिए रास्ता साफ़ कराने की ज़रूरत पड़ी और पुलिस की सहायता ली गई। जिस कारख़ाने में वे आते, उसका फाटक भीड़ को रोकने के लिए बन्द कर दिया जाता था। कारख़ाना देखने के बाद, सैकड़ों मज़दूरों से हाथ मिलाकर आपने एक छोटा सा भाषण दिया—यह तो वे समझ ही गये थे कि मुझे 'भारत का बादशाह' समझा जा रहा है, अतः इन्होंने जनता से कहा कि, बादशाह और उसके मंत्री को सुधार प्राप्त करने में सहायता दो। जनता चिल्ला उठी "बादशाह तथा सुधार चिरस्थाई हों।"

विदेश में प्रकाश और दीप निर्वाण

स्वसुख निरभिलाष: खिद्यसे लोक हेतोः।
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवं विधैव॥

अर्थात्, तू अपने सुख की अभिलाषा छोड़ कर दूसरों के हेतु रहता है, अथवा तेरा स्वभाव ही ऐसा है!

राजा राममोहन राय केवल अपने सुख के लिए या मुगल,-सम्राट् से रुपया पाकर सैर करने ही के लिए विलायत नहीं गये थे। वे वास्तव में भारत के सुधार की आवाज़ को कम्पनी के प्रधान अधिकारियों, सम्राट् तथा पार्लामेन्ट को सुनाने गये थ। सती-प्रथा रुक जाने के कारण देश का पण्डितवर्ग बड़ा नाराज़ था। पंडितवर्ग ने इस प्रथा को रोकने क विरुद्ध पार्लामेण्ट में दर्खास्त दी थी। कम्पनी के फैसले को पार्लामेण्ट ही तोड़ सकती थी इस कारण इसकी शरण ली गई। कम्पनी के सुधारों के खिलाफ़ आवाज़ उठाई गई थी। भारत में लगान, मालगुज़ारी आदि क बारे में विलायत में कानून बनने वाला था, शिक्षा क लिए सरकार अपना प्रोग्राम बनाना चाहती थी—इसलिए शिक्षित जनता-नई रोशनी की जनता के पक्ष की ओर से एक मज़बूत पैरोकार की ज़रूरत थी। राजा साहब विलायत के लिए पहले शिक्षित भारतीय नेता थ—अत: वहाँ पर इनका स्वागत अत्यन्त उत्साह से होना उचित ही था—ये इस योग्य थे कि अपना प्रभाव डाल कर विरोधियों के मुँह पर ताला लगवा सकें।

लन्दन में ज्यों ही खबर लगी कि भारत का यह महान् ब्राह्मण, दर्शन-पण्डित आया है—वहाँ हल-चल मच गई।

बिलायत में राजा राममोहन राय 'ईश्वर एक है' अपने इस सिद्धान्त के लिए मशहूर मशहूर थे।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

अर्थात् एक चीज़ को (ईश्वर) विद्वान् लोग नाना प्रकार से पुकारते या वर्णन करते हैं। इस समय इसी प्रकार लहर उठने की यूरोप में तैयारी हो रही थी और इसी लहर को आगे चलकर 'थियोसोफ़ी' या 'दैवी ज्ञान' का रूप मिला। इसी कारण लन्दन में धार्मिकों से लेकर राजनीतिज्ञ तक सभी इस नई रोशनी के ब्राह्मण पर टूट पड़े। कुमारी कोलट के शब्दों में ये उस समय के 'शेर' कहलाये। उन दिनों सब से अधिक प्रसिद्धि इन्हीं का समझो जाने लगा। महिला-समाएँ इन्हें महिलाओं का सच्चा सेवक समझती थीं। यूनिटेरियन ईसाई इन्हें अपना ही आदर्श मानते थे। इनके आदरार्थ लन्दन में यूनिटेरियन संस्था की एक ख़ास बैठक की गई। इस सभा में इनका स्वागत करते हुए डा० कार्पेन्टर ने इन्हें 'भाई, कहा था। आप ने अपने छोटे से व्याख्यान में कहा था —

आपके विश्वास के प्रति आदर प्रकट करते हुए मैं यह कहता हूँ कि मैं भी एक ही ईश्वर में विश्वास करता हूँ और मैं प्रायः उन सभी सिद्धान्तों में विश्वास रखता हूँ जिसमें आप। किन्तु, यह मैं अपनी ही मुक्ति और अपनी ही शान्ति के लिए करता हूँ।

अस्तु, लोगों से मिलने-जुलने के परिश्रम से राजा साहब

बीमार हो गये। किन्तु शीघ्र ही इनकी बीमारी अच्छी हो गई और काम उसी धड़ल्ले से चलने लगा।

राजनीतिक-प्रभाव

भारत में राजा राममोहन राय से कम्पनी के अधिकारी प्रसन्न नहीं थे। वे इन्हें बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। बड़े लाट तो सीधे विलायत से आते थे और वे उनके उदार विचारों से नाराज नहीं थे, पर कम्पनी के छोटे अफ़सर एंग्लो-इण्डियन यह समझ रहे थे कि, यह आदमी 'नेटिव' कालों को आज़ाद व योग्य बनाता जा रहा है इस कारण गोरे चमड़े की वैसी कदर न रह जायगी जैसी होनी चाहिए।

राजा साहब जानते थे कि विलायत जाने पर उनका राजनीतिक पद बढ़ जायगा। कम्पनी के अधिकारियों का साहस न होगा कि वे उपेक्षापूर्वक उनसे बर्ताव कर सकें। बात भी ऐसी ही हुई। वे ही एंग्लो-इण्डियन, जो भारत में घृणापूर्वक उनकी ओर देखते थे, विलायत में उनका सम्मान देखकर दंग रह गये और उनसे मित्रता करने के लिए तरसने लगे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इनको 'भारत के मुगलसम्राट् का प्रतिनिधि' तथा 'राजा' की खिताब दोनों का औचित्य मानना नामंजूर किया पर बृटिश सम्राट् तथा उनके मंत्रियों ने इनको मुगल-सम्राट् का राजदूत और 'राजा' मानना स्वीकार कर लिया। बृटिश जनता के लिए ये 'भारत की जनता के ही

प्रतिनिधि' रहे और इसी कारण उनकी सर्व-प्रियता और भी बढ़ गई।

इसी सर्व प्रियता का यह फल था कि कम्पनी को राजा साहब की लोक-प्रियता के आगे झुकना पड़ा तथा इनका स्वागत करना पड़ा। ६ जुलाई १८३१ को कम्पनी की ओर से इनको एक दावत दी गई। सभापति ने उनका स्वागत करते हुए यह आशा प्रकट की थी कि उनके आगमन से नये विचारों के अन्य प्रतिष्ठित हिन्दुओं को भी विलायत आने का अवसर मिल जायगा।'

बृटिश पार्लामेण्ट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में राज्य करने के लिए पट्टा दे रखा था। यह पट्टा फिर दिया जाय या नहीं, इस विषय पर विचार करने के लिए पार्लामेण्ट ने एक कमेटी बैठाई थी। इस कमेटी में गवाही देने के लिए राजा साहब को भी बुलाया गया था। पर, आपने आदर सहित यह सम्मान अस्वीकार कर दिया। पर दो पत्रों के रूप में आपने 'किस तरह शासन किया जाय' इस विषय में अपनी सलाह बोर्ड को दी थी। ये पत्र इस बात के प्रमाण हैं कि राजा साहब अमीरों का पक्ष नहीं, किन्तु गरीबों का पक्ष ग्रहण करते थे। आपने इसमें लगान के बोझ से पिसी हुई गरीब जनता का पक्ष लेकर यह दिखलाया था कि भारत में गरीब किसानों से कितना ज्यादा लगान लिया जाता है, उनको कितनी पीड़ा के साथ यह लगान देना पड़ता है। कम्पनी के

ख़र्च बहुत ज्यादा है। बड़ी बड़ी तनख्वाह वाले यूरोपियन कलेक्टरों को हटाकर, छोटी तनख्वाह पर देशी कलेक्टर नियुक्त किये जायँ। इसी प्रकार सरकार और भी ख़र्च घटया दिया करे। १७९३ के स्थायी बन्दोबस्त से बड़े बड़े ज़मींदारों का फ़ायदा हुआ है पर किसानों को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अधिकारियों को भारत के करोड़ों पीड़ित किसानों के दुःख को दूर करने का कोई न कोई उपाय शीघ्र करना चाहिए।

११ सितम्बर १८३१ को 'भारत में न्याय-शासन प्रणाली' पर सवाल व जवाब छापे गये। इसमें राजा साहब ने अदालतों के बारे में कई सुधारों का प्रस्ताव किया था। उन सिफ़ारिशों में से कुछ ये हैं—(१) अदालती कार्रवाई फ़ारसी के बजाय अंग्रेज़ी में हो (२) दीवानी अदालतों में देशी असेसर मुकर्रर हों, (३) पञ्च द्वारा मुकदमा हो (४) लगान-कमिश्नर तथा जजी महकमा अलग अलग रहे (५) जज व ज़िलाधीश एक ही न रहा करे (६) दीवानी व फ़ौजदारी के कानून लिख लिये जाय—वगैरः।

पाठक सोच सकते हैं कि उस समय कम्पनी के खिलाफ़ इन बातों की सिफ़ारिश करना कितनी हिम्मत का काम था—पर राजा राममोहनराय को डरना आता ही न था।

सितम्बर के महीने में सम्राट से इनकी भेंट कराई गई और नये सम्राट की तख्तनशीनी के वक्त इनको अन्य देशों के राजदूतों के बीच में बैठने का सौभाग्य दिया गया। इस प्रकार

ध्यान रक्खा गया कि उनको अनेक न हटाया जाय। राजा साहब संसार के सभी धर्मों के ऊपर थे। उनके लिए जलाना या गाड़ना दोनों बातें बराबर थीं। साथ ही, विलायत में हिन्दुओं के जलाने का प्रबन्ध भी न था और मित्रगण इनकी यादगार को चिरस्थायी बनाना चाहते थे।

१८ अक्टूबर को, २ बजे शाम को, बड़े समारोह के साथ, बहुत से प्रसिद्ध आदमी तथा हजारों की भीड़ के बीच में लाश दफना दी गई। वह प्राणी, जिसने एक बार संसार में हलचल मचा दी थी, अनन्त की गोद में लिटा दिया गया। ईश्वर की यही लीला है। खाक से जो प्राणी उत्पन्न हुआ है, वह खाक में ही मिल जाता है। 'साहिद' कवि ने सच कहा है —

गये गोरे गरीबाँ पर तो हमको यह यकीं आया।
दो रोज़ा मुल्क लेकर हर हँसी ज़ेरे फ़लक आया॥
हमारा जिस्मे खाकी खाक में जब मिल गया आख़िर।
हवा का था जला झोंका, जहाँ से फिर यहीं आया॥
न कोई दोस्त है अपना, न दुश्मन है कोई याँ पर—
अब न दिल में किसी से आपको है मेहर (ओ) की आया॥
जा मरते हैं तेरे ऊपर, उन्हीं की ज़िन्दगी लेकिन—
जिसे मरना नहीं आया उसे जीना नहीं आया॥

श्रीमहादेव गोविन्द रानाडे

इस संसार में कुछ ऐसे पुरुष उत्पन्न होते हैं जो इस संसार की धारा में बह जाते हैं और थोड़े ऐसे पुरुष भी होते हैं जो इस संसार की गति को मोड़ देते हैं और उसपर अपना आतंक जमा देते हैं। पहले प्रकार के मनुष्यों की संख्या इस संसार में बहुत अधिक है और दूसरे प्रकार के महापुरुषों की संख्या बहुत ही कम है। इस ग्रन्थ के चरित्रनायक महादेव गोविन्द रानाडे ऐसे ही पुरुषों में से एक थे। इन्होंने अपना सारा जीवन मनुष्य-समाज की सेवा में ही बिता दिया। इस महापुरुष ने क्षण भर भी देश-सेवा तथा समाज-सेवा से विरत होना पाप समझा।

महादेवगोविन्द रानाडे उन सत्पुरुषों में से थे जिनके कारण परमात्मा की सृष्टि पूर्ण कही जा सकती है। भारत के उपकार के लिए रानाडे ने उस समय प्रयत्न करना प्रारंभ कर दिया था जब भारत के लोग राष्ट्रीयता से डरते थे और एक प्रकार से अंधकार में फँसे हुए थे। आज भारत की जो दशा है वह इस महापुरुष के परिश्रम और यत्न का भी फल है। भारतीय असुविधाओं के दूर करने में इनका बड़ा हाथ था।

महादेवगोविन्द रानाडे का जन्म

महादेव गोविन्द रानाडे का जन्म १८वीं जनवरी सन् १८४० ई० में हुआ था। इनके माता-पिता की गणना साधारण श्रेणी में की जा सकती है, क्योंकि वे न तो अधिक धनवान् ही थे और न अधिक दरिद्र ही। इनके तीन और भाई थे। इनके भाइयों के नाम यशवंतराव, गोपालराव और विष्णुपंत थे।

वंश-परिचय

बम्बई के पास नासिक ज़िला है। इनके पिता नासिक ज़िले के निफ़ाड नामक स्थान के ज़मींदार के हेडक्लर्क थे। इन का नाम अमृतराव था। यह एक अच्छे ज्योतिषी थे। अमृत-राव के पिता का नाम भास्करराव था। भास्करराव की मृत्यु ६५ वर्ष की अवस्था में हुई। अपनी मृत्यु के छः महीने पहले तक वह कूद कर घोड़े पर चढ़ जाया करते थे। इनका स्वास्थ्य

प्रशंसनीय था। भास्करराव के पिता का नाम भगवन्तराव था। भगवन्तराव की स्त्री गाय की खूब पूजा किया करती थीं। लोगों का कथन है कि भगवन्तराव की स्त्री गाय को खूब अन्न खिलाती थीं और फिर गाय के गोवर को धोती थीं। उस गोवर में उन्हें कुछ अन्न मिल जाता था। उसी अन्न को वे पीसती थीं और उस आटे को गाय के मूत्र से सानती थीं। इसी प्रकार की रोटियाँ खाया करती थीं।

महादेवगोविन्द रानाडे के पूर्वजों का सम्बन्ध पेशवा से था। इस प्रकार हमारे चरित्रनायक का जन्म महाराष्ट्र-देश के एक उच्च ब्राह्मण कुल में हुआ था।

रानाडे का बाल्यकाल और शिक्षा

लड़कपन में रानाडे बहुत ही सुस्त रहा करते थे और चंचलता तो उन्हें छू भी नहीं गई थी। इसलिए इनके घर के लोग प्रायः कहा करते थे—"देखें इसका निर्वाह कैसे होता है। जब इसके मुँह पर मक्खी बैठ जाती है, तब भी यह उसे नहीं उड़ाता।"

ये लोग नहीं जानते थे कि एक दिन यह सुस्त बालक केवल भारत ही में नहीं, किन्तु सारे संसार में अपना नाम अमर कर देगा।

रानाडे लड़कपन में तुतलाते भी थे। इनके पिता ने इस रोग के दूर करने का घोर प्रयत्न किया और उन्हें सफलता भी मिली।

जब इनकी अवस्था छाः वर्ष की थी, तब इनकी पूज्या माता जी इन्हें तथा इनकी बहन को गाड़ी में लेकर रात को कोल्हापुर आ रही थीं। रात अँधेरी थी। इनकी माताजी बैलगाड़ी में सो-रही थीं और सब नौकर भी सोरहे थे। बैलगाड़ी में धक्का लगा और महादेव गोविंद रानाडे गाड़ी से नीचे गिर गये। गाड़ी बहुत दूर चली गई, परन्तु किसी की निद्रा भंग नहीं हुई। पीछे एक आदमी घोड़े पर आ रहा था। उसने लड़के की आवाज़ सुनली और आकर उनकी माता को जगाया। तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वह फूट फूट कर रोने लगीं। परन्तु जब उस आदमी ने रानाडे को उनकी गोद में दे दिया तब वे बहुत ही अधिक प्रसन्न हुई। यदि उस घुड़सवार ने रानाडे को न देखा होता तो यह महापुरुष अवश्य ही आज किसी जंगली जानवर का शिकार हो जाता और भारत एक श्रेष्ठ रत्न को खो बैठता।

पहले इनके पिता ने इन्हें महाराष्ट्री-भाषा का पढ़ाना प्रारंभ किया और जब इनकी अवस्था ११ वर्ष की हुई तब इन्होंने अँगरेज़ी पढ़ना प्रारंभ कर दिया। परन्तु प्रारंभ काल ही में महाराष्ट्री का इनके ऊपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि इसका

अस्तित्व उनके पीछे लिखे हुए लेखों में भी खूब पाया जाता है।

सन् १८५१ ई० में रानाडे ने कोल्हापुर के हाई-स्कूल में पढ़ना प्रारंभ कर दिया और सन् १८५६ ई० तक उसी में पढ़ते रहे। इन पाँच-छः वर्षों में इनको अँगरेज़ी का अच्छा ज्ञान हो गया था।

इसके बाद ये पढ़ने के लिए बम्बई भेजे गये। बम्बई में यह 'एलफिंस्टन इंस्टीट्यूशन' में पढ़ने लगे। इस संस्था का नाम अब 'एलफिंस्टन कालेज' होगया है। यहाँ पर रानाडे की प्रतिभा चमकने लगी। यहीं पर इनके ज्ञान की वृद्धि हुई। यहाँ पर इनकी ज्ञान-लिप्सा तथा जिज्ञासा की अच्छी तृप्ति हुई और पठन-पाठन में कई सुविधाएँ मिलीं। यहीं पर इनके ऊपर कुछ अच्छे शिक्षकों का, बहुत ही अधिक तथा स्थायी प्रभाव पड़ा। सर एलक्ज़ेंडर ग्रांट का प्रभाव भी इनके ऊपर कम नहीं पड़ा।

सन् १८६२ ई० में इन्होंने बी० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। सन् १८६५ ई० में इन्होंने इतिहास में एम० ए० परीक्षा पास की और उन्हें एक सुवर्ण-पदक पुरस्कार मिला। सन् १८६६ ई० में इन्होंने एल० एल० बी० की परीक्षा आनर-सहित पास की। इस बार बम्बई-विश्वविद्यालय ने उन्हें ४०० रुपये की पुस्तकें पुरस्कार स्वरूप दीं।

रानाडे बहुत ही अधिक प्रतिभाशाली पुरुष थे। परन्तु वे केवल अपनी प्रतिभा तथा बुद्धि का ही भरोसा नहीं करते थे, किन्तु पढ़ने में बड़ा परिश्रम भी करते थे। जब रानाडे बैठकर पढ़ने लगते थे तब बिल्कुल पढ़ने में ही तल्लीन होजाया करते थे। उस समय यदि कोई नगाड़ा भी पीटता तो वे नहीं सुनते थे। घोर परिश्रम करने के कारण उनकी आँखें भी खराब होगई थीं।

रानाडे का पढ़ने में परिश्रम

कालेज में प्रवेश करते ही समय रानाडे की प्रतिभा अपना जौहर दिखलाने लगी। इसी समय से रानाडे ने अपने उस ज्ञान के भण्डार का बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया जिसके लिए वह आज इतने प्रसिद्ध हैं। थोड़े-ही समय में उनकी गणना कालेज के सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियों में होने लगी और कुछ दिन और बीत जाने पर सब लोगों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर लिया कि उस समय रानाडे के समान प्रतिभाशाली कोई दूसरा विद्यार्थी विद्यालय में नहीं था।

रानाडे केवल कोर्स की पुस्तकों को ही नहीं पढ़ा करते थे, किन्तु प्रायः बाहरी पुस्तकों को भी पढ़ा करते थे। विद्यार्थी-जीवन में ही उनके विचार बड़े उदात्त, निर्मल तथा गम्भीर हो गये थे। वे रात दिन पढ़ने ही में लगे रहते थे और एक क्षण

मा व्यर्थ नहीं खोते थे । इसीलिए अल्पकाल ही में ये कई विषयों के अच्छे ज्ञाता होगये । छुट्टियों में तो ये और भी अधिक पढ़ते थे । एक साल कालेज में छुट्टी हुई, परन्तु रानाडे ने एक दिन की भी छुट्टी नहीं ली और सारी छुट्टी इतिहास के अध्ययन में ही बितादी ।

फेलोशिप

जब रानाडे कालेज में पढ़ते थे तब उन्हें पहले ६० रुपये मासिक जूनियर फेलोशिप मिलता रहा । इसके बाद उनका नाम सीनियर फेलोशिप में लिख लिया गया और तीन वर्ष तक १२५ रुपये मासिक मिलता रहा । रानाडे की प्रतिभा, योग्यता, तथा बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर बम्बई प्रांत के सब लोग उन्हें Prince of Graduates कहा करते थे ।

रानाडे और प्रोफेसर-ग्रांट की अनबन

प्रोफेसर ग्रांट साहब एक बहुत ही अच्छे आदमी थे । रानाडे ने अपने जीवन काल के पिछले भाग में भी इनकी बड़ी प्रशंसा की है और वास्तव में रानाडे के ऊपर इनका बड़ा प्रभाव पड़ा था । ग्रांट साहब इनसे बहुत प्रसन्न रहा करते थे । विद्यार्थी दशा में ही उनमें देश प्रेम जागृत हो गया था । एक बार ग्रांट साहब ने अपने विद्यार्थियों से अङ्गरेज़ी राज्य और

मरहठों के राज्य का मुकाबिला करने के लिए कहा। इस पर बहुत विद्यार्थियों ने लेख लिखे। परन्तु रानाडे ने इस तरह से अपने लेख में इस बात के सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि अङ्गरेज़ों के राज्य से मरहठों का राज्य अच्छा था। इस पर ग्राट साहब उनसे बहुत बिगड़े और उन्होंने रानाडे को बुलाकर कहा—ऐ नवयुवक, तुम्हें उस सरकार की निन्दा नहीं करनी चाहिए जो तुम्हें शिक्षित कर रही है और जो तुम्हारी जाति के लिए इतना उपकार कर रही है। इसके बाद ग्राट साहब ने बड़ा उग्र रूप धारण किया और छः महीने के लिए रानाडे की छात्रवृत्ति बन्द करवा दी।

अध्ययन

इसमें सन्देह नहीं कि रानाडे ने इतिहास और संपत्ति शास्त्र का ही खूब अध्ययन किया था, परन्तु इनके अतिरिक्त उन्होंने विज्ञान, दर्शन और नाटक आदि विषयों का भी अध्ययन किया था। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने अपने मित्र तैलङ्ग की भाँति अङ्गरेज़ी-साहित्य का अध्ययन नहीं किया था, तथापि शेक्सपियर तथा स्काट आदि का उन्हें अच्छा ज्ञान था। परन्तु शेक्सपियर तथा स्काट की अपेक्षा इनका मन जनता के अध्ययन की ओर अधिक था।

रानाडे की निरभिमानता

इनकी योग्यता से प्रायः लोग चकित हो आया करते थे। एक बार कुछ लोगों ने कहा—आश्चर्य है, आपने इतना कैसे अध्ययन कर लिया ?

इसपर रानाडे ने उत्तर दिया—"इसमें तो आश्चर्यान्वित होने की कोई बात ही नहीं है । पढ़ने में मुझे कई तरह की सुविधाएँ प्राप्त थीं और ऐसी सुविधाएँ प्रायः सब लोगों को नहीं प्राप्त होतीं। मैंने सर एलेक्ज़ेंडर ग्राट से शिक्षा पाई है और विद्याध्ययन में मुझे उनसे बड़ी सहायता मिली है। ग्रांटसाहब एक बहुत ही अच्छे शिक्षक थे। अब विद्यार्थियों को ऐसे अच्छे शिक्षक नहीं मिलते। इसलिए उनकी योग्यता वैसी अच्छी नहीं होती।"

रानाडे का सपादन

रानाडे के जीवन का मूल मन्त्र समाज-सेवा था। जब रानाडे विद्यार्थी थे, तभी से समाज-सेवा की भावना उनके हृदय में उठी थी। समाज की सेवा करने ही में उन्हें आनन्द मिलता था।

'इन्दुप्रकाश' नामक एक समाचारपत्र निकलता था। उस में एक भाग अँगरेज़ी के लिए भी सुरक्षित रहता था। सन् १८६२ ई० में ही रानाडे ने 'इन्दुप्रकाश' के अँगरेज़ी विभाग

का संपादन भार अपने ऊपर ले लिया था। स्मरण रखना चाहिए कि उस समय रानाडे विद्यार्थी ही थे।

रानाडे जिस काम में लगते थे उसमें खूब अच्छी तरह से काम करते थे। यहाँ तक कि वे अपने स्वास्थ्य की भी चिन्ता नहीं करते थे। 'इन्दु-प्रकाश' के प्रकाशन में भी उन्होंने बड़ा परिश्रम किया तथा बड़ी योग्यता दिखलाई। थोड़े ही दिनों में इनका तथा 'इन्दु-प्रकाश' का बड़ा नाम होगया। इस पत्र की देशी तथा विदेशी सभी समाचारपत्रों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

इसमें संदेह नहीं कि रानाडे ने कई आन्दोलनों का स्वयं संचालन किया किन्तु इन सब की नींव इनके विद्यार्थी-जीवन में ही पड़ गई थी।

संसार में प्रवेश

कालेज छोड़ने के बाद रानाडे ने सरकार की नौकरी कर ली। सब से पहले सरकार ने इन्हें बम्बई के शिक्षा विभाग में मराठा भाषा के अनुवादक का काम दिया। अनुवादक के पद पर इन्हें २०० रु० मासिक मिलता था। परन्तु इस पद पर रानाडे बहुत दिनों तक नहीं रह सके। इसके बाद रानाडे अपने राज्य कोल्हापुर में कारभारी के पद पर नियुक्त होगये। वहाँ पर उन्होंने अक्कलकोट के कारभारी के पद को सुशोभित किया था। इस पद पर भी आप बहुत दिनों तक नहीं रह सके।

प्रोफेसर के पद पर

इसके बाद सन् १८६८ ई० में रानाडे एलफिंस्टन कालेज में ४०० रु० मासिक पर प्रोफेसर होगये। पठन-पाठन के कार्य में रानाडे को बड़ी सफलता मिली और उनका बड़ा नाम भी हुआ। कहा जाता है कि यूरुपियन प्रोफेसर लोग भी उनके क्लास में आकर उनका लेक्चर सुना करते थे। परन्तु रानाडे ने इस पद को भी थोड़े दिनों के बाद त्याग दिया। जब रानाडे ने प्रोफेसर के पद को त्याग दिया, तब कालेज के विद्यार्थियों तथा प्रोफेसरों ने मिलकर उन्हें ३००) रु० की एक सोने की घड़ी उपहार स्वरूप दी।

रिपोर्टर के पद पर

इसके बाद रानाडे कुछ दिनों तक बम्बई के हाईकोर्ट में रिपोर्टर के पद पर काम करते रहे। कुछ दिनों तक उन्होंने बम्बई के तृतीय पुलिस मैजिस्ट्रेट के पद पर भी काम किया और कुछ दिनों तक आपने छोटा छोटी अदालतों के चतुर्थ जज का भी काम किया।

एडवोकेट की परीक्षा

इसके बाद सन् १८७१ ई० में रानाडे ने एडवोकेट की परीक्षा दी और उसमें भी सफलता प्राप्त की।

रानाडे पूना में जज

इसके बाद सन् १८७३ ई० में रानाडे पूना में ८०० रुपये मासिक पर जज नियुक्त किये गये। इसमें संदेह नहीं कि इस पद पर लोग बहुत दिनों के बाद नियुक्त हुआ करते थे, परन्तु रानाडे की प्रतिभा ने उन्हें पहले ही इस पद पर सुशोभित कर दिया। जज के काम को रानाडे ने बड़ी योग्यता से किया। मामलों के फ़ैसला करने में इनकी बुद्धि का लोहा यूरुपिय लोग भी मान गये। पेचीदे मामलों में यह और भी अधिक कमाल करते थे। दीवानी और फ़ौजदारी दोनों तरह के मुक़द्दमों में इनकी न्यायपरायणता की बड़ी प्रशंसा हुई।

इनके कामों से प्रसन्न होकर सरमाइकेल साहब ने एक बार कहा था—रायबहादुर महादेव गोविन्द रानाडे सर्वथा हाईकोर्ट के जज होने योग्य हैं। वास्तव में वे हमारे साथ काम करने की योग्यता रखते हैं।

छोटी अदालतों के प्रधान जज

सन् १८७४ ई० में रानाडे १२०० रुपये मासिक पर पूना में छोटी छोटी अदालतों के प्रधान जज नियत कर दिये गये। थोड़े ही दिनों के बाद उन्हें स्पेशलजज का भी पद मिल गया। सन् १८७८ ई० में उनकी बदली हो गई और वह नासिक भेज दिये

गये और फिर नासिक से धुलिया भेजे गये। सन् १८८१ ई० में रानाडे बम्बई प्रेसिडेंसी मैजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त कर दिये गये, परन्तु सरकार ने उनका यह पद अस्थायी ही रखा था। इसके बाद सरकार ने उन्हें प्रथम श्रेणी के सबजज के पद पर नियुक्त कर दिया और उन्हें पूना भेज दिया।

कृषक-कानून और रानाडे

सन् १८७६ ई० में सरकार ने "कृषक-दुःख-निवारक" कानून बनाने का विचार किया और रानाडे उसके स्पेशल जज बनाये गये। यहाँ पर रानाडे को १४३३ रुपये मासिक मिलता था, क्योंकि वह भारतवासी थे। यदि वे यूरोपियन होते तो इन्हें २३०० रुपये तक मिल सकता था। इस काम को रानाडे ने इतनी योग्यता से संपादन किया कि कृषक, धनिक तथा सरकार सब के सब इन से प्रसन्न होगये। इस संबंध में डाक्टर० ए० डी० पोलेन के साथ ही रानाडे को काम करना पड़ा था। पोलेन साहब ने इनकी बड़ी प्रशंसा की थी। उन्होंने कहा—"इसमें तो लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि रानाडे की सम्मति अत्यन्त ही अधिक आदरणीय है। उनके विचार भली भाँति स्पष्ट तथा महत्त्वपूर्ण हैं। इस काम का निरीक्षण उन्होंने बड़ी योग्यता से किया है। उनमें इन सब कामों की व्यवस्था करने की भी शक्ति है। रानाडे की सम्मति की कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिए।"

रानाडे पोलेन साहब के पद पर

सन् १८८५ ई० में पोलेनसाहब ने कुछ दिनों के लिए अवकाश लिया। तब सरकार ने रानाडे को पोलेन साहब के पद पर नियुक्त कर दिया। जब पालेन साहब यहाँ थे, तब रानाडे स्वतंत्रतापूर्वक काम नहीं कर सकते थे। परन्तु उनके अवकाश लेने पर उन्होंने आ खोल कर और स्वतंत्रतापूर्वक बड़ा योग्यता से काम किया। रानाडे की सम्मति थी कि पूँजीपतियों और कृषकों के झगड़े पंचायत द्वारा तै हो जाया करें जिससे उन्हें कचहरी का दर्वाज़ा न खटखटाना पड़े।

पंचायत के पक्ष में बहुत कम लोग थ, परन्तु रानाडे समझते थ कि हमारे देश क लोग न्याय प्रिय हैं। पंचायत से उन्हें अवश्य ही लाभ होगा। लाट साहब ने भी रानाडे क इस काम की भूरि भूरि प्रशंसा की थी।

सन् १८८५ से सन् १८९३ ई० तक रानाडे ने स्पेशल जज क पद पर काम किया। इसी बीच में उन्होंने फाइनेंस कमेटी के मेंबर क पद को भी सुशोभित किया था और सन् १८८७ ई० में उन्हें सी० आई० ई० की पदवी मिली थी।

रियासतों से बुलावा

अब रानाडे की योग्यता का लोहा सब लोग मान गये थ। इसलिए कइ रियासतों न उन्हें अपने यहाँ जज तथा दीवान

बनाने की इच्छा प्रकट की। दीवान बहादुर सर० टी० माधवराव ने उन्हें २००० रुपये मासिक पर बड़ौदा में प्रधान जज बनाने का विचार प्रकट किया। इसके अतिरिक्त महाराज तुकोजीराव होलकर ने उन्हें ३५०० रुपये मासिक पर अपना दीवान बनाना चाहा था, परन्तु उन्होंने इन रियासतों की नौकरी करना पसंद नहीं किया।

रानाडे से सरकार प्रसन्न नहीं रहती थी, क्योंकि यह राजनैतिक आंदोलनों में भी भाग लेते थे। इसलिए सरकार ने इन्हें बम्बई के हाईकोर्ट के जज के पद को देने में बड़ी देर की। सरकार ने काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग को जज बना दिया, यद्यपि वास्तव में रानाडे ही उसके हकदार थे। दूसरी बार भी जगह खाली होने पर सरकार ने इस पद को दो अन्य व्यक्तियों को दिया, परन्तु इन दोनों ने रानाडे के आदर के लिए इस पद को लेना अस्वीकार कर दिया, तब सरकार को विवश होकर सन् १८९३ ई० में इन्हें हाईकोर्ट के जज का पद देना पड़ा। इस पद पर भी इन्होंने बड़ी योग्यता से काम किया और इस समय की भी सैकड़ों कथाएँ इनके सबंध में प्रसिद्ध हैं।

न्यायमूर्ति रानाडे की कुछ फुटकर बातें

जब रानाडे "फाइनेंस कमेटी" में काम करते थे, तब उन्हें इधर उधर खूब घूमना पड़ा था। उन्हें शिमला, दिल्ली, मद्रास

आदि सभा शहरों में जाना पड़ता था। परन्तु इस दौरे में भी उन की धर्मपत्नी रमाबाईजी सदा उनके साथ रहती थीं। एक दिन रानाडे अपनी धर्मपत्नी रमाबाई से बातचीत कर रहे थे। इतने में एक समाचारपत्र बेचनेवाला इनके बँगले में घुस आया और रानाडे के पास चला गया। उसने रानाडे से कहा—कृपा कर के आप इस समाचारपत्र के ग्राहक बन जाइये।

इसी समय रमाबाई ने उससे कहा—भाई, हमें तो यहाँ की भाषा आती ही नहीं। समाचारपत्र लेकर क्या करेंगे? हम दोनों को इसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। परन्तु पत्र बेचनेवाला भी एक ही नम्बर का काइयाँ निकला, उसने रानाडे से फिर यही प्रश्न किया।

तब रानाडे ने उससे कहा—हाँ, आज का समाचारपत्र तो अभी दे दो। परन्तु फिर एक सप्ताह के बाद आना और मेरा नाम ग्राहकश्रेणी में लिख लेना। तब समाचारपत्रवाले ने एक समाचारपत्र रख दिया, पैसा लिया और चला गया। जब वह चला गया, तब रानाडे ने रमाबाई से कहा—हमें कलकत्ते में तीन चार महीना रहना है। इसलिए यह तो बड़ी लज्जा की बात है कि हमलोग यहाँ की भाषा से परिचित न हों। तुम्हें यहाँ की भाषा अवश्य सीखनी चाहिए।

तब रमाबाई ने कहा—इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं कि बंगाली हमलोगों की भाषा नहीं है और यह बात सब लोग जानते हैं कि दूसरी भाषा सीखने से ही आती है।

इसलिए बँगला भाषा के न आने के लिए हमें लज्जित नहीं होना चाहिए। तब रानाडे ने हँस कर कहा—नहीं, तुम्हें यहाँ की भाषा का सीखना आवश्यक है।

तब रमाबाई ने कहा—अच्छा, मैं बँगला ज़रूर सीखूँगी। परन्तु मैं आप ही से सीखूँगी, किसी दूसरे अध्यापक से नहीं।

रमाबाई भली भाँति जानती थीं कि स्वयं पति देवता बँगला नहीं जानते। इसलिए उन्हें यह हँसी सूझ पड़ी।

अब रानाडे पहले तो चुप होगये और इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर के बाद वह अन्य अन्य विषयों के संबंध में बातें करने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही रानाडे प्रतिदिन की तरह घूमने के लिए चले गये। परन्तु जब रोज़ के समय से देर लग गई तब रमाबाई बहुत घबरा गई। उन्होंने उस विलम्ब का कोई कारण न समझा।

आज जब रानाडे घूमकर लौटे तब उनके साथ एक और भी आदमी आया। वह मनुष्य छोटी-बड़ी सब पन्द्रह किताबें लिये हुए था। उसने रानाडे के मेज पर उन सब पुस्तकों को रख दिया, उन सब का दाम लिया और चला गया।

इसके बाद रमाबाई ने उन सब पुस्तकों को उठा उठा कर देखना प्रारंभ कर दिया। तब उन्हें पता चला कि ये सबकी सब अँगरेज़ी की सहायता से बँगला पढ़ने की पुस्तकें हैं।

इसके बाद रानाडे ने सब पुस्तकों की सहायता से बँगला सीखना प्रारंभ कर दिया। अब रानाडे एक बार फिर विद्यार्थी होगये और दिन भर पुस्तकों के अध्ययन में ही बिताने लगे। जब रानाडे घूमने जाते थे तब भी बँगला की पुस्तक उनके हाथ में रहती थी। तीसरे दिन प्रातःकाल ही रानाडे ने स्वयं पर अपनी धर्मपत्नी को बँगला पढ़ाना प्रारंभ कर दिया था।

एक दिन बँगला पढ़कर रमाबाईजी तो चली गईं और अपने गृहस्थाश्रम के कामों में लग गईं। इधर रानाडे महोदय अपनी हजामत नाई से बनवाने लगे। हजामत बनाते समय भी पुस्तक उनके हाथ में थी।

नाई इस समय दो काम कर रहा था। एक तो वह रानाडे की हजामत बनाता जाता था और दूसरे उनकी गलतियों को भी सुधारता जाता था। इस समय रानाडे हजामत भी बनवाते जाते थे और ज़ोर ज़ोर से पढ़ते भी जाते थे। उन्होंने नाई से अपनी गलतियों के सुधारने को भी कहा था। नाई इस समय उनकी आज्ञा का पालन कर रहा था।

रमाबाई पास ही के एक कमरे में बैठी हुई थीं। उन्होंने आवाज़ से ही पहचान लिया कि बैठक में कोई दूसरा आदमी भी है। पहले तो वह यह नहीं समझ सकीं कि यह दूसरा व्यक्ति कौन हो सकता है, परन्तु फिर उन्होंने इस प्रश्न के

देख कर देने का ही निश्चय किया, उन्होंने दरवाजे से झाँका और अपने मन में कहा—यह माजरा !

इस दृश्य को देख कर रमाबाई को बड़ी हँसी आई। वहाँ से वे हट गई और दूर जाकर खूब हँसीं और बड़ी देर तक हँसती रहीं।

हजामत बना कर नाई चला गया। तब रमाबाई रानाडे के पास आई और उन्होंने हँसकर कहा—"वा ! मास्टर तो अच्छा मिला ! मुझे तो मालूम हो रहा है कि दत्तात्रेय की तरह आपभी चुन चुन कर गुरु बना रहे हैं।"

इस तरह आज पति-पत्नी में खूब हँसी-मज़ाक हुआ। अभी तक रमाबाई बँगला का सीखना हँसी समझती थीं, परन्तु आज से उन्होंने बड़े उत्साह के साथ बँगला सीखना प्रारंभ कर दिया।

डेढ़ महीने के भीतर ही रमाबाई को बँगला का अच्छा ज्ञान होगया और अब वे बँगला के उपन्यासों तथा दूसरे साहित्य को अच्छी तरह से समझने लगीं। रानाडे बहुत ही साधारण रीति से रहते थे। इसलिए रानाडे के जीवन-काल में, एक नहीं अनेक बार, लोगों ने उन्हें एक साधारण आदमी समझ लिया था। एक बार यह स्नान करके आ रहे थे। किसी बनिए ने समझा कि यह कोई साधारण ब्राह्मण

हैं। उसने उन्हें प्रणाम किया और कहा—महाराजजी यह सीधा लेते जाइए।

रानाडे ने सीधे को अपनी अँगोछी में बाँध लिया और फिर चले गये। उनके चले जाने के बाद लोगों ने उस बनिये से कहा—यह तो जज साहब थे, तो बनिया बहुत डरा और जाकर उनसे क्षमा माँगी। परन्तु रानाडे ने कहा—इसमें क्षमा माँगने की कौन सी बात है?

इतना कह कर रानाडे आगे चल गये।

एक बार रानाडे की माताजी ने उनके एक हाथ में बर्फी का एक बड़ा टुकड़ा दिया और दूसरे हाथ में एक छोटा टुकड़ा दिया। इस समय रानाडे बहुत छोटे अबोध बालक थे। इसके बाद माताजी ने उनसे कहा—इसे तुम खाओ और उस उस लड़के को दे दो।

इसके बाद रानाडे ने छोटा टुकड़ा तो अपने मुँह में रख लिया और बड़े टुकड़े को उस लड़के को दे दिया। जब उनकी माताजी ने यह माजरा देखा तब बड़ी नम्रता से कहा—यह क्या? उसे छोटा टुकड़ा क्यों नहीं दिया?

तब रानाडे ने उत्तर दिया—तुम्हीं ने तो कहा था कि उस उस लड़के को दे दो। माता अपने लड़के के भोलेपन पर मुग्ध होगई।

रानाडे के यहाँ एक नौकर था। उसे चोरी की आदत पड़
ई थी। पहले तो वह छोटी छोटी वस्तुओं के चुराने के फेर
में रहता था, परन्तु धीरे धीरे हिन्दी के उपन्यास-लेखकों
। तरह उसे चोरी करने का अच्छा अभ्यास होगया । अब
उने बहुमूल्य वस्तुओं पर हाथ साफ करने का विचार करना
रम्भ कर दिया। एक दिन उसने रुपये-पैसे रखने की आल-
री की चाभी चुरा ली, ताला खोल लिया और बहुत सी
शर्फ़ियाँ तथा नोटों को अपने अधिकार में कर लिया । अब
ह 'अन्तर्धानवाच' होना ही चाहता था कि इतने में एक
ौकर ने उसे देख लिया और उसे उठाकर ज़मीन पर पटक
या। घर में हल्ला मच गया और रानाडे को भी सब बातें
लूम हो गईं,, परन्तु रानाडे ने उस नौकर के साथ कैसा बर्ताव
या ? जेल में भेजा ? क्या उन्होंने उसे बड़े घर की हवा
लाई ? नहीं, रानाडे ने उसे अपने पास से कुछ रुपया दिया
र अपने यहाँ से विदा कर दिया।

रानाडे अपने पिता का बहुत मानते थे। रानाडे के पिता
ल्हापुर में बहुत दिनों तक रह चुके थे। इसलिए वह कोल्हा
र के लोगों से भलीभाँति परिचित होगये थ । एक बार
नाडे की बदली कोल्हापुर हो गइ थी बहुत लोग पिता स
सलिए मिलने लगे कि पिता पुत्र से मामले की पैरवी करें ।
रन्तु पिता का तो पुत्र का स्वभाव भली भाँति मालूम ही था,
न्होंने कभी रानाडे से किसी मुक़द्दमे की पैरवी न की ।

परन्तु एक बार उन्हें लाचार होकर ऐसा करना ही पड़ गया
एक बार रानाडे के इजलास में एक ऐसा मुक़द्दमा आ
जिसमें प्रतिवादी एक प्रतिष्ठित घराने का व्यक्ति था। इत
ही नहीं, रानाडे के पिता से उनका विशेष परिचय भी था
इसके अतिरिक्त वे रानाडे के संबंधी भी थे। संबंधी
भली भाँति जानता था कि रानाडे किस धातु के बने हैं।
रानाडे के पास आने का साहस नहीं कर सका। उस
रानाडे के पिता को जा घेरा। पिता भी अब बड़े धर्म-संकट
पड़ गये। अन्त में संबंधी महोदय ने रानाडे के पिता से कहा—
मैं जानता हूँ कि किसी मुक़द्दमे की इस प्रकार पैरवी करना
है। मैं यह भी जानता हूँ कि ये सब बातें आप लोगों को पस
नहीं। तथापि मैं इस समय बड़े कष्ट में हूँ, इसीलिए आप
प्रार्थना करने आया हूँ। इस पर भी मैं अन्याय करने के लि
नहीं कह रहा हूँ। मेरी प्रार्थना तो केवल यह है कि कृपा क
एक बार रानाडे महोदय मेरे सब कागज़ों को देखलें
सब उन पर अच्छी तरह से विचार कर उसका फैस
करें।

उस मनुष्य पर रानाडे के पिता को दया आगई। उ
मनुष्य के हठ, प्रार्थना, संबंध तथा आग्रह ने रानाडे के पिता
उस पर दया करने के लिए विवश कर दिया, उन्होंने उस
सहायता करना स्वीकार कर लिया।

रानाडे के पिता ने अपने मन में कहा—मैं अन्याय क

के लिए तो कह ही नहीं रहा हूँ, तब इसके साथ आने में कोई चिन्ता नहीं।

रानाडे के पिता उस मनुष्य के साथ उस कमरे में चले गये जिसमें रानाडे बैठे थे।

रानाडे इन लोगों को देखकर उठ खड़े हुए और तब उन्होंने इन दोनों सज्जनों को प्रणाम किया। प्रतिवादी ने उन्हें खूब आशीर्वाद दिया। इन लोगों के आसन ग्रहण कर लेने के बाद महादेव गोविन्द रानाडे भी बैठ गये। अब रानाडे ने भी समझ लिया था कि माजरा क्या है। सब लोग कुछ देर तक चुप रहे।

अन्त में रानाडे के पिता ने रानाडे से कहा—बेटा! यह तुमसे कुछ कहना चाहते हैं। इनकी बातें सुन लो।

रानाडे ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। जब प्रतिवादी ने देखा कि रानाडे कुछ उत्तर नहीं दे रहे हैं तब उसने उन्हें संबोधन करके कहा—मैं आपको अपने कागज़-पत्र दिखलाना चाहता हूँ। अभी मैं उन्हें नहीं लाया। यदि आपको अवसर हो तो ले आऊँ?

रानाडे ने बड़ी नम्रता से उनसे कहा—जी नहीं, आज मुझे बहुत काम करना है। आप जाइए। जब मुझे अवसर होगा तब मैं आपको सूचना दूँगा।

इसके बाद प्रतिवादी वहाँ से उठकर चला गया। उसके चले जाने के बाद रानाडे ने नम्रतापूर्वक, परन्तु स्पष्ट शब्दों में अपने पिताजी से कहा—इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं है कि कोल्हापुर के सब लोग आपसे परिचित हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, इस शहर भर में एक भी आदमी ऐसा नहीं है जो आपको न जानता हो। ये सब के सब आप के यहाँ न्याय के विरुद्ध पैरवी करने की प्रार्थना करेंगे। आप कहाँ तक न्याय के विरुद्ध सब की पैरवी करेंगे। इस प्रकार तो मैं अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकूँगा। कृपया आप इस सम्बन्ध में विचार कीजिये, नहीं तो, विवश होकर मुझे यहाँ से अपनी बदली करानी पड़ेगी।

इस घटना के बाद भी रानाडे चार पाँच महीने तक कोल्हापुर में रहे, परन्तु फिर ऐसी कोई समस्या उनके सामने नहीं आई।

इन्हीं सब कारणों से लोग उन्हें न्यायमूर्ति रानाडे कहते हैं।

एक बार रानाडे, अपने सब मित्रों के साथ मद्रास की कांग्रेस में गये थे। इनके मित्रों में डाक्टर भाण्डारकर और गोखले भी थे। रानाडे और डाक्टर भांडारकर ने प्रथम दर्जे के टिकट लिए थे। अन्य सब मित्रों ने दूसरे दर्जे का टिकट लिया था। सोलापुर के स्टेशन पर रानाडे ने अपना सामान प्रथम

दर्जे की गाडी में छोड़ दिया और स्वयं अपने मित्रों से बात चीत करने के लिए दूसरे दर्जे की गाड़ी में चले गये । इसी बीच में एक अँगरेज़ अव्वल दर्जे की गाडी में आकर सवार होगया। उसने आकर रानाडे के सामान को दूर फेंकवा दिया और स्वय उनकी जगह पर बैठ गया और चैन की बंशी बजाने लगा।

जब रानाडे लौटे तब उन्होंने यह सब माजरा देखा। उन्हों ने उस अँगरेज़ से कुछ नहीं कहा। चुपचाप वह डाक्टर भांडार कर के पास जाकर बैठ गये। परन्तु इन दोनों सज्जनों के लिए सोने के लिए काफ़ी जगह न थी। इसलिए रात के समय इन्हें कष्ट का सामना करना पड़ा। रात के समय उस अँगरेज़ ने तो रानाडे के स्थान पर सोकर खुर्राटा लेना प्रारंभ कर दिया, परन्तु इन लोगों के ऊपर आफ़त आई । भाण्डारकर रानाडे से दुबले पतले थे। इसलिए वह कूद कर ऊपर के तख्ते पर चले गये और उनकी जगह पर रानाडे सो रहे। किसी प्रकार इन लोगों ने रात काटी ।

जब ये लोग पूना में पहुँच गये तब उस अँगरेज़ को किसी तरह से यह पता चल गया कि उसने हाइकोर्ट के जज, रानाडे के साथ बुरा वर्ताव किया है तथा उसने उनका अपमान किया है। अब उसकी नानी मरने लगी। वह क्षमा माँगने के लिए रानाडे की ओर दौड़ा। परन्तु रानाडे ने उसकी ओर अपनी

पीठ फेर दी और उसे क्षमा माँगने का अवसर ही नहीं दिया। वह भी हताश होकर लौट गया। वह भली भाँति जानता था कि यदि रानाडे उसके विरुद्ध मुकद्दमा चला देंगे तो वह किसी प्रकार से नहीं छूट सकता।

दूसर दिन मिस्टर गोखले ने इसी सम्बन्ध में रानाडे से पूछा—क्या आप इसे दंड न देंगे? क्या आप इसकी शिकायत सरकार से न करेंगे? क्या आप इसके ऊपर मुकद्दमा न चलाएँगे?

तब रानाडे ने कहा—मैं इस तरह की बातें पसंद नहीं करता। मैं उसकी शिकायत भी नहीं करना चाहता। मुकद्दमे में मैं एक बात कहूँगा और वह दूसरी बात कहेगा। इसके सिवाय यह कोई बड़ी भारी बात भी नहीं है जिसके लिए लड़ाई झगड़ा किया जावे।

रानाडे के इस कथन को गोखले ने सशंक दृष्टि से देखा। रानाडे भी उनका अभिप्राय समझ गये। उन्होंने गोखले से कहा—इसमें घबराने की कोई बात नहीं है। सब अँगरेज़ तो हम लोगों को जंगली आदमी समझते ही हैं। परन्तु हम लोगों की दशा तो इससे भी अधिक खराब है। हम लोग तो अपने भाइयों को जानवरों से भी खराब समझते हैं। कहो, क्या यह बात सच नहीं है?

गोखले ने रानाडे की इन सब बातों का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब रानाडे ने फिर कहा—क्या इन सब बातों में हम

लोगों का आचरण इससे अच्छा है ? आजकल हम लोग अछूतों के साथ कैसा बुरा बर्ताव कर रहे हैं ? इस समय देश के लिए आवश्यक है कि देश भर मिल कर काम करे। अब "अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग" अलापने का दिन गया। तथापि हम लोग अपने पुराने अधिकारों को नहीं छोड़ना चाहते। हम लोग अब भी कई जातियों को छूते भी नहीं। मैं पूछता हूँ कि क्या वे जानवरों से भी गये-गुज़रे हैं ? क्या अब भी हम लोग उन्हें अपने पैरों के नीचे कुचलते ही रहेंगे ? यदि हम लोगों की यह दशा है तो किस मुँह से हम लोग उस शासक अँगरेज जाति की शिकायत कर सकते हैं ? इसमें संदेह नहीं कि भारतीयों से अँगरेज घृणा करते हैं, परन्तु क्या एक भारतीय दूसरे से घृणा नहीं करता ?

इसमें तो लेशमात्र भी संदेह नहीं कि अँगरेजों के बुरे बर्ताव से हमें कई प्रकार के कष्ट हो रहे हैं। परन्तु इन कष्टों से भी हमें उपदेश ग्रहण करना चाहिए। हम लोग इन कष्टों से यही उपदेश ग्रहण कर सकते हैं कि हम अपने देश की उन्नति के लिए और भी अधिक परिश्रम, उद्योग और उत्साह के साथ काम करें।

रानाडे आर्यसमाजी नहीं थे परन्तु उनके विचार उदार अवश्य थे। इसलिए वे आर्यसमाज से सहानुभूति अवश्य करते थे। एक बार स्वामी दयानंद सरस्वती पूना में पहुँचे

गये। पूना में उन्होंने कई व्याख्यान दिये। कुछ लोगों ने उनका बड़ा आदर किया, परन्तु पूने की अधिक जनता उनसे बहुत चिढ़ी। जब दयानन्द सरस्वती पूना से जाने लगे तब उनके अनुयायियों ने उनका जलूस निकालने का विचार प्रकट किया। रानाडे भी उनके इस विचार से सहमत होगये और सफलता के साथ जलूस निकालने का विचार करने लगे। इतना ही नहीं, उन्होंने स्वयं इसका प्रबंध करना भी प्रारंभ कर दिया। रानाडे ने सब बातें तै कर दीं और जलूस संबंधी सब बातों का निश्चय कर दिया। दयानन्द सरस्वती के विरोधी दल को रानाडे के प्रबंध का पता चल गया। इन लोगों ने दयानन्द के अपमान करने का विचार पक्का कर लिया। इन लोगों ने उसी दिन "गर्दभानन्दाचार्य" की सवारी निकालने का निश्चय किया। अन्त में निश्चित दिन दोनों दलों ने अपनी अपनी सवारी निकाली। जब रानाडे को यह पता चला कि आर्यसमाज के विपक्षी लोग गर्दभानन्दाचार्य की भी उसी दिन सवारी निकालना चाहते हैं तब वे खिलखिला कर खूब हँसे। उन्होंने पुलिस के कुछ आदमियों का भी प्रबन्ध करा दिया और स्वयं भी दयानन्द की सवारी के साथ सम्मिलित हुए। इन्होंने दयानन्द सरस्वती का जलूस खूब शान के साथ निकाला। एक पालकी में वेद भगवान् रक्खे गये। उसके पीछे एक हाथी खड़ा किया गया और उस हाथी पर दयानन्द सरस्वती बैठा दिये गये। इधर विरोधी दल भी स्वामी दयानन्द सरस्वती के अप-

मान करने की तैयारी कर ही रहा था, उस समय तक यह भी ईंट तथा पत्थर के साथ वहाँ जुट गया।

पहले तो विरोधी दल ने खूब हल्ला मचाया परन्तु, जब इन लोगों ने देखा कि इस अस्त्र से कोई विशेष काम नहीं चल सकता, तब इन लोगों ने गाली-गलौज का बाज़ार गरम कर दिया। परन्तु इस मंत्र से भी विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई, तब इन लोगों ने जलूस के ऊपर कीचड़ फेंकना प्रारम्भ कर दिया। उस दिन इन लोगों के भाग्य से अच्छी वर्षा भी होगई थी। इसलिए इन लोगों को कीचड़ बना-बनाया तैयार मिल गया। कुछ कीचड़ सिपाहियों के ऊपर भी पड़ा, तब सिपाहियों ने जनता को पीटने का विचार किया, परन्तु रानाडे ने उनसे पहले ही कह दिया था कि जबतक हम न कहें, तबतक तुम लोग मारपीट मत करना। इसलिए सिपाहियों ने झगड़ा करने का साहस नहीं किया।

जब जलूस कुछ आगे बढ़ा तब उसके ऊपर ईंट, पत्थरों की वर्षा होने लगी। कुछ ईंटें रानाडे के भी लगीं। तब रानाडे ने सिपाहियों से इन लोगों को शान्ति के साथ वहाँ से भगा देने की आज्ञा दी और सिपाहियों ने ऐसा ही किया।

किसी तरह से जलूस सफलतापूर्वक निकल गया। जब रानाडे अपने घर पहुँचे तब उनके कपड़े कीचड़ से खराब हो गये थे। कुछ लोगों ने रानाडे से कहा—आपके पास तो इतने

सिपाही थे तब भी आपके कपड़े कैसे खराब हो गये ? क्या आप इन सबों पर मामला चलाएँगे ? तब रानाडे ने उत्तर दिया—भाई ! जब सभी पर कीचड़ पड़ा, तब मैं भी उन्हीं के साथ था, मुझ पर कीचड़ कैसे न पड़ता ? इसमें मुकदमा चलाने की कौन सी बात है ? इस तरह के काम तो ऐसे ही होते हैं। ऐसे कामों में मानापमान का विचार नहीं करना चाहिए।

रानाडे प्रातःकाल तथा संध्या समय हवा खाने के लिए प्रायः पैदल जाया करते थे। एक बार वे संध्या समय हवा खाने जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक स्त्री मिली। उसके पास लकड़ी का एक बड़ा गट्ठर भी रखा हुआ था। वो बड़ी देर से किसी मनुष्य की प्रतीक्षा कर रही थी, क्योंकि वह स्वयं अकेली उस बोझ को अपने सिर पर नहीं रख सकती थी। वह अपना बोझ किसी से उठवाना चाहती थी। उसने रानाडे को एक साधारण आदमी समझा। केवल वह पैदल ही नहीं चल रहे थे, किन्तु उनके वस्त्र भी साधारण थे। उसने रानाडे से कहा—बाबा ! मेरे इस बोझ को उठवा दे।

रानाडे ने बड़ी प्रसन्नता से उस बोझ को उठा कर उस स्त्री के सिर पर रख दिया। बोझ उठवा देने का यह दूसरा अवसर था, क्योंकि एक बार और इन्होंने घास के बोझ को उठवा दिया था।

सरलता तथा निराभिमानता के तो वे अवतार ही थे। घमंड तो उन्हें छू भी नहीं गया था। उस समय हाईकोर्ट का जज होना कोई साधारण बात नहीं थी। तथापि जो कोई उन से बातें करता था तब उसे यही पता चलता था कि रानाडे उससे छोटे हैं। उनके दिमाग में तो सादगी कूट कूट कर भरी थी। उनकी चाल-ढाल तथा पोशाक से तो पता ही नहीं चलता था कि वे कोई बड़े आदमी हैं। सन् १८९३ ई० में लाहौर की कांग्रेस में रानाडे भी गये थे। एकदिन डी० ए० वी० कालेज में बड़ी भारी सभा हुई थी। उसमें हारकादास ने एक महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया था। इस सभा में बहुत ही अधिक लोग सम्मिलित हुए थे।

इस सभा में रानाडे भी सम्मिलित हुए थे। परन्तु किसी को भी पता नहीं चला कि रानाडे भी इस सभा में मौजूद थे। वे एक कोने में बैठे हुए थे। परन्तु लाला लाजपतराय ने उन्हें देख लिया। उन्होंने कहा—"भाइयो! यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे सौभाग्य से रानाडे भी इस जलसे में मौजूद हैं। रानाडे वास्तव में उन महापुरुषों में से हैं जिनका भारत को गर्व है। यहाँ पर मैं इतना और कह देना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ कि रानाडे उन महापुरुषों में से हैं जिन्होंने स्वयं स्वामी दयानन्द सरस्वती को देखा था।"

तब जनता को रानाडे के यहाँ के अस्तित्व का पता चला और सब लोगों ने बड़ी प्रसन्नता से तालियाँ बजाई।

रानाडे के सामाजिक विचार

रानाडे का विचार था कि समाज में सुधारों की बड़ी आवश्यकता है। रानाडे ढोंग तो बिलकुल ही नहीं पसंद करते थे। मिशन की चायवाली कथा से रानाडे के सामाजिक विचारों का पता लगता है। इसस रानाडे के जीवन का एक घटना भी मालूम हो जायगी।

सन् १८९० ई० में पूना में मिशनरियों ने अपना एक विशेष उत्सव किया। इस उत्सव में पूना के अधिक लोग सम्मिलित हुए थे। उत्सव के बाद मिशनरियों ने सब लोगों से चाय पान की प्रार्थना की। परन्तु इस सभा में कई ऐसे सज्जन भी थे जो चाय पाना नहीं चाहते थे। बहुत लोग तो इसी सोच विचार में पड़ गये कि अब क्या करें। इसी समय अनाथा मिशन की औरतें चाय लिये निकल पड़ीं और लोगों को प्रेम पूर्वक देने लगीं। बहुत लोगों ने चाय को पी लिया। कुछ लोगों ने चाय के प्याले को तो अपने हाथों से छू लिया, परन्तु उसे पिया नहीं, उसे अलग ही रख दिया।

लोकमान्य तिलक, श्रीमान् गोखले और न्यायमूर्ति रानाडे भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए थ। रानाडे की धर्मपत्नी रमाबाई भी उस उत्सव में गई थीं। रानाडे ने प्याले को लेकर उसे अलग रख दिया और ऐसा ही उनकी धर्मपत्नी ने भी किया।

जब पूना के कट्टर ब्राह्मणों ने इस उत्सव तथा इस दुर्घटना के सम्बन्ध में सुना तब वे सब के सब क्रोधित हो गये।

इस सम्बन्ध में बहुत दिनों तक झगड़ा चलता रहा। कितने पण्डितों ने समझा कि इस कुकाण्ड से सनातन धर्म का दिवाला अवश्य ही निकल जायगा और कितनों ने समझा कि यदि शीघ्र ही ये लोग इसका प्रायश्चित न कर डालेंगे तो सनातनधर्म की नाक अवश्य ही कट जायगी। अन्त में धर्म के पुजारियों तथा ठेकेदारों ने इन लोगों को जातिच्युत कर दिया।

इतने ही से इन लोगों को सन्तोष नहीं हुआ। ये लोग इस पर और भी अधिक वाद-विवाद करते ही चले गये। अन्त में जब इन लोगों ने देखा कि उन लोगों के जातिच्युत करने से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ तब इन लोगों ने एक दूसरा ही नियम पास किया। वह नियम यह है—यदि ये लोग प्रायश्चित्त करले तो इन्हें जाति में मिला लिया जाय।

इसीके अनुसार बहुत लोगों ने प्रायश्चित्त कर लिया और वे जाति में भी मिल गये। परन्तु रानाडे तथा उनके अनेक मित्रों ने प्रायश्चित्त करना अस्वीकार कर दिया। इस कारण बहुत दिनों तक इन्हें लोगों ने जाति में शामिल नहीं किया। परन्तु रानाडे ने इन लोगों की कुछ भी परवा न की।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रायश्चित्त न करने के कारण रानाडे को कई तरह के कष्टों का सामना करना पड़ा। एक दिन इन्हीं

सब दुखों से तंग आकर रानाडे की बहिन ने उनसे कहा—भैया ! तुम भी प्रायश्चित्त क्यों नहीं कर लेते ? इसमें हानि ही क्या है ? तुमने भी तो प्याले को अवश्य ही छुआ था।

तब रानाडे ने हँस कर कहा—दुर्पगली ! चाय के प्याले के छूने में भी कहीं पाप या पुण्य लगता है ?

प्रायश्चित्त न करनेवालों की संख्या कम नहीं थी। प्रायश्चित्त न करने के कारण कितने पिता अपने पुत्र से तथा कितने भाई अपने भाई से अलग होगये। एक वृद्ध पिता ने अपने प्यारे पुत्र को प्रायश्चित्त न करने के कारण पृथक् कर दिया था। इधर पुत्र भी अलग ही अकड़े रहे थे। रानाडे को एक दिन पता चल गया कि वृद्ध पिता अपने पुत्र को जाति में लाने के लिए मर रहा है, उससे प्रायश्चित्त करने के लिए अनुनय विनय करता है और प्रतिदिन आँसू बहाता है। इस करुणाजनक दृश्य ने रानाडे के हृदय को मथ डाला और उन्हें यह बात अब असह्य हो गई। यदि स्वयं रानाडे के पिता ने इस सम्बन्ध में इतना ज़ोर दिया होता तो वे अवश्य ही प्रायश्चित्त कर डालते। ऐसी दशा में उन्होंने यही विचार किया कि पुत्र से प्रायश्चित्त करवा दें।

परन्तु वह पुत्र भी एक ही अड़ियल था, उसने रानाडे के लाख कहने पर भी प्रायश्चित्त करना अस्वीकार कर दिया। इसी सम्बन्ध में रानाडे से उसकी बड़ी देर तक बहस होती

रही। अन्त में उसने कहा, यदि आप प्रायश्चित्त करें तो मैं भी तैयार हूँ और मेरे सिवाय और लोग भी प्रायश्चित्त कर डालेंगे।

अन्त में रानाडे भी प्रायश्चित्त करने पर तैयार होगये और दूसरे ही दिन कई आदमियों के साथ उन्होने प्रायश्चित्त करा लिया।

रानाडे और विधवा-विवाह

रानाडे का विचार था कि विधवा विवाह अवश्य होना चाहिए। रानाडे ने एक बड़ा लम्बा चौड़ा लेख लिखा था। इसमें रानाडे ने अकाट्य प्रमाणों और प्रबल युक्तियों की सहायता से सिद्ध कर दिया था कि वेद में विधवा-विवाह करना लिखा है और शास्त्र भी इसका अनुमोदन करते हैं। बम्बई प्रांत में रानाडे ने विधवाओं के विवाह के लिए बहुत प्रयत्न किया। विधवाओं को देख कर रानाडे रोने लगते थे और बाल विधवाएँ तो उनके हृदय का विदीर्ण कर देती थीं। विधवा शब्द के सुनने से ही उनकी छाती फटने लगती थी और उनकी आँखों क सामने निराशा ताण्डव नृत्य करने लगती थी। इस महापुरुष ने अपनी मृत्यु शय्या पर से भी विधवा-विवाह क पक्ष का समर्थन किया था। परन्तु अवसर आने पर स्वयं रानाडे ने भी विधवा विवाह नहीं किया। कुछ लोगों ने तो इसके लिए रानाडे का कई बार कटु-

यत्न भी करे, परन्तु हम सब परिस्थितियों का विचार करके रानाडे को विशेष दोषी नहीं पाते।

सन् १८७३ ई० में रानाडे की धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। इस समय रानाडे की अवस्था ३१ वर्ष की थी। स्त्री के मरने के केवल एकही महीने के बाद रानाडे ने अपना दूसरा विवाह रमाबाई के साथ किया। इस पर बहुत लोग रानाडे पर विधवा से विवाह न करने का दोषारोपण करते हैं। वे कहते हैं कि पुरुष को जैसा कहना चाहिए, वैसा अवसर आने पर करना भी चाहिए। यदि रानाडे ने इस बार अपना विवाह एक विधवा से किया होता तो वे इस बात को सिद्ध कर सकते थे कि जैसा वह कहते हैं वैसा ही करते भी हैं।

विधवा-विवाह के संबंध में एक सभा हुई थी। रानाडे उसके सभापति थे। उसी सभा में एक सज्जन ने कहा—इस में तो कुछ भी संदेह नहीं कि रानाडे विधवा-विवाह का समर्थन करते हैं, परन्तु अवसर आने पर भी उन्होंने स्वयं वैसा क्यों नहीं किया? इन्होंने समाज में आदर्श स्थापित नहीं किया। इन्हीं रानाडे ने, जो आज इस सभा के सभापति हैं, इस संबंध में सब बातों को चौपट कर दिया।

अन्त में रानाडे ने कहा—मैं पिताजी की आज्ञा उल्लंघन नहीं कर सका। आप लोग मेरी दुर्बलता को क्षमा कर दीजिए और समाज-सुधार के प्रश्नों के संबंध में आगे बढ़िए।

लोगों का कहना है और स्वयं उनकी धर्मपत्नी रमाबाईजी ने भी इसी बात का समर्थन किया है कि पिता के भारी दबाव के कारण ही उन्होंने दूसरी शादी की थी। रानाडे के पिता विधवा-विवाह को बहुत बुरा समझते थे। वह यह भी डरते थे कि कहीं रानाडे किसी विधवा से विवाह न कर लें, इसलिए पहली स्त्री के मरने के थोड़े दिन बाद ही उन्होंने रानाडे के लिए कन्या का खोजना प्रारंभ कर दिया।

इसी संबंध में रानाडे ने अपने पिता से एक बार कहा था—पिताजी! क्षमा कीजिए। मैं अब विवाह नहीं करूँगा।

मेरी अवस्था इस समय लगभग ३२ वर्ष की है। इसलिए मैं अब छोटा नहीं हूँ। समझ में नहीं आता कि आप मेरे विवाह की इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं? मेरी छोटी बहिन दुर्गा की अवस्था इस समय शोचनीय है। वह २० वर्ष की अवस्था में ही विधवा हो गई थी। जब आप दुर्गा की कुछ भी चिन्ता नहीं करते तब समझ में नहीं आता कि आप मेरी इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं? कदाचित् आप डरते हैं कि मैं किसी विधवा से विवाह कर लूँगा, परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। मैं आपको वचन देता हूँ कि मैं ऐसा कभी नहीं करूँगा। आप इसकी चिन्ता न करें।

जब रमाबाई के पिता वर खोजने तथा देखने आये थे तब रानाडे ने उनसे कहा—मैं विधवा—विवाह का पक्षपाती हूँ और

इंगलैंड भी जाना चाहता हूँ। आप क्यों अपनी कन्या का मुझ से विवाह करना चाहते हैं ? इसमें संदेह नहीं कि मेरी आँखें और कान खराब हैं। और भी कई बातें मेरे विरुद्ध हैं। इन सब बातों को सोच कर अपनी कन्या का विवाह मेरे साथ कीजिएगा।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि रानाडे अपना विवाह नहीं करना चाहते थे। रानाडे के बम्बई के मित्र भी उन्हें यही सलाह दिया करते थे। परन्तु रानाडे के पिता चाहते थे कि वे अवश्य ही विवाह करलें। रानाडे ने अपने पिता के विचारों के बदलने का बार प्रयत्न किया, परन्तु उनका सब प्रयत्न निष्फल गया। क्योंकि उन्होंने रानाडे से स्पष्ट कह दिया—"बेटा ! मैं चाहता हूँ कि तुम मेरी बात मान लो। अगर तुम मेरी बात न मानोगे तो मैं करवीर चला जाऊँगा। आगे ईश्वर मालिक है।"

अन्त में रानाडे ने रमाबाई से विवाह कर लिया।

इसमें संदेह नहीं कि रानाडे समाज में सुधार अवश्य चाहते थे, परन्तु वे सामाजिक क्रान्ति के पक्षपाती नहीं थे। उन्होंने कई बार स्पष्ट रीति से कहा था कि वास्तविक उन्नति की गति सर्वदा मंद हुआ करती है। उनका विचार था कि बहुत से ऐसे उत्साही पुरुष होते हैं जो हजारों वर्ष का काम एक दिन में करना चाहते हैं। इस प्रकार के विचार, इच्छा तथा काम को रोकना चाहिए। सामाजिक प्रश्नों के संबंध में भी रानाडे विचार

सघाद के कायल थ। सामाजिक सुधार का अर्थ प्राचीन वातों की अवहेलना नहीं है। इसी प्रकार से इसका आशय सभी नवीन मतों का समर्थन करना भो नहीं है। सामाजिक प्रश्नों में प्राचीन और नवीन दोनों वातों का यथार्थ मिश्रण होना चाहिए।

रानाडे स्त्री शिक्षा के विरोधी नहीं थे और समुद्र-यात्रा को ठीक समझते थे। उनका विश्वास था कि स्मृतियों में बहुत सी वातें पाछे से घुसेड़ दी गई हैं और इनसे लाभ के बदले समाज की हानि हो रही है। रानाडे का विचार था कि गमी रतापूर्वक विचार करके इन प्राचीन नियमों को अब पलट देना चाहिए और इन के स्थान पर नवीन नियमों की स्थापना करनी चाहिए।

रानाडे बाल-विवाह को भारत के पतन का एक प्रधान कारण मानते थे। उनकी राय थी कि लड़कों का २६ और लड़कियों का विवाह १६ वर्ष की अवस्था में होना चाहिए।

इस अंश में रानाडे का प्रयत्न निष्फल नहीं गया, क्योंकि उनके प्रयत्नों के कारण मैसूर में बाल-विवाह के विरुद्ध क़ानून बन गया है और प्रायः अब सब लोग बाल-विवाह का घोर विरोध कर रहे हैं।

रानाडे ने एक बार सुधार तथा पुनरुद्धार नामक व्याख्यान दिया था। उसमें उन्होंने कहा था—बड़े बड़े कट्टर हिन्दू लोग

हम से प्रायः कहा करते हैं कि सामाजिक सुधारों के स्थान पर प्राचीन प्रथाओं का पुनरुद्धार होना चाहिए। मैं नहीं समझता कि हम लोग किन किन प्राचीन बातों को जीवित रखना चाहते हैं। यह भी समझ में नहीं आता कि प्राचीन काल से इन लोगों का क्या अभिप्राय है, वैदिक काल, स्मृति-काल, पौराणिक समय अथवा मुसलमानों का ज़माना ? जहाँ तक मैं समझता हूँ, हम लोगों की रीतियाँ क्रमशः उन्नति करती चली आई हैं। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम लोग किन किन बातों का पुनरुद्धार करना चाहते हैं ?

क्या हम लोग अपने उन पूर्वजों के काम को जीवित रखने का प्रयत्न करें जो सदा बुरे बुरे कामों में लगे रहते थे, मांस और मदिरा खाते थे और मादक द्रव्यों को भी पीते थे ? उस समय के मनुष्य तो ऐसी वस्तुओं का भी भोग लगाते थे जो वास्तव में अखाद्य कही जा सकती हैं। क्या हम लोग बारह तरह के लड़कों और आठ तरह के विवाहों को जीवित रक्खेंगे ?

इन आठ प्रकार के विवाहों में तो लड़की भगा ले जाना और अन्याय के साथ स्त्री-संसर्ग भी है। क्या हम लोग इन प्रथाओं को भी जारी रक्खेंगे ?

प्राचीन काल में ऋषियों और उनकी स्त्रियों ने विवाह सम्बन्ध को भी बहुत ढीला कर दिया था। क्या हम भी उस विवाह सम्बन्ध को उसी प्रकार ढीला कर देना चाहते हैं ?

क्या हम लोग उस बलिदान की प्रथा को फिर से जारी करेंगे जिसमें हजारों पशुओं की बलि चढ़ जाती है ? अथवा जिसमें देवताओं की प्रसन्नता के लिए स्वयं मनुष्यों का भी बलि प्रदान करना आवश्यक हो जाता है ?

क्या हम लोग शक्ति-पूजा का उद्धार करना चाहते हैं जो बहुत ही अधिक असम्भव और व्यभिचारपूर्ण थी ?

समझ में नहीं आता कि हम लोग किन किन प्राचीन प्रथाओं का पुनरुद्धार करना चाहते हैं ?

क्या हम लोग सती, बालहत्या, जीवित मनुष्यों को नदी में फेंक देना तथा हठ से किसी को आग में जला देने की प्रथा को जीवित रखना चाहते हैं ?

पहले तो एक स्त्री के बहुत पुरुष भी रहा करते थे । क्या हम लोग उसी प्रथा को फिर जारी करेंगे ?

रानाडे प्रायः भारत की सन्तानों पर आँसू बहाया करते थे। उनका विचार था कि हम लोगों में फूट, जन्म और कुल का ध्यान देना और ऊपरी नियमों को सब कुछ समझना आदि भारी दोष हैं ।

हम लोग अन्तःकरण की भीतरी बातों पर कम ध्यान देते हैं और ऊपरी नियमों तथा आचारों पर ही अधिक ध्यान देते हैं। हम लोग निश्चेष्ट होकर पाप-कर्म करते हैं और लौकिक उन्नति को तुच्छ समझते हैं और प्रायः हम लोग आलसी की

तरह दैव दैव पुकारा करते हैं और स्वयं पुरुषार्थ नहीं करते ।

रानाडे के विचार से हिन्दुओं में—विधवा विवाह प्रारम्भ करना, बाल-विवाह बंद करना, शराब आदि मादक द्रव्यों को न छूना, भिन्न भिन्न जातियों में परस्पर विवाह करना, अछूतोद्धार और शुद्धि होनी चाहिए।

रानाडे और उनकी धर्मपत्नी

जब रानाडे की अवस्था १२ वर्ष की हुई तब इनका विवाह मोरोपन्त दांडेकर की कन्या सखूबाई के साथ हुआ था। रानाडे ने इनके पढ़ने का अच्छा प्रबन्ध किया था। रानाडे की धर्मपत्नी सखूबाई बहुत ही अधिक सुशील तथा आज्ञाकारिणी थीं। इनका पातिव्रत धर्म प्रसिद्ध है। परन्तु इनका सन् १८७३ ई० में देहान्त हो गया। जब यह बीमार थीं तब रानाडे ने इनकी औषधि का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया था। उनकी मृत्यु से रानाडे को हार्दिक खेद हुआ।

यह लिखा ही जा चुका है कि फिर रानाडे का विवाह रमाबाई से किस प्रकार हुआ। जब रमाबाई का विवाह रानाडे से हुआ तब रमाबाई कुछ भी पढ़ी-लिखी नहीं थीं। परन्तु रानाडे ने उनके पढ़ाने का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। रानाडे स्वयं रात को उन्हें पढ़ाया करते थे और अध्यापक भी नियुक्त किया

था। इसका फल यह हुआ कि थोड़े ही समय में रमाबाई को मराठी भाषा का अच्छा ज्ञान हो गया।

अब रमाबाई को मराठी भाषा का ज्ञान होगया तब रानाडे ने उन्हें अङ्गरेज़ी भी पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। अङ्गरेज़ी में भी रमाबाई ने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

अब रमाबाई वास्तव में विदुषी हो गई और उनकी गणना सर्वश्रेष्ठ शिक्षाप्राप्त स्त्रियों में होने लगी। रमाबाई ने "हमारे जीवन की स्मृतियाँ" नामक ग्रंथ लिखा है।

इस ग्रंथ से रानाडे तथा रमाबाई की अनेक बातों का पता लगता है। मराठी भाषा में यह ग्रंथ अपने ढंग का एक ही है। रमाबाई को पढ़ने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। कभी कभी रानाडे की माता रमाबाई को बहुत झिड़क देती थीं। इसके सिवाय रानाडे की बहिन भी रमाबाई को पढ़ने लिखने के लिए तथा अन्य इसी प्रकार के बुरे कामों के लिए खूब कोसती थीं।

जब जब ननद-भौजाई अथवा सास-पतोहू का झगड़ा उग्र रूप धारण करता था तब तब रानाडे अपनी धर्मपत्नी रमाबाई को खूब समझाते और शान्त करते थे। कई बार ननद तथा सास ने रमाबाई को घर से बाहर निकलने के लिए झिड़का था।

इन सब तथा रानाडे के सम्बन्ध की और बातों के जानने के लिए रमाबाई द्वारा लिखित उक्त ग्रंथ को पढ़ना आवश्यक है। इसकी भूमिका गोखले ने लिखी थी।

कभी कभी तो अँगरेज़ी समाचारपत्रों के पढ़ने के कारण घर की स्त्रियाँ रमाबाई से बहुत ही अधिक क्रुद्ध हो जाया करती थीं और रमाबाई को ये सब बातें सहनी पड़ती थीं। कभी कभी घंटों रमाबाई को इन सब कारणों से रोना पड़ता था।

एक बार रमाबाई अँगरेज़ी समाचारपत्र हाथ में लेकर और उसे पढ़ती हुई अपने कमरे के बाहर चली आई। बस, यह बात रानाडे की बहिन को असह्य हो गई।

इस अवसर पर रानाडे की बहिन ने जिन वाग्-बाणों तथा तानों की वर्षा की उनका उल्लेख करना निरर्थक है। परन्तु उसका एकाध वाक्य उद्धृत करना आवश्यक जान पड़ता है। उन्होंने कहा—तुम्हारा आफ़िस ऊपर है। वहाँ पर खूब नाचो और पढ़ो।

एक बार पूना के हीराबाग़ में स्त्री और पुरुषों की एक सभा हुई। इस सभा ने सरकार से लड़कियों का एक स्कूल बनाने की प्रार्थना की। इस सभा में बम्बई के गवर्नर भी आये थे। उस सभा में अँगरेज़ी एड्रेस पढ़ने का भार रमाबाई को सौंपा गया। रानाडे ने भी इसे स्वीकार कर लिया और इसीके अनुसार रमाबाई ने इस एड्रेस को पुरुषों के सामने खड़ी होकर पढ़ सुनाया।

जब इस बात को रानाडे की ताई ने सुना तब वे आग-बबूला होगईं और उन्होंने रमाबाई को इस प्रकार खरी खरी सुनाई—

अब की स्त्रियों की तो बात ही निराली है। अब की स्त्रियाँ तो पुरुषों के सामने नाचने में भी नहीं शर्मातीं। पहले की स्त्रियाँ तो पुरुषों के सामने आने में भी लजाती रहीं। क्या करो, तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। समय ही ऐसा आगया है। पहले तो धार्मिक प्रयोजनों ही के लिए स्त्री पुरुष एकत्रित होते थे। पुराण सुनने के समय स्त्री और पुरुष दोनों एकत्रित अवश्य होते थे, परन्तु वहाँ भी वे एक साथ नहीं बैठते थे। अब तो औरतें मर्दों की भी नाक काट रही हैं और उनके साथ साथ कुर्सी पर बैठने में बिल्कुल नहीं शर्मातीं।

अब तो स्त्रियाँ भी पुरुषों की ही तरह पढ़ती-लिखती और सब कुछ करती हैं। तुम्हें क्या सूझी थी ? हज़ारों पुरुषों के बीच में खड़ी होकर अङ्गरेज़ी पढ़ने में तुम्हें लाज नहीं आई ? सच है पढ़ने-लिखने से औरतों की आँख का पानी उतर जाता है। स्त्रियों का तो रामायण बाँचना ही बहुत है। बेटी! बुरा न मानो, अब भी अङ्गरेज़ी पढ़ना छोड़ दो तो अच्छा हो। मुँह से तो कुछ बोलती ही नहीं। जब मैं घर में अधिक बिगड़ती हूँ तब तो यह कुछ बोलती ही नहीं, परन्तु बाहर जाकर कहाँ से इतनी ढिठाई सीख लेती है!

इसी प्रकार बुढ़ी और भी अधिक अनर्गल प्रलाप करती चली गई। इन सब बातों को सुनकर रमाबाई को भी बड़ा कष्ट हुआ। वह घन्टों रोती रहीं।

रात को सोने के समय रानाडे ने रमाबाई को हँसते हुए खूब समझाया था। उन्होंने कहा—कहो क्या माजरा है? आज तो अच्छी रहीं। परन्तु तुम्हें इस प्रकार रंज नहीं करना चाहिए, बल्कि तुम्हें तो और भी अधिक सहनशील होना चाहिए। चाहे वे जो कहें, तुम्हें कभी उनका जवाब नहीं देना चाहिए और उनकी बातों को चुपचाप सहना चाहिए। मैं यह बात भलीभाँति जानता हूँ कि इस प्रकार की बातों का सुनना और उसे चुपचाप सहना बड़ा कठिन है। परन्तु इसीमें बड़ाई है, इसीमें महत्ता है और इसीमें तुम्हारा परम कल्याण है। यह सहनशीलता भविष्य में तुम्हें बड़ा काम देगी और इससे तुम्हारा उपकार होगा।

इसीप्रकार रानाडे प्रायः रमाबाई को उपदेश दिया करते थे और रमाबाई रानाडे के कथनानुसार ही काम किया करती थीं। इसी आज्ञा के मानने के कारण थोड़े समय में ही रमाबाई की योग्यता बहुत-ही अधिक तथा विस्तृत हो गई था। अब तो रमाबाई प्रायः रानाडे को पढ़ने-लिखने के कामों में सहायता दिया करती थीं।

रानाडे के पास दक्षिण की बहुत पुस्तकें समालोचना के लिए आया करती थीं। उन्हें प्रायः अब रमाबाई ही पढ़ा करती तथा पढ़कर रानाडे को सुनाया करती थीं। इसके अनन्तर रानाडे के विचारों को स्वयं रमाबाई ही लिखा करती थीं। इस

प्रकार रमाबाई रानाडे को पढ़ने-लिखने में भी सहायता दिया करती थीं।

रानाडे अपने पास कभी भी रुपया नहीं रखते थे और जो कुछ पाते थे वह रमाबाई को ही दिया करते थे। रमाबाई नौकरों तथा घर के आय-व्यय का हिसाब रखती थीं। जिन चीज़ों की गृहस्थी में आवश्यकता होती थी, उन्हें स्वयं रमाबाई ही मँगाया करती थीं।

रानाडे के जीवन-काल ही में रमाबाई ने स्त्रियों के बीच में काम करना प्रारंभ कर दिया था। रमाबाई अब धीरे धीरे व्याख्यान भी देने लगी थीं। इनके व्याख्यान सारगर्भित और पाण्डित्य-पूर्ण हुआ करते थे। इसके बाद रमाबाई ने सभाओं का भी कार्य करना प्रारम्भ कर दिया और अवैतनिक मन्त्रिणी का भी काम किया था।

रानाडे के स्वर्गवास के समय रमाबाई को बड़ा कष्ट हुआ, परन्तु रानाडे के स्वर्गवास के बाद भी रमाबाई ने सामाजिक कामों का करना बंद नहीं किया। सन् १९०४ ई० में पूना में भारत-महिला-मण्डल का अधिवेशन हुआ था। उसमें रमाबाई ही प्रधान चुनी गई थीं। इसके अतिरिक्त रमाबाई ने कई बार प्रतिष्ठित सज्जनों तथा प्रकाण्ड विद्वानों के सामने बड़ी योग्यता तथा सफलता के साथ व्याख्यान दिया था। सन् १९११ ई० में उधर एक बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ गया था। दुर्भिक्ष के समय

रमाबाई ने बड़े परिश्रम से घूम घूम कर चंदा एकत्रित किया और दुर्भिक्ष-पीड़ित मनुष्यों की सहायता की।

सेवासदन के लिए रमाबाई ने बड़ा परिश्रम किया। कुछ दिन तो उसकी सारी व्यवस्था यही किया करती थीं। इसके सिवाय विधवाश्रम के लिए भी रमाबाई ने बड़े परिश्रम से काम किया था। रमाबाई की इन सेवाओं से प्रसन्न होकर सरकार ने सन् १९१३ ई० में उन्हें 'कैसरे हिन्द' की पदवी दी थी।

पाठक लोग जानते हैं कि रमाबाई ने पहले कुछ भी नहीं पढ़ा था। रमाबाई ने अपने मन में कहा कि सम्भव है मेरी तरह की स्त्रियाँ अब भी समाज में हों। इसलिए रमाबाई ने एक स्कूल ऐसी स्त्रियों के लिए खोल दिया जो अधिक अवस्था हो जाने के कारण अपढ़ रह जाती हैं। धीरे धीरे इस पाठशाला की उन्नति होती ही चली गई और उसमें सिलाई, बुनाई और रोगियों की सेवा आदि करना भी अब सिखाया जाता है। सन् १९११ ई० से दाई का काम भी सिखाया जाता है। अब उसमें गाने बजाने की शिक्षा भी दी जाती है। धीरे धीरे उसमें स्त्रियों को पढ़ाने के नियमों की भी शिक्षा दी जाने लगी और अबतक इस स्कूल से पढ़कर बहुत स्त्रियाँ अध्यापक बन गई हैं। इस संस्था की रमाबाई ने कई तरह से सहायता की है। कुछ दिनों तक उन्होंने अपना घर बिना किराये पर उसे दे दिया था। रमाबाई का अधिक समय देशोपकारक कार्मों में ही बीतता है।

न्यायमूर्ति महात्मा महादेवगोविन्द रानाडे का जीवन सदा अपने देश तथा जाति की उन्नति में ही लगा रहता था। रानाडे कहते कम थे, परन्तु करते अधिक थे। रानाडे ने अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य भारत की सन्तानों की भलाई मान लिया था। वे नाम के लोभ अथवा यश कमाने के विचार से देश-सेवा नहीं करते थे।

रानाडे ने देश की सब दशाओं का खूब अध्ययन किया था। वे भली भाँति यह भी जानते थे कि जबतक देश की कुरीतियाँ दूर न होंगी तबतक देश का कल्याण न होगा और भारतवासियों में चरित्रबल नहीं आवेगा। परन्तु उनका यह भी विचार था कि देश अभी सब सुधारों के लिए तैयार नहीं है। उनका यह विचार था कि बिना सामाजिक सुधारों के राजनैतिक सुधारों का होना असम्भव है। इसीलिए वे सामाजिक कुरीतियों के दूर करने की ओर अधिक ध्यान देते थे।

जिस प्रकार रानाडे सामाजिक सुधार चाहते थे, उसी तरह आप धार्मिक सुधार की आवश्यकता समझते थे।

रानाडे ने सम्पत्ति-शास्त्र का बहुत ही अच्छा अध्ययन किया था। इसलिए भारत की आर्थिक अवस्था की ओर भी उनका ध्यान गया था। रानाडे प्रायः कहा करते थे कि हमारे देश का शिल्प और वाणिज्य बिल्कुल नष्ट होता चला जाता है और आज भी कृषि की वही दशा है जो आज से हज़ार वर्ष पहले

थी। इन दशाओं में अवश्य ही अब उन्नति करनी चाहिए। शिल्प तथा व्यापार में उन्नति न होने के कारण ही लाखों भारतवासियों को भूखों मरना पड़ता है।

इसका मुख्य कारण यही है कि हमारे यहाँ के लोग कल-कारखानों की ओर ध्यान नहीं देते। भारत-वासी लोग मुख्य और आवश्यक वस्तुओं के होते हुए भी उनका उपयोग करना नहीं जानते।

राजनैतिक अधिकारों के प्राप्त करने की बात रानाडे सब से पीछे सोचते थे। उनका विचार था कि पहले अपना सुधार करना आवश्यक है। सन् १९०० ई० में सितारा की समाज-सुधारक-सभा में रानाडे ने स्पष्ट रूप से कह दिया था कि जबतक हम लोग अपनी जाति की कुरीतियों का सुधार न कर लेंगे तबतक राजनैतिक अधिकारों के प्राप्त करने की इच्छा व्यर्थ है। सामाजिक नियमों की भित्ति उदारता होनी चाहिए। सामाजिक नियमों के सुधार से ही आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक सुधार सम्भव हो सकते हैं।

रानाडे स्त्री-शिक्षा के बड़े पक्षपाती थे। वे कहा करते थे कि जबतक भारत में स्त्री शिक्षा का अधिक प्रचार न होगा तब तक उसकी दशा कभी सुधर ही नहीं सकती। जबतक मातायें शिक्षित न होंगी तबतक भारत का प्रश्न हल नहीं हो सकता।

रानाडे समुद्र-यात्रा का भी बुरा नहीं समझते थे। वे कहा करते थे कि प्राचीन काल में सब लोग प्रायः समुद्र-यात्रा किया

करते थे और अब भी सब लोगों को समुद्र-यात्रा अवश्य करनी चाहिए। इसमें समाज को किसी प्रकार की बाधा नहीं देनी चाहिए।

भारत में छूआ-छूत का खूब ज़ोर है और यहाँ की जातियों में कई प्रकार की विषमताएँ हैं। रानाडे इन सब बातों के बहुत ही अधिक विरुद्ध थे। वे कहा करते थे कि प्राचीन शास्त्रों में इन सब विभिन्नताओं का वर्णन नहीं मिलता। प्राचीन काल में भारत की जातियों में समानताएँ थीं।

हिन्दू धर्म और आस्तिकवाद पर रानाडे ने कई लेख लिखे थे। इन लेखों से रानाडे के प्रगाढ़ पाण्डित्य तथा विस्तृत अध्ययन का पता चलता है।

रानाडे कहा करते थे कि भारत एक कृषि-प्रधान देश है। इस देश के अधिकतर लोगों के जीवन का निर्वाह कृषि से हो रहा है। परन्तु वर्तमान समय में कृषि की बड़ी दुर्दशा है। इसी कारण भारत के कृषकों का पेट नहीं भरता। अमेरिका तथा यूरुप के कृषकों के दिन बड़े आनन्द से कटते हैं। रानाडे का विचार था कि यहाँ के कृषकों की दुर्दशा का एक प्रधान कारण शिक्षा का अभाव है। जो लोग पढ़े-लिखे हैं, वे खेती का काम करना ही पसंद नहीं करते। इसीलिए खेती में उन्नति नहीं होने पाती है। जो लोग कुछ भी विज्ञान नहीं जानते वे भला खेती के काम को कैसे कर सकते हैं!

खेती के सम्बन्ध में रानाडे सरकार को भी दोषी समझते थे। वे कहा करते थे कि सरकार को नियमानुसार कर्ता का कर लेना चाहिए और कृषकों को ही भूमि का अधिकारी बनाना चाहिए। यदि प्रतिवर्ष ज़मीन भिन्न भिन्न आदमियों को बेंची जाय तो इससे कृषि की उन्नति कदापि नहीं हो सकती। इसका फल यह होता है कि कृषक अपने खेत में जितना चाहिए उतना परिश्रम नहीं करता। वह तो भली भाँति जानता है कि ज़मीन दूसरे साल दूसरे के हाथ में अवश्य चली जायगी। यदि कृषि की सब बाधाएँ दूर की जायँ तो भारत फिर समृद्धिशाली हो सकता है।

रानाडे कहा करते थे कि समाज को सच्चरित्र बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वह ईश्वर पर विश्वास करे। वे कहा करते थे कि ईश्वर को अपने सब कामों का दर्शक मानने से मनुष्य का चरित्र ऊँचा हो सकता है।

विघ्न-बाधाओं को तो रानाडे कुछ गिनते ही नहीं थे। निम्नलिखित श्लोक रानाडे के सम्बन्ध में अक्षरशः चरितार्थ होता है—

> प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः।
> प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः॥
> विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः।
> प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति॥

रानाडे और उनके ग्रन्थ

रानाडे ने Rise of the Maratha Power (महाराष्ट्र का उत्थान) नामक एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है। इस पुस्तक से उनके ऐतिहासिक ज्ञान तथा उनके हृदय का बहुत अच्छा परिचय मिलता है। यह पुस्तक मराठों का सर्वाङ्गसुन्दर एकजातीय इतिहास है। इस पुस्तक में रानाडे ने उन सब गलतियों का भी सुधार कर दिया है जो ग्राट डफ साहब ने अपना पुस्तक में की थीं। परन्तु खेद है कि रानाडे इसे पूरा नहीं कर सके और यह पुस्तक अभी तक अपूर्ण ही है।

रानाडे के इतिहास में कई विशेषतायें हैं जो प्रायः अँगरेज़ इतिहास-लेखकों में नहीं पाई जातीं। इसमें रानाडे ने सिद्ध कर दिया है कि अँगरेज़ी राज से पहले मराठों का राज्य प्रबन्ध बहुत अच्छा था। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया है कि शिवाजी लुटेरे नहीं थे, किन्तु वे वास्तव में एक सच्चे देशभक्त गो और ब्राह्मणों के रक्षक थे। देशभक्ति क विचार से इस ग्रंथ का महत्व बहुत अधिक है।

रानाडे प्रायः लेख लिख कर कई पत्र और पत्रिकाओं में भेजा करते थे। वे संपत्ति-शास्त्र, राजनीति शिल्प और वाणिज्य, सामाजिक सुधार, धर्म, दर्शन इतिहास तथा पुरातत्व आदि सभी विषयों पर गंभीर लेख लिखा करते थ।

लोगों का विचार है कि यदि रानाडे के सब लेखा का संग्रह किया जाय तो कई पुस्तकें बन जायँगी।

इसके अतिरिक्त रानाडे के कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रत्येक ग्रंथ से उनके विस्तृत अध्ययन तथा अगाध पाण्डित्य और उदार हृदय का पता चलता है। इनकी पुस्तकों में से एक विधवा विवाह से संबंध रखती है। इसमें इन्होंने प्राचीन प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि विधवा विवाह होना चाहिए। जब यह ग्रंथ निकला था तब भारत में हलचल मच गई थी। इस संबन्ध में खूब वाद विवाद हुआ और इसका फल यह हुआ कि रानाडे के जीवनकाल ही में कई विधवा विवाह होगये।

इन्होंने भारतीय अर्थशास्त्र नामक एक बहुत ही प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा है। इसमें रानाडे ने सिद्ध कर दिया है कि भारत में अबाधवाणिज्य-नीति का प्रचार करना भारत के वाणिज्य को चौपट करना है। रानाडे ने भलीभांति समझ लिया था कि जबतक भारत में वाणिज्य की उन्नति नहीं होगी, तबतक देश का कल्याण न होगा। इसीलिए रानाडे ने पहले तो कांग्रेस में ही इस प्रस्ताव के लिए आन्दोलन किया, परन्तु इसका कोई विशेष फल नहीं हुआ, क्योंकि कांग्रेस उन दिनों अपने को केवल एक राजनैतिक जन्तु समझती थी और कवल व्याख्यानों पर ही संतोष करती थी। इसलिए रानाडे ने पूना में एक शिल्प-समिति खोली और प्रतिवर्ष उसका अधिवेशन

करना प्रारंभ कर दिया । इन अधिवेशनों में रानाडे अपने महत्त्वपूर्ण लेख पढ़ा करते थे ।

जिन लोगों को कांग्रेस का इतिहास मालूम है वे भली भाँति जानते हैं कि भारतीय जातीय कांग्रेस के जन्मदाता ह्यूम साहब ही कहलाते हैं और इसमें तो लेशमात्र भी संदेह नहीं कि उन्होंने कांग्रेस की स्थापना अवश्य की और प्रारंभ में कांग्रेस की बड़ी सहायता की । बहुत लोगों का विचार है कि रानाडे के कहने से ही ह्यूम साहब के दिमाग में कांग्रेस की स्थापना करने की बात आई । जो हो, इसमें तो लेशमात्र भी संदेह नहीं कि ह्यूम साहब, रानाडे को "गुरुमहाराज" कहा करते थे। कांग्रेस में रानाडे ने सदा ही भाग लिया और वे सदा कांग्रेस की विषय निर्धारिणी सभा के सदस्य रहे थे। कांग्रेस के अधिवेशनों में प्रायः वे सभापति के दाहिनी ओर की कुर्सी पर बैठा करते थे। एक बार ह्यूम साहब ने रानाडे के बारे में कहा था—

यदि भारत में कोई एक ऐसा व्यक्ति है, जो रात दिन भारत के बारे में ही सोचा करता है, तो वह मिस्टर रानाडे हैं।

रानाडे और स्वदेशी

सच्चे स्वदेशी के जन्मदाता भी रानाडे ही हैं । उन्होंने सबसे पहले विदेशी वस्तुओं के बायकाट करने की सम्मति दी

थी। उन्हीं के कहने से गोखले ने स्वदेशी के प्रचार करने का बीड़ा उठाया था। गोखले ने बहुत लोगों से इस बात का संकल्प करवाया कि हम अब केवल स्वदेशी वस्तुओं को ही खरीदेंगे। इसी सम्बन्ध में गोखले ने एक प्रतिज्ञा-पत्र छपवाया था और उस पर बहुत लोगों से हस्ताक्षर करवाये थे। इन सब बातों से स्पष्ट है कि स्वदेशी-आन्दोलन के जन्मदाता रानाडे महोदय ही हैं।

लोगों का कथन है कि रानाडे ने समाज-सेवा में बड़ा काम किया और महाराष्ट्र देश में जान डाल दी। इसमें सन्देह नहीं कि इनके पहले दादाभाई नौरोजी ने ही रानाडे के पथ-प्रदर्शक का काम किया था, तथापि रानाडे की समाज-सेवा बड़ी प्रशंसनीय है। रानाडे की प्रतिभा किसी एक ही सुधार की ओर नहीं लग गई थी किन्तु उन्होंने सब अंगों की उन्नति की ओर अधिक ध्यान दिया था। रानाडे का ३० या ३२ सभाओं से घनिष्ट सम्बन्ध था। इसी से पता चलता है कि उनके कार्य का क्षेत्र कितना विस्तृत था। इन सभाओं में केवल उनका नाममात्र ही नहीं लिखा था, वरन् इनमें से अधिक सभाओं के तो ये प्राणस्वरूप ही थे। इनमें से कुछ सभाओं की तो स्वयं इन्होंने स्थापना भी की थी।

रानाडे और कुटे का विरोध

जिन लोगों ने भारत के वर्तमान इतिहास का अध्ययन

किया है उन्हें पता है कि सन् १८८५ ई० में लार्ड रिपन ने भारत-वासियों को स्थानीय शासन का कुछ भार सौंपा था। इसी सम्बन्ध में चुङ्गी का प्रश्न छिड़ा और इसी सम्बन्ध में रानाडे और कुंटे में मतभेद होगया। यहाँ पर इतना और लिख देना आवश्यक जान पड़ता है कि कुंटे और रानाडे दोनों परम मित्र थे और एक साथ पढ़े भी थे। रानाडे इस बात की कोशिश कर रहे थे कि इस चुनाव में अधिक संख्या हिन्दुस्तानियों की हो और कुंटे महोदय अँगरेज़ी अफ़सरों को ही चुनने तथा चुनवाने के प्रयत्न में लगे थे। कुंटे की यह कार्रवाई रानाडे को नहीं जँची और एक दिन रानाडे ने कुंटे का इसीलिए तिरस्कार भी किया। रानाडे ने कहा—इस चुनाव में इस देश के रहनेवालों की संख्या ही अधिक होनी चाहिए। रानाडे ने इसी संबंध में और भी बातें कुंटे से कीं। इस पर कुंटे महोदय बिगड़ खड़े हुए और भारतवासियों की जड़ खोदना प्रारंभ कर दिया। अब क्या था, कुंटे ने भारतवासियों के विरुद्ध लेक्चर झाड़ना और सब तरह देशी सभासदों के चुनाव में रोड़ा अटकाना शुरू कर दिया। इसी तरह पूना में दिन कटने लगे और गाली-गलौज का बाज़ार गर्म होगया।

रानाडे ने अपने मन में सोचा कि यदि इसी तरह से बात बनी रहेगी तो सब अँगरेज़ लोग हम पर हँसेंगे और कहने लगेंगे कि भारतवासी लोग स्थानीय प्रबंध भी नहीं कर सकते।

अब रानाडे इस बात का प्रयत्न करने लगे कि किसी प्रकार से इस झगड़े का अन्त हो। परन्तु कुण्टे महोदय झगड़ा करने पर तुले हुए थे और कोई बात सुनते ही नहीं थे।

कुण्टे प्रायः सभा किया करते थे और उसमें रानाडे की निन्दा तथा उनके ऊपर वाग्बाणों की वर्षा भी किया करते थे। एक दिन कुण्टे ने एक बड़ी भारी सभा की। रानाडे ने इस झगड़े के अन्त करने का दूसरा ही उपाय सोचा।

रानाडे भी कुण्टे की सभा में चले गये। कुण्टे ने आज भी रानाडे को चुन चुन कर कुछ शब्द सुनाये। वक्तृता देने के बाद कुंटे चुपचाप बैठ गये। अब रानाडे उनके पास चले गये परन्तु कुण्टे ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। अब रानाडे कुण्टे के और भी अधिक पास चले गये। सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु कुण्टे महोदय की आँखें अभी तनी ही थीं। सभा के अन्त में रानाडे ने कुण्टे महोदय को घेर लिया और आदरपूर्वक उनसे बातें करना प्रारंभ कर दिया। अब भी कुण्टे महोदय रानाडे पर क्रुद्ध थे।

अन्त में रानाडे ने कुण्टे महोदय से अपनी गाड़ी में चलने की प्रार्थना की, परन्तु कुण्टे महोदय ने रानाडे की गाड़ी में चढ़ना अस्वीकार कर दिया। इस पर भी रानाडे ने बुरा नहीं माना।

जब कुण्टे अपनी गाड़ी में सवार होने लगे तब रानाडे भी उसी गाड़ी पर यह कह कर चढ़ गये—यदि आप मेरी गाड़ी पर न चलेंगे तो मैं ही आपकी गाड़ी पर चलूँगा।

अब ये दोनों लँगोटिया यार हवा खाने कुण्टे की गाड़ी पर चले गये। रानाडे ने बड़ी शान्ति तथा बुद्धिमत्ता के साथ कुण्टे को सब बातें समझाईं। अन्त में कुण्टे ने रानाडे की बातों को मान लिया और सरकारी अफ़सरों के चुनाव का पक्ष लेना छोड़ दिया।

रानाडे के धार्मिक विचार

रानाडे वास्तव में बड़े स्वतन्त्र विचार के मनुष्य थ। वे किसी भी पुस्तक को ईश्वर-कृत नहीं मानते थे। वे कहा करते थ कि ईश्वर लोक के कल्याण के लिए महापुरुषों को इस संसार में भेजता है और वे लोग संसार में आकर पुस्तकों की रचना करते हैं। अतएव ये सब ग्रन्थ ईश्वर-कृत नहीं कहे जा सकते।

रानाडे का यह भी विश्वास था कि संसार में ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिन्हें हम लोगों की परिमित बुद्धि हल कर ही नहीं सकती। संसार की उत्पत्ति, ईश्वर और उसकी सृष्टि आदि ऐसे ही विषय हैं।

रानाडे एक प्रकार के संशयवादी भी थ। पापों की उत्पत्ति के विषय में उनका विचार संशयवादियों की तरह था।

रानाडे प्रार्थना-समाज और आर्यसमाज को एक में मिलाने का प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु उन्हें इस काम में सफलता नहीं हुई।

रानाडे चमत्कार तथा अद्भुत कार्यों में भी विश्वास नहीं करते थे। उनका विचार था कि प्रायः चमत्कारों के कारण हम लोगों की बुद्धि में भ्रम हो सकता है। वे कहा करते थे कि प्रकृति के नियम अखंड हैं, वे तिल भर भी नहीं टूट सकते।

रानाडे प्रायः कहा करते थे कि मनुष्य अपने प्रयत्न से ही मोक्ष पा सकता है। इस प्रश्न में किसी के बीच में पड़ने की ज़रूरत नहीं रहती। बहुत धर्मों में एक मध्यस्थ की आवश्यकता बतलाई गई है। परन्तु मैं नहीं समझता कि मेरे उद्धार का प्रयत्न दूसरा कैसे कर सकता है?

अन्त में हमें अपने प्रयत्नों पर ही भरोसा करना पड़ेगा। कोई भी ठेकेदार दूसरे के मोक्ष को कभी नहीं खरीद सकता।

रानाडे के धार्मिक विश्वासों के जानने के लिए उनके उस लेख के पढ़ने की आवश्यकता है जो उन्होंने प्रार्थनासमाज के सम्बन्ध में लिखा था।

रानाडे कहा करते थे कि मूर्ति-पूजा से मनुष्य के उच्च विश्वास एक दम नष्ट हो जाते हैं। बहुत लोग समझते हैं कि दक्षिण के महात्मा लोग मूर्तिपूजक थे, परन्तु यह उनकी भूल है। इन महात्माओं ने पत्थरों की पूजा कभी नहीं की। वेदकाल में मूर्ति-पूजा का नाम भी नहीं पाया जाता। अवतारवाद के

साथ ही-साथ मूर्ति-पूजा का भी प्रारम्भ हुआ। बुद्ध और जैन धर्मावलम्बी अपने सिद्धों और साधुओं की पूजा किया करते थे, उन्हीं की देखा-देखी इस लयड़धोंधों का प्रचार भारत में भी सब जगह फैल गया। रानाडे अवतारों में भी विश्वास नहीं करते थे।

रानाडे की शारीरिक अवस्था

रानाडे पढ़ने-लिखने में इतने लगे रहते थे कि वे अपने स्वास्थ्य का ध्यान भी न रखते थे। यदि रानाडे ने अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिया होता तो वे और भी अधिक दिन तक इस संसार में रहते, इससे अधिक पुस्तकें लिखते और भारत का अधिक कल्याण कर सकते। स्वास्थ्य की अवहेलना करने के कारण उनकी आँखें भी खराब हो गई थीं। जब वे वकालत की परीक्षा के लिए तैयारी कर रहे थे, तब उनकी आँखें बहुत खराब हो गई थीं। डाक्टरों ने उन्हें पढ़ना बन्द कर देने की राय दी। इसलिए उन्होंने पढ़ना भी बन्द कर दिया था, परन्तु दूसरे विद्यार्थी पढ़ते थे और यह सुना करते थे। इतना होने पर भी यह परीक्षा में आनर के साथ पास होगये थे।

वे अपने जीवन में कई बार बहुत बीमार पड़ गये थे। कभी कभी तो उन की अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो जाया करती थी। सन् १८६३ ई० में भी एक बार आप बहुत बीमार पड़ गये थे। जब यह बीमार थे तभी गवर्नर के यहाँ से इनके हाइकोर्ट

के जज के पद पर नियुक्त होने का समाचार आया था। परन्तु इनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमाबाई ने इस समाचार को इनसे पहले दिन छिपा रक्खा। उन्होंने समझा कि ऐसी दशा में यह सुखद समाचार कदाचित् उनके हृदय पर आघात पहुँचावे। जब इनकी अवस्था कुछ अच्छी हुई तब रमाबाई ने यह समाचार उन्हें सुनाया। लोगों का कथन है कि इस समाचार का रानाडे पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। महादेव गोविन्द रानाडे एक महापुरुष थे। उन्हें सांसारिक सुख-दुःख में सम रहना भली भाँति आता था।

सन् १८९२ ई० से ही रानाडे पर बीमारी का प्रभाव पड़ने लगा था। सन् १९०० ई० में इस बीमारी ने बड़ा ही उग्र रूप धारण कर लिया। अब इन्हें पेंठन का दौरा तंग करने लगा। प्रतिदिन इन्हें नौ-दस बजे रात के बाद सिर में दर्द तथा बेचैनी होने लगी। डाक्टरों ने सम्मति दी कि ऐसी बीमारियों में आराम की आवश्यकता होती है। इसलिए इन्होंने एक महीने की छुट्टी ली और उन स्थानों में जाकर विश्राम करना प्रारंभ कर दिया जहाँ की जल-वायु ऐसे रोगों के लिए अच्छी समझी जाती थी। इन्हें ऐसा करने से आराम भी मिला।

इसके बाद रानाडे फिर बम्बई चले आये और अपना काम करना प्रारंभ कर दिया। इस समय उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमाबाई उनकी बड़ी सेवा करती थीं।

रानाडे और गोखले

रानाडे के जीवन का प्रभाव तिलक और गोखले दोनों नेताओं पर बहुत पड़ा था। एक प्रकार से रानाडे ही तिलक और गोखले के राजनैतिक गुरु हैं। दोनों नेताओं ने उनकी बड़ी प्रशंसा की थी।

गोखले ने लिखा था—"सन् १८९७ ई० में अमरावती में कांग्रेस हुई थी। उसमें मैं रानाडे के साथ गया था। जब मैं अमरावती कांग्रेस से लौटा तब रानाडे के यहाँ ठहरा था। यहीं पर महापुरुष रानाडे ने मुझे तुकाराम का एक भजन सुनाया। परमेश्वर! उनकी आवाज़ कितनी संगीतमय थी!! इस संगीत का मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। मुझे ऐसा मालूम होता था कि कोई आदमी मेरे शरीर में बिजली का प्रवेश कर रहा है।"

रानाडे और लाहौर की कांग्रेस

सन् १९०० ई० में रानाडे बीमार पड़े थे, तथापि वह कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए लाहौर जाने का विचार कर रहे थ। रानाडे सभी कांग्रेसों में सम्मिलित हुए थे, इसलिए बीमार होने पर भी वे कांग्रेस में अवश्य ही सम्मिलित होना चाहते थे। गोखले ने भी इनके साथ कांग्रेस में चलने के लिए लिखा था। उसी के अनुसार वे कई और नेताओं के

साथ रानाडे के यहाँ प्रातःकाल ही बम्बई पहुँच गये।
परन्तु जब वे यहाँ आये तब ये महापुरुष अपनी बीमारी से
लड़ रहा था और बीमारी ने उसे खाट पर पटक दिया
था। उसी दिन रानाडे, गोखले आदि अनेक नेताओं से
बातें करते रहे और दोपहर को बिल्कुल आराम नहीं किया।
अन्त में रानाडे ने लाहौर-कांग्रेस में चलने का निश्चय कर
लिया। परन्तु संध्या समय उनकी बीमारी और भी अधिक
होने लगी और उनकी धर्मपत्नी रमाबाई उनसे न आने के लिए
अनुरोध करने लगीं। गोखले आदि अन्य नेताओं ने भी
लाहौर न आने का उनसे अनुरोध किया। इसी समय वे
डाक्टर-साहब भी आ गये जो रानाडे की औषधि करते थे। उन्हों
ने भी रानाडे को लाहौर आने के लिए मना कर दिया। अब
रानाडे की मुखाकृति उदास हो गई। उन्होंने गोखले से कहा—
अब कहो क्या किया जाय? गोखले ने कहा—इस संबंध में
डाक्टर साहब की सम्मति स्वीकार करना ही अच्छा है। जैसा
कहिए वैसा मैं कांग्रेस में जाकर करूँ।

तब रानाडे ने कहा—"अच्छा हाँ, अबकी कांग्रेस में तुम्हीं
मेरी ओर से भी काम करो। बहुत ही शीघ्र मैं इस संसार से
उठ जाऊँगा। मेरे मरने के बाद, तो तुम्हें यह काम करना ही
है।' अन्त में सब लोगों ने यही निश्चय किया कि रानाडे
लाहौर न आयें। रानाडे ने भी इस बात को स्वीकार कर
लिया। परन्तु उन्हें इस बात से बहुत ही अधिक कष्ट पहुँचा।

और उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। उन्होंने थोड़ी देर के बाद कहा—काँग्रेस में सम्मिलित न होने का आज यह मेरा पहला ही अवसर है।

इसके बाद रानाडे ने गोखले को, कांग्रेस के सबंध में बहुत कुछ समझाया और उन्हें उस लेख को भी दे दिया जिसे उन्होंने काँग्रेस के लिए लिखा था। गोखले काँग्रेस में चले गये। यहाँ जाकर उन्होंने काँग्रेस में स्वयं व्याख्यान दिया तथा रानाडे के पत्र को भी पढ़ा। रानाडे का पत्र वास्तव में बहुत ही अधिक पाण्डित्य-पूर्ण तथा विशद था। रानाडे ने भी गोखले तथा चंदावरकर के उन व्याख्यानों का, जो हम लोगों ने कांग्रेस में दिये थ, समाचारपत्रों में पढ़ा। तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने शीघ्रही गोखले का निम्नलिखित आशय का एक पत्र लिखा—"प्यारे गोखले ! समाचारपत्रों में तुम्हारे व्याख्यान को पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम भविष्य में भारत का भार उठा सकोगे। एक प्रकार से मैं भारत के भविष्य के सबंध में चिन्तित रहा करता था, परन्तु अब मेरा वह चिन्ता बहुत कम हो गई।"

लगभग इसी आशय का एक पत्र रानाडे ने चंदावरकर को भी लिखा था।

रानाडे लाहौर की कांग्रेस में नहीं जा सके और डाक्टरों के कथनानुसार उन्होंने लोनावले में ही रहना अधिक उचित

समझा। लोनावले हवा खाने की जगह है, परन्तु जाड़े में वहाँ बहुत ही अधिक जाड़ा पड़ता है। इसलिए यहाँ की जलवायु भी रानाडे के अनुकूल नहीं समझी गई। वास्तव में इनका स्वास्थ्य यहाँ और भी अधिक खराब हो गया था। इसलिए इन्हें फिर बम्बई लौट जाना पड़ा। बम्बई में इनका स्वास्थ्य सुधरने लगा। यहाँ आने पर डाक्टरों ने इन्हें पूर्ण रीति से विश्राम करने की सम्मति दी।

इसी के अनुसार रानाडे ने सरकारी नौकरी से ६ महीने की छुट्टी लेली। अब रानाडे ने टहलना भी प्रारंभ कर दिया, परन्तु बीमारी की दशा में भी ये कुछ-न-कुछ पढ़ा ही करते थे। रानाडे के एक विधवा बहिन थीं। इन्हें ये अपनी माता की तरह मानते थे और उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देते थे। वे भी इन्हें बहुत चाहती थीं। एक दिन उनकी बहिन ने उनसे कहा—"भाई! अब पढ़ना बंद कर दो। इससे तो बड़ी हानि हो रही है। यदि आप पढ़ना लिखना बंद करदें और महाबलेश्वर चल कर रहें तो आप शीघ्र ही अच्छे हो जायँगे।"

तब रानाडे ने उनको इस प्रकार उत्तर दिया—क्या तुम समझती हो कि मैं स्वयं इस रोग के बढ़ाने की चेष्टा कर रहा हूँ? वास्तव में ऐसी बात नहीं है। मैं भली भाँति जानता हूँ कि इन सब दवाइयों से कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता

तथापि तुम लोगों के कहने से दवाइ पीलेता हूँ। यदि काम करते करते मनुष्य मर जाय तो यह अच्छा ही है।

१६ जनवरी सन् १६०१ ई० का रानाडे की तबीयत बहुत अच्छी थी। आज एक मील तक बाहर टहलने के लिए भी गये थे। उनकी मुखाकृति से भी यही पता चलता था कि अब रानाडे अच्छे हो रहे हैं। परन्तु इसी समय उन्होंने कान्तिचन्द्र मुकर्जी की मृत्यु का समाचार सुना। एक बार कान्तिचन्द्र मुकर्जी ने भी रानाडे के साथ काम किया था। इस समय पहले की सारी स्मृतियाँ रानाडे को स्मरण हो आई। अपने एक सहयोगी की मृत्यु पर उन्होंने खेद प्रकट किया। इसके बाद उन्होंने कई पत्र लिखवाये। इस समय उनकी धर्म पत्नीजी भी यहीं थीं। उन्हें इन्होंने बहुत समझाया और फिर पुस्तक पढ़वाकर सुनने लगे।

इसी समय कुछ लोग इनसे विधवा-विवाह के सम्बन्ध में इनकी सम्मति लेने के लिए आगए। डाक्टरों तथा इनकी धर्म-पत्नी की राय हुई कि इस समय उन्हें अधिक नहीं बोलना चाहिए। परन्तु रानाडे ने किसी की एक न सुनी। उन्होंने इन लोगों को बुलवा लिया और उनसे बातचीत करना प्रारंभ कर दिया।

माटियों की जाति में दूसरे दिन विधवा विवाह होने वाला था। उस जाति में यह पहला ही विधवा विवाह होने जा रहा

था। परन्तु इसमें विधवा-विवाह के विपक्षी लोग भी खूब आन्दोलन कर रहे थे और रानाडे विधवा-विवाह के पक्ष में थे। इसमें संदेह नहीं कि रानाडे सरलता तथा सादगी पसन्द करते थे तथापि उन्होंने उन लोगों को इस विवाह का खूब धूम-धाम से करने का उपदेश दिया। रानाडे बहुत विषयों पर उन लोगों से बातें करते रहे। अन्त में उन लोगों ने रानाडे से कहा—यदि इस अवसर पर गवर्नर की धर्मपत्नीजी को निमंत्रित किया जाय तो कैसी बात हो?

इसके उत्तर में रानाडे ने कहा—अवश्य, अवश्य, उन्हें अवश्य ही निमंत्रित करना चाहिए, यह तो बड़ा अच्छा काम होगा। इसके बाद इन लोगों ने रानाडे की धर्मपत्नी रमाबाई से ही गवर्नर की स्त्री को निमंत्रित करने की प्रार्थना की।

इस समय रमाबाईजी क्षण भर भी रानाडे के पास से अलग नहीं रहना चाहती थीं, क्योंकि इस समय उनका हृदय बहुत ही अधिक व्याकुल हो रहा था और उनके मन में बुरी बुरी चिन्ताएँ उठ रही थीं।

रानाडे ने उनके धर्म-संकट को ताड़ लिया, उन्होंने कहा—हाँ, इतना काम अवश्य कर दो। यह एक बड़े धर्म का, एक जीवन के उद्धार का काम है।

तब रमाबाई ने कहा—अच्छा! यदि आपकी तबीयत ठीक रहेगी तो मैं ऐसा ही करूँगी।

इसके बाद भी रानाडे ने उन लोगों से उस विवाह के संबंध में भाँति भाँति की बातें कीं। उन लोगों के चले जाने के बाद रानाडे ने भोजन किया। इसके बाद रमाबाई ने प्रार्थना की पुस्तक का पाठ उन्हें सुनाना प्रारंभ कर दिया।

इसके बाद रानाडे के शरीर में दर्द होने लगा। उन्होंने सोने का व्यर्थ तथा निष्फल प्रयत्न किया। अन्त में उन्होंने कहा—"मेरे हृदय में दर्द हो रहा है"। थोड़ी देर के बाद उनके इस दर्द ने बड़ा ही उग्र रूप धारण किया और उन्हें असह्य वेदना होने लगी। रमाबाईजी की दशा तो इस समय और भी अधिक शोचनीय हो गई थी। मालूम होता था कि वह पागल हो जायँगी।

इसी समय रानाडे के मुँह से अकस्मात् ये शब्द निकल गये—इस दर्द से तो मरना ही अच्छा है।

इसी समय डाक्टरों को खबर दी गई। क्षण भर में कई डाक्टर आगये। इन लोगों ने इनकी दशा देखी और औषधि का विधान करना प्रारंभ कर दिया। अब रानाडे की दशा बिगड़ती ही चली जाती थी। उनकी संज्ञाशून्यता की दशा बराबर बढ़ती ही जाती थी। इसी समय, इस अचेतनावस्था में ही रानाडे ने अपना सिर अपनी धर्मपत्नी रमाबाईजी का भुजा के ऊपर रखा और कहा—प्रिये! अब अन्त समय आगया।

इसके बाद रानाडे को रक्त की एक क़ै हुई। थोड़ी देर के बाद भारत का यह महापुरुष इस संसार से सदा के लिए विदा हो गया! जिस देशभक्त ने अपनी अन्तिम साँस भी देश-सेवा में लगायी थी, उस भाग्य के कुटिल तथा कठोर चक्र ने आज पीस डाला!! जिस कर्मयोगी की धाक भारत ही में नहीं, संसार भर में जम गई थी, अकस्मात् आज वह भारत से सदा के लिए विदा होगया!! जिस महात्मा ने अपने रक्त से कांग्रेस-वृक्ष को सींचा था, आज वह स्वर्गलोक को प्रस्थान कर गया!!!

प्रातःकाल ही बम्बई में यह समाचार फैल गया कि भारत का पुरुष सिंह तथा सच्चा कर्मयोगी रानाडे आज इस संसार से उठ गया। बम्बई ने साक्षात् शोक की मूर्ति को धारण कर लिया। रानाडे की आत्मा लगभग ६० वर्ष की ठठरी यहाँ छोड़कर स्वर्ग में चली गई। जिसका एक एक रोम देशभक्ति, स्वार्थत्याग, धर्म-निष्ठा, लोकोपकार तथा समाज सेवा से भरा हुआ था, उसी महापुरुष का आज कुटिल काल के काल हाथों ने बड़ी निर्दयता से अस्तित्व ही मिटा दिया। देश भर में हाहाकार मच गया और बम्बई शहर में शोक का एक दूसरा सागर उमड़ आया।

मृत्यु के पहले रानाडे की तबीयत स्वस्थ-सी लगाई थी, परन्तु कौन जानता था कि बुझते हुए दीपक की अन्तिम

ज्योति है। कौन समझता था कि यह सर्वनाश के पहले दिखाई देनेवाली मधुर मूर्त्ति है और तूफान के पहले दृष्टिगोचर होने वाली शान्ति है!!

बम्बई के कई लोगों ने पिछले दिन इन्हें टहलते हुए देखा था। जब इन लोगों ने समाचारपत्रों में इस दुःखद समाचार को पढ़ा तब उन्हें भी उनकी मृत्यु का विश्वास हो गया।

थोड़ी देर में रानाडे का घर असंख्य स्त्री-पुरुषों से खचाखच भर गया। ये सब लोग शोक प्रकट करने के लिए यहाँ उपस्थित हुए थे। रमाबाई के हृदय में जो शोक-सागर उमड़ रहा था, उसका अनुमान कौन कर सकता है?

रानाडे केवल ब्राह्मण और हिन्दुओं के ही नेता नहीं थे, बल्कि वे एक भारतीय थे और सब धर्मों के लोगों के नेता थे।

सर लारेंस जेंकिंस साहब बम्बई हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस थे। सबसे पहले वे रानाडे के घर फूलों का हार लेकर उपस्थित हुए। इस समय वास्तव में बम्बई की सारी जनता रानाडे के घर पर एकत्रित होगई।

रानाडे के संबन्धी लोग इनकी अर्थी की तैयारी करने लगे। लगभग दस बजे इनकी अर्थी बाहर निकली और श्मशानघाट की ओर चली। रानाडे के शरीर के ऊपर स्वच्छ तथा धवल दुशाला पड़ा हुआ था और उनको वही हार पहनाया गया था जिसे सर लारेंस जेंकिंस साहब लाये थे।

थोड़ी देर के बाद अँगरेज़ लोग विदा कर दिये गये और शेष लोग अर्थी के साथ साथ श्मशानघाट की ओर बढ़ने लगे। इस समय बम्बई का सारा विद्यार्थी मंडल भी अर्थी के साथ था, क्योंकि रानाडे विद्यार्थियों को बहुत चाहते थे और अपने जीवनकाल में सदा उनकी सहायता करने के लिए तैयार रहते थे। अर्थी के साथ जितने मनुष्य थे उनकी मुखाकृति से यही मालूम होता था मानो उनके खास घर का कोई आदमी मर गया है। वास्तव में रानाडे की मृत्यु से जनता बहुत क्षुब्ध थी।

अर्थी के साथ साथ केवल हिन्दू लोग ही नहीं थे, किन्तु मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि भी थे। इससे पता चलता है कि रानाडे को सब धर्मों के लोग बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे।

मुसलमानों ने समझा कि शायद श्मशान पर जाने से बुरा मानें, इसलिए वे लोग बीच ही से लौट गये। इसका आशय यह नहीं कि मुसलमान लोग उनसे बुरा मानते थे, कदापि नहीं। सब मुसलमानों ने रानाडे की अर्थी को बड़े आदर की दृष्टि से देखा। रास्ते में जितने मुसलमान किसी सवारी में मिले, वे सब अर्थी के सामने आने के पहले ही अपनी सवारियों से उतर गये और जबतक अर्थी निकल नहीं गई तबतक वहीं खड़े रहे। लगभग १२ बजे अर्थी श्मशान घाट पहुँची।

रानाडे के लिए यहाँ पर चंदन की चिता तैयार की गई और अन्त में उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की गई। इसके बाद सर भालचन्द्र तथा हेडमास्टर मिस्टर वैद्य ने हृदय विदारक व्याख्यान दिये।

रानाडे की मृत्यु पर शोक

रानाडे के स्वर्गवास के समाचार से देश में बड़ा कोलाहल तथा हाहाकार मच गया। सब पत्रों में शोक प्रकट किया गया, तथा बड़े बड़े लेख लिखे गये। इस संबंध में मरहठा में जो लेख तिलक ने लिखा था वह अद्वितीय था। उसमें कहा गया था—इस महापुरुष तथा पुरुष-रत्न की मृत्यु से भारत की जो हानि हुई है, उसका ठीक ठीक अनुमान करना कठिन है। वे अद्वितीय वक्ता थे, उत्तम तथा श्रेष्ठ ग्रन्थकार थे प्रभावशाली समाज-संशोधक थे और प्रसिद्ध पण्डित थे। उनकी राजनैतिक विवेचना महत्त्वपूर्ण हुआ करती थीं। वे पारदर्शी विद्वान् और जनता से सच्ची सहानुभूति रखनेवाले एक पवित्र देशभक्त थे। वे उन्नीसवीं शताब्दी के एक ही आदर्श थे। एक पूरी शताब्दी भी ऐसे मनुष्य को कठिनता से अपने गर्भ में रख सकती है। यदि वे एक अँगरेज़ होते तो बृटिश मंत्रिमंडल में एक बहुत ऊँचा पद प्राप्त कर लेते। उन्होंने कई सभाएँ स्थापित कीं, कई आवेदनपत्र बनाये, कई प्रस्ताव

उपस्थित किए, कई संस्थाएँ स्थापित कीं तथा कई आदमियों का तैयार किया।

हम लोगों को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि रानाडे सदा सरकार के ही नौकर थे। हम लोगों को यह पता है कि सरकारी नौकरी करके राजनैतिक आंदोलनों में भाग लेना कितना कठिन काम है। परन्तु रानाडे ने यह सिद्ध कर दिया कि यदि हृदय में सच्ची लगन हो तो आदमी सरकारी नौकरी करते हुए भी देश का उपकार कर सकता है।

रानाडे ने सदा कांग्रेस में भाग लिया और उसकी उन्नति के लिए उन्होंने प्रयत्न भी किया। इसमें भी कुछ संदेह नहीं है कि शिवाजी उत्सव में भी उन्होंने बड़ी सहायता दी थी। भारत की राष्ट्रीयता का निर्माण करने में उनका विशेष हाथ था।

भारत का इतिहास जाननेवालों को पता होगा कि रानाडे की मृत्यु के समय भारत के वाइसराय लार्ड कर्ज़न महोदय थे। उन्होंने श्रीमती रानाडे के पास निम्नलिखित तार भेजा था— श्रीमतीजी! आपकी इस हृदय-विदारक आपत्ति में मैं अन्तःकरण से सहानुभूति प्रकट करता हूँ। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि रानाडे की मृत्यु से केवल भारत का एक प्रसिद्ध जज ही नहीं गया, परन्तु अपने देश के साथ सच्ची सहानुभूति रखनेवाला एक नेता भी उठ गया।

एक बार गोखले ने रानाडे के संबंध में कहा था—जहाँ

मफ मैं समझता हूँ रानाडे में कई गुण थे। परन्तु सबसे अच्छा गुण रानाडे में यह था कि वे सब काम एक सच्चे कर्मयोगी की भांति करते थ। वास्तव में उनके सब काम निष्काम कहे जा सकते हैं। य सदा अपने कर्त्तव्य का पालन किया करते थ और उन्हें यश तथा बड़ाई का कोई चिन्ता नहीं रहता था। वे इस बात का अवश्य ध्यान रखते थ कि बहुत से लोगा क साथ काम करें। वे चाहते थे कि मैं लोगों को खूब सहायता दूँ और लोग खूब काम करें और साथ ही-साथ अपना नाम भी करें। रानाडे में अहंकार तो छू ही नहीं गया था। वे प्रसिद्ध होने की लालसा से कोई काम नहीं करते थे। वास्तव में अहंकारमय शब्द तो रानाडे के कोष में मिलते ही नहीं। अहंभाव तो उनमें बिल्कुल ही नहीं था। इसमें संदेह नहीं कि यदि कोई मनुष्य उनकी निन्दा करता था तो वे अवश्य ही दुःखी होते थ, परन्तु इसके साथ ही साथ उनकी यह भी एक विचित्र बात है कि वे सभी परिस्थितियों में शान्त रह सकते थे। उनमें आत्म-संयम की मात्रा अधिक थी। इसीलिए वे बुरी-से-बुरी भी परिस्थिति में शान्त रह सकते थ। वे प्रायः प्रसन्न चित्त तथा शान्त रहा करते थ। कर्त्तव्य-पालन करने में वे अद्वितीय थ। कभी कभी तो वे अपनी उदारता की हद कर देते थे। वे यदि चाहते तो अपनी बुराई करनेवाले की बुरी गति कर सकते थे, परन्तु कई अवसरों पर उन्होंने जान-बूझ कर ऐसा नहीं किया।

जब समाचारपत्रों में उनकी निन्दा छपती थी तब वे उन्हें बड़े ध्यान से पढ़ा करते थे, परन्तु जब उनकी प्रशंसा छपती थी तब उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं देते थे। मैं कभी कभी उन्हें समाचारपत्रों को पढ़कर सुनाया करता था। उनकी आँखें कमज़ोर हो गई थीं। इसलिए वे स्वयं समाचारपत्र बहुत कम पढ़ते थे और प्रायः दूसरों से पढ़वा कर सुन लिया करते थे। अपनी विरुद्ध बातों को तो सुन लेने का उन्होंने नियम सा बना लिया था। जब कभी रानाडे को अपने विरोधी की बात ठीक जान पड़ती थी तब वे उसे स्वीकार कर लेते थे और इसमें तनिक भी लज्जित नहीं होते थे। रानाडे के पास जब कोई आदमी सहायता लेने या सम्मति पूछने जाता था, तब वे अवश्य ही उसकी मदद करते थे। दुखी तथा अत्याचार से सताये हुए आदमियों पर तो वे और भी अधिक ध्यान देते थे। बहुत लोग तो पत्रों के उत्तर न देने में ही अपनी बहादुरी तथा महत्ता समझते हैं, परन्तु रानाडे की ऐसी समझ नहीं थी। जो कोई उनके पास पत्र लिखता था, उसका वे नियमानुसार शीघ्र उत्तर देते थे।

सब लोग जानते थे कि रानाडे सबसे मिला करते हैं। इसलिए प्रायः लोग उनसे मिलने के लिए आया करते थे और विपत्ति की अवस्था में उनसे सलाह लेते थे।

इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि वे सदा सब के कष्टों का निवारण अवश्य ही करते थे, परन्तु जब किसी के दुःख

क हटाने में असमर्थ हो जाते थे तब भी उसकी सारी बातों को धैर्य के साथ सुनते थ और यथाशक्ति उसक हटाने का प्रयत्न भी करते थे।

समाज-सेवा का तो छोटे-स-छोटा काम भी व आनन्दपूर्वक करते थे, परन्तु उन्हें देश-भक्त या राष्ट्रनिर्माता कहलाने की फिक्र नहीं थी । देश-सेवा के प्रत्येक काम को करने क लिए व तैयार रहते थ। मेरा पूर्ण विश्वास है कि यदि भारत में देश-सेवा-मन्दिर के निर्माण करने का समय आता तो वे अवश्य ही अपनी पीठ तथा कन्धों पर ईंट और पत्थर भी लादते।

अब मैं दो एक उदाहरणों की सहायता से यह सिद्ध करने का विचार कर रहा हूँ कि रानाडे वास्तव में बड़े ही निर-भिमानी थे। इसके बाद गोखले ने स्त्री के बोझ उठवा देनेवाली कहानी कही ।

उक्त कहानी कहने के अनन्तर गोखले ने फिर इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया:—

एक दिन रानाडे पैदल आ रहे थे। रास्ते में कीच भरा हुआ था। उसीमें घबराया हुआ एक पथिक भागा आ रहा था। उसने अनजान में रानाडे को एक धक्का दिया। रानाडे की पगड़ी पृथ्वी पर धूल फाँकने लगी । पथिक को भी अपनी गलती मालूम हुई और वह बहुत ही अधिक लज्जित हो गया । इतना ही नहीं, उसक हृदय में भय का भी सञ्चार हो आया ।

रानाडे ने अपनी पगड़ी उठाई, उसे पोंछा और फिर सिर पर रख लिया। रानाडे ने किसी से कुछ नहीं कहा और फिर उन्होंने चलना प्रारम्भ कर दिया। इसके बाद वह पथिक रानाडे के पास आया और उसने बड़ी नम्रता से क्षमा माँगा। तब रानाडे ने उससे कहा—भाई, इसमें क्षमा माँगने की क्या आवश्यकता है ? आपने जान-बूझ कर तो यह काम किया नहीं। मार्ग में तो प्रायः ऐसा हो ही जाता है।

न्यायमूर्ति महोदय गोविन्द रानाडे के स्वर्गवास हो जाने के बाद, उनका स्मारक स्थापित करने के लिए बम्बई में एक बड़ी भारी सभा हुई थी और सभापति का आसन लार्ड नार्थ कोर्ट ने लिया था। लार्ड नार्थकोर्ट उस समय बम्बई के गवर्नर थे। इस सभा में बहुत लोगों के व्याख्यान हुए। उनमें से गोखले के व्याख्यान के कुछ अंश का आशय देना अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है।

गोखले ने कहा था—सभापति महोदय ! यदि कृतज्ञता प्रेम तथा दुःख प्रकट करने के लिए किसी भारतीय के लिए आज एक स्मारक बनाने की आवश्यकता है तो इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि वह भारतीय न्यायमूर्ति रानाडे हैं। लगभग ४० वर्ष तक रानाडे ने हम लोगों के उपकार के लिए काम किया है। उनकी न्यायप्रियता तथा पवित्रता-भक्ति अद्वितीय थी। कभी कभी रानाडे का कष्ट विपत्तियों का

सामना करना पड़ा था, परन्तु उस महात्मा ने इन्हें कुछ भी नहीं गिना और अपने कर्त्तव्य का पूर्ववत् ही पालन किया। उन्होंने देश में अपना एक ऐसा उदाहरण रख दिया है जिससे भारत का परम कल्याण होगा। उन्होंने हम लोगों के सामने समाज-सेवा, तथा देशभक्ति का बहुत ही अच्छा आदर्श रख दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वर ने उन्हें अपूर्व प्रतिभा तथा सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमत्ता दी थी।

रानाडे के संयम तथा परिश्रम ने उन्हें भारत के सुधारों के सर्वथा योग्य बना दिया था। इसमें संदेह नहीं कि रानाडे में कितने ही ऐसे अच्छे गुण थे जो उन्हें महापुरुष बना सकते थे। मैं हृदय से इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ कि सम्पूर्ण भारत तथा प्रत्येक जाति से उनके स्मारक के लिए धन एकत्रित किया जाय। जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह वास्तव में एक बहुत ही अच्छा प्रस्ताव है। भारत में उनसे अधिक सच्चा समाज-सेवक मिलना कठिन है। वे सभी धर्मों तथा सभी जातियों के लोगों से सच्ची सहानुभूति रखते थे। वे सच्ची राष्ट्रीयता उत्पन्न करना चाहते थे और उनका यह भी विचार था कि भारत में सच्ची राष्ट्रीयता उत्पन्न करने की बड़ी भारी आवश्यकता है।

वे प्रायः कहा करते थे कि हम लोगों को यह नहीं भूलना चाहिए कि हम पहले भारतीय और पीछे हिन्दू, मुसलमान

तथा पारसी हैं। रानाडे के ऊपर किसी भी सम्प्रदाय की कोई विशेष छाप नहीं लगी थी। वे भारत की सब जातियों की, और सब विषयों में उन्नति चाहते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम मनुष्यत्व के नाते सब भाई भाई हैं।

रानाडे केवल वाक्शूर ही नहीं थे, परन्तु वे सर्वदा आदर्श के अनुकूल काम भी करते चले जाते थे। उनके विचारों और कार्यों में समानता रहा करती थी। उन्होंने अपने जीवन में बहुत ही अधिक पवित्र कामों को किया और किया उन्हें निष्काम बुद्धि से।

रानाडे को मैं भली भाँति जानता हूँ। बहुत लोग समझते होंगे कि रानाडे अपनी समालोचना नहीं किया करते थे। यह उनका भ्रम है। रानाडे अपनी बड़ी कड़ी समालोचना करते थे। इसके साथ-ही-साथ रानाडे दूसरे लोगों की कभी कड़ी समालोचना नहीं करते थे। रानाडे को अपने पर पूर्ण अधिकार था और वे सदा अपना भरोसा करते थे।

जब कभी उन्हें किसी के आक्षेपों से कष्ट पहुँचता था तब वे इससे शिक्षा ग्रहण करते थे। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि रानाडे ने देश के लोगों को देश के कार्य करने में बड़ी सहायता दी है। रानाडे वास्तव में वह सूर्य थे जिसके प्रकाश से भारतीय सब ग्रह प्रकाशित होते थे। वे बड़े भारी नेता थे

और संसार के सर्वश्रेष्ठ नेताओं में जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे सब गुण रानाडे में मौजूद थ।

उनको देख कर मन में पूज्य भाव उपजते थे। जो लोग उनको जानते थे उनके लिए रानाडे के शब्द, कानून का महत्व रखते थे। एक बड़े भारी आदर्श-गुरु के सब आदर्श तथा बड़े गुण उनमें थे। वह प्रकाश जो भारत को आलोकित कर रहा था, सदा के लिए मिट गया।

इस सभा में और भी लोगों के व्याख्यान हुए। अन्त में सभा ने रानाडे के स्मारक के लिए एक कमेटी बनाई। इस कमेटी ने स्मारक के लिए चंदा एकत्रित करना प्रारंभ कर दिया। इस कमेटी ने ४ वर्षों में लगभग २५००० रु० एकत्रित किया। फिर इसी सम्बन्ध में सन् १९०५ ई० में एक और सभा हुई। इस सभा ने निश्चय किया कि न्यायमूर्ति रानाडे की मूर्ति किसी अच्छे तथा आकर्षक स्थान में स्थापित की जाय। सन् १९१३ ई० में मिस्टर हिल ने इस मूर्ति का उद्घाटन किया। रानाडे की यह मूर्ति वास्तव में बहुत ही अधिक चित्ताकर्षक है।

पूना के निवासियों ने भी रानाडे के स्मारक के लिए १२ लाख रुपया एकत्रित कर लिया। इस चन्दे में रानाडे की धर्म-पत्नी रमाबाई ने भी पाँच हजार रुपया दिया था। इस धन के एकत्रित करने का अधिक श्रेय गोखले को ही प्राप्त है। इस धन

की सहायता से "रानाडे इंडस्ट्रियल एंड इकनामिक इंस्टीट्यूट' नामक संस्था खोली गई।

व्यापार तथा सांपत्तिक अवस्था का सुधार करना ही उस संस्था का मुख्य उद्देश्य है। यह संस्था जापान, जर्मनी, अमे-रिका आदि देशों को जाने वाले विद्यार्थियों को मार्गव्यय आदि की सहायता भी देती है।

रानाडे के और भी कई स्थानों में स्मारक खोले गये। अहमदाबाद में भी रानाडे-स्मारक के लिए रायबहादुर लाल-शङ्कर ने १४००० रु० एकत्रित किया और मद्रास में रानाडे के नाम पर एक पुस्तकालय खोला गया।

इतिहास की कहानियाँ

१—रुस्तम और विजहान

बहुत समय पहले ईरान देश में एक बड़े नामी पहलवान थे। आपका नाम था रुस्तम। आप बड़े ही बहादुर और हिम्मतवर थे। उस वक्त दुनिया में आपके समान बलवान् और कोई न था। उस वक्त ईरान के बादशाह का दुश्मन अफ़रासियाब बड़ा ही बहादुर था। उसने ईरान के बादशाह को लड़ाई में कई बार हराया था। जब रुस्तम बड़े हुए, तब उन्होंने अफ़रासियाब के छक्के छुड़ा दिए। रुस्तम केवल बहादुर ही न थे, वह दयालु भी थे। वह अक्सर दुःखी लोगों की सहायता किया करते थे।

एक बार कुछ लोगों ने विजहान नाम के एक ईरानी जवान को पकड़कर एक बड़े गड्ढे में डाल दिया, और गड्ढे के मुँह पर एक बड़ा-सा पत्थर भी रख दिया। पत्थर की दरार से ही विजहान को कुछ रोटियाँ और थोड़ा-सा पानी दे दिया जाता था। विजहान के हाथ-पैर भी जंजीरों से कस दिए गए थे। उसे वहाँ न तो काफ़ी हवा मिल पाती थी और न उजेला ही।

रुस्तम को विजहान का यह बुरा हाल सुनकर बड़ी दया आई। आपने विजहान को छुड़ाने का पक्का इरादा कर लिया, और फ़ौरन् कुछ साथियों को लेकर विजहान को छुड़ाने के लिये रवाना हुए। रास्ते में एक बहादुर ने रुस्तम को रोक लिया, तब उससे रुस्तम की कुश्ती होने लगी। अंत में रुस्तम ने उसे मार डाला, और उस गड्ढे के पास जा पहुँचे। पहले तो आपने उस भारी पत्थर को एक तरफ़ उठाकर फेंक दिया, और फिर एक डोरी का फंदा बनाकर गड्ढे में डाला, और विजहान को बाहर निकाल लिया।

इसके बाद रुस्तम ने कहा—भाई विजहान, इतने दिनों की तकलीफ़ से तुम बहुत कमज़ोर हो गए हो, घर जाकर आराम करो। अब मैं तुम्हारे दुश्मनों को सज़ा देने के लिये जाता हूँ।

यह सुनकर विजहान बोला—नहीं भाई, ऐसा कैसे हो सकता है। मैं जानता हूँ, आप बहादुर हैं, और आपको मेरी सहायता की ज़रूरत भी नहीं है, तो भी मैं आपको ऐसी जगह अकेला न जाने दूँगा, जहाँ आपके प्राणों पर डर है। मुसीबत के समय ही सच्चे मित्रों की जाँच होती है। मैं आपका साथ न छोड़ूँगा। जहाँ आप जायँगे, वहाँ मैं भी जाऊँगा।

उसी समय दोनों बहादुर दुश्मन को सज़ा देने के लिये चल खड़े हुए, और रातोरात दुश्मन के महल के पास जा

पहुँचे। फिर तो रुस्तम ने अपने मित्र के दुश्मन को खब ही छकाया।

सच्चे मित्र का यही काम है कि वह अपने मित्र पर हमेशा दया रक्खे, और समय पड़ने पर उसे अच्छी तरह सहायता भी दे। जो ऐसा नहीं करता, वह सच्चा मित्र नहीं है। ऐसे आदमी की चाह कोई नहीं करता और न ऐसे आदमी पर कोई भरोसा ही करता है।

२—डेमन और पीथियस

सायराक्यूस में डेमन और पीथियस नाम के दो आदमी रहते थे। उनमें बड़ी गाढ़ी दोस्ती थी। वे आपस में बड़ा प्रेम रखते थे। उनमें कपट तो नाम को भी न था।

सभी देशों में राजा की आज्ञा न मानना क़सूर समझा जाता है, और आज्ञा न माननेवाले को सज़ा दी जाती है। एक बार डेमन पर भी राजा की आज्ञा न मानने का अपराध लगाया गया, पर डेमन असल में अपराधी था नहीं। फिर भी वह ज़बरदस्ती पकड़ लिया गया, और राजा डायोनीशियस ने उसे फाँसी की सज़ा दे दी। इतने पर भी डेमन को ज़रा भी रंज न हुआ, क्योंकि वह सच्चा था।

मरने के पहले डेमन ने एक बार अपने घर के लोगों से मिलने की इच्छा की। उसका इरादा था कि घर के काम-काज

की सब बातें उन्हें समझा दूँ, जिससे मेरे बाद किसी को दुःख न हो। उसने राजा से घर जाने के लिये आज्ञा माँगी। राजा ने कहा—अच्छा, तुम खुशी से जा सकते हो। पर तुम्हारे बदले यहाँ दूसरा आदमी हाजिर रहना चाहिए। तुम यदि ठीक वक्त पर न लौटोगे, तो तुम्हारे बदले उसे फाँसी दे दी जायगी। दूसरे के लिये अपना सिर देने को कौन तैयार हो सकता था! अंत में डेमन का मित्र पीथियस राजा के पास गया, और बोला—महाराज, मैं अपने दोस्त के बदले हथकड़ी-बेड़ी पहनूँगा। जब तक वह घर से न लौटेगा, तब तक उसके पीछे मैं सब तरह के कष्ट सहूँगा। अगर दोस्त न लौटेगा, तो उसके बदले मेरी जान हाजिर है। मेरे दोस्त को घर जाने दीजिए।

पीथियस की बातें सुनकर राजा चकरा गया। झक मार कर उसे डेमन को छुट्टी देनी पड़ी। डेमन कैदखाने से निकलकर अपने घर गया, और पीथियस जेल के कष्ट सहने लगा। लोग पीथियस को बुरा भला कहने लगे कि देखो तो, यह कैसा उल्लू है, दूसरे के लिये नाहक अपनी जान खोता है। पर पीथियस इन बातों पर ध्यान न देता था, वह सोचता था, मैंने जो कुछ किया, वह अच्छा ही किया। मरने के पहले मेरे दोस्त की इच्छा तो पूरी हो जायगी।

पीथियस को डेमन पर पूरा भरोसा था। पर छुट्टी पूरी हो जाने पर भी डेमन नहीं आया। तब राजा ने पीथियस को

इतिहास की कहानियाँ

यमन देखा कि प्रमन झपटा हुआ आ रहा है ।

फाँसी पर चढ़ाने का हुक्म दिया। अब तो सब लोग पीथियस को खूब ही कोसने लगे। सब उससे कहते थे—धत् तेरा बुरा हो जाय! नाहक़ ही तूने अपनी जान गँवाई। पीथियस फाँसी पर चढ़ाया जाने ही को था कि इतने में सुनाई पड़ा—ठहरो! ठहरो!! सब उसी तरफ़ देखने लगे। सबने देखा कि डेमन झपटा हुआ आ रहा है। उसने आते ही राजा से कहा—लीजिए महाराज, मैं आ गया। मेरे दोस्त को छोड़ दीजिए। मुझे फाँसी पर लटकाइए।

यह हाल देखकर सब लोग दंग रह गए। राजा ने सोचा—ओह! इसका नाम सच्ची दोस्ती है, ऐसे दोस्त सब दुनिया की दौलत से भी बढ़कर हैं। बहुत दिनों से बेरहमी और सख़्ती करते-करते राजा का हृदय पत्थर हो गया था। आज इनकी यह मित्रता देखकर उसका हृदय पिघल गया। मारे खुशी के उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने उछलकर पीथियस को छाती से लगा लिया और कहा—भाइ, अब जाओ, मौज करो। कोई तुम्हारा बाल बाँका न करेगा। फिर उसने डेमन को भी छाती से लगाकर कहा—दोस्त, तुम भी एक ही रहे। अब तुम भी जाओ। मैं भी आज से तुम लोगों का दोस्त हुआ। तुम भी मुझे अपना दोस्त समझो। आज से मैं भी तुम लोगों के सुख-दुःख में शामिल रहूँगा।

इसके बाद राजा ने दोनो दोस्तों को खूब धन देकर उनका आदर किया। दोनो हँसते-हँसते अपने-अपने घरों को गए।

सच्ची दोस्ती ऐसी ही होती है। हमें भी ऐसी ही दोस्ती करनी चाहिए, और खुशी से दोस्त के सुख-दुःख में शामिल होना चाहिए।

३—बेईमान पाहुना

आप लोगों ने सिकंदर बादशाह का नाम तो सुना ही होगा। उनके पिता फ़िलिप मेसीडोनिया के राजा थे। फ़िलिप की फ़ौज में एक बड़ा बहादुर सरदार था। उसकी बहादुरी से फ़िलिप बहुत खुश थे। एक बार वह सरदार जहाज़ में सवार होकर कहीं जा रहा था। जब जहाज़ समुद्र में पहुँचा, तब बड़े ज़ोर की आँधी आई। समुद्र में ऊँची-ऊँची लहरें उठने और अपने थपेड़ों से जहाज़ को तोड़ने लगीं। अंत में जहाज़ टुकड़े-टुकड़े हो गया, और सब लोग समुद्र में डूब गए।

वह सरदार बहता हुआ धरती के किनारे पहुँच गया। इस आफ़त में पड़कर उसकी बुरी हालत हो गई। कई दिन का भूखा-प्यासा तो था ही, ऊपर से लहरों की थपेड़ों ने उसका दम ही तोड़ दिया। बेचारा किनारे पर बेहोश पड़ा था। उसी जगह एक दयालु महाशय रहते थे। उनके नौकरों ने आकर उनसे कहा—आज समुद्र के किनारे एक आदमी बेहोश पड़ा है। उसका बहुत बुरा हाल है। जान पड़ता है, वह कहीं से बहकर यहाँ आ पहुँचा है।

यह सुनकर उन महाशय को बड़ी ही दया आई। वह फ़ौरन् समुद्र के किनारे आए, और अपने नौकरों की सहायता से सरदार को उठाकर घर ले गए। उन्होंने उसे खाट पर सुलाया, और इस तरह से उसकी सेवा करने लगे, जैसे कोई अपने प्यारे भाई की करता है। सरदार जो कुछ माँगता, वही देते थे। इस तरह वह लगातार चालीस दिन तक प्रेम से सरदार की सेवा करते रहे, और वह बिल्कुल चंगा हो गया। उसने उन दयालु महाशय का बहुत उपकार माना और, खुश होकर उनसे कहा—आपने मेरे प्राण बचाकर मेरे साथ बड़ी भलाई की है। मैं कभी आपका उपकार न भूलूँगा। महाराज फ़िलिप मुझे बहुत चाहते हैं। मैं उनकी फ़ौज में एक बड़ा अफ़सर हूँ। अब वह आपकी भलाई की बात सुनेंगे, तो बहुत खुश होंगे, और ज़रूर आपको इनाम देकर खुश करेंगे।

जब सरदार अपने घर जाने लगा, तब उन महाशय ने उसे रास्ते के खर्च के लिये रुपए दिए, और बहुत-सा सामान भी दिया। रास्ते में सरदार महाशय सोचने लगे कि यह आदमी बड़ा ही मालदार है, उसका मकान कैसा अच्छा है। यह ज़मीन भी बहुत अच्छी है। यदि यह सब जगह मुझे मिल जाए, तो मेरे दिन बड़े ही आनंद से कटें, अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे यह माल हाथ आवे।

ऐसी ही बातें सोचता हुआ वह बेईमान घर पहुँचा।

उसने फ़िलिप को अपने डूबने और जहाज़ टूट जाने का सब हाल सुनाया, पर उन उपकारी महाशय को एक भी बात न सुनाई। फिर उसने फ़िलिप से कहा—महाराज! मैं मर ही चुका था, यह तो कहिए कि महाराज का आशीर्वाद था, जिससे मेरे प्राण बच गए। महाराज, सच जानिए, जहाँ मैं पहुँचा था, वह जगह बड़ी ही अभागी है। वहाँ के आदमी बड़े ही दुष्ट हैं, किसी ने मेरी बात तक न पूछी। यदि आप यह जगह मुझे दे दें, तो मैं वहाँ सब बातों का सुधार करूँ। फ़िलिप उसकी बेईमानी क्या जाने, तुरत ही वह जगह उसे दे डाली। अब क्या था, सरदार महाशय की बन आई। आप फ़ौरन् फ़ौज लेकर वहाँ जा पहुँचे, और बड़ा ऊधम मचाने लगे। उन दयालु महाशय का सब सामान और घर भी आपने छीन लिया।

अपनी भलाई का यह बदला देख वह महात्मा बड़ा दुःखी हुआ। उसने सोचा, महाराज फ़िलिप न ऐसा काम बिना सोचे-समझे कैसे कर डाला, हो न हो, यह इसी बेईमान की करतूत है। ऐसा सोच उसने राजा को एक चिट्ठी में सब हाल लिखकर उनसे बिनती की कि हुज़ूर इस बात का फ़ैसला करें, मैंने कोई कसूर नहीं किया।

यह चिट्ठी पाकर फ़िलिप ने सब बातों की पूरी पूरी जाँच की। सरदार की बेईमानी और बदमाशी पर वह बहुत नाराज़ हुए। उन्होंने वह जगह उन्हीं दयालु महाशय को लौटा दी,

और हुक्म दिया कि इस सरदार के माथे पर गरम लोहे से छाप दो—'बेईमान पाहुना'। ऐसा ही हुआ।

इसीलिये कहा है कि किसी की भलाई को भूल जाना बड़ा पाप है। अच्छे आदमी किसी का उपकार नहीं भूलते।

४—सुक़रात और ज़ेंटिपी

योरप में यूनान नाम का एक छोटा-सा देश है। सुक़रात वहीं का रहनेवाला था। वह आज से कोई २५०० बरस पहले पैदा हुआ था। सुकरात की गिनती दुनिया के बड़े-बड़े विद्वानों और बुद्धिमानों में की जाती है। उसका चाल-चलन भी बहुत अच्छा था। मनुष्यों की सेवा और भलाई ही में उसने अपनी ज़िंदगी के दिन बिता दिए।

सुक़रात का स्वभाव बहुत ही अच्छा था। वह न तो कभी किसी से कड़ी बात कहता और न कभी किसी पर नाराज़ ही होता था। क्रोध तो उसे आता ही न था। उसकी स्त्री का नाम ज़ेंटिपी था। ज़ेंटिपी बड़े ही कड़े मिज़ाज की स्त्री थी। उसे बात-बात पर गुस्सा आता था। वह सुक़रात को बहुत दुःख देती थी, पर सुक़रात उससे कभी कुछ न कहता था।

एक दिन की बात है। सुक़रात अपने घर में बैठा हुआ कुछ मित्रों से बातें कर रहा था। उसे देर तक बातें करते

देख जेंटिपी बिगड़ उठी। रह-रहकर उसका गुस्सा बढ़ने लगा। अंत में वह गालियाँ बकने लगी। पर सुकरात मित्रों के साथ बैठा बातें कर रहा है। अपनी स्त्री की गालियाँ भी सुनता जाता है; पर उसे ज़रा भी गुस्सा नहीं आता। यह देख जेंटिपी और ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ देती है। अब सुकरात मुस्कराने लगता है। और कोई होता, तो जेंटिपी को तड़ातड़ तमाचे लगाना शुरू कर देता, पर वाह रे सुकरात! वह मुस्कराता है।

अब सुकरात किसी काम से अपने मित्रों के साथ बाहर जाने लगता है। यह देख जेंटिपी और भी झल्ला उठती है। उसका गुस्सा और भी बढ़ जाता है। वह खट्-खट् करके अटारी पर चढ़ जाती और मैले पानी का घड़ा उठा कर सुकरात पर उँड़ेल देती है। सुकरात मित्रों के साथ जा रहा था। घड़े-भर पानी से उसके कपड़े भीग ही नहीं गए, मैले भी हो गए, पर सुकरात को इस बात की कुछ चिंता न हुई। उसके चेहरे पर ज़रा भी क्रोध न आया। उल्टा वह हँसकर अपने मित्रों से कहने लगा—देखिए भाई, मैंने आप लोगों से तो पहले ही कह दिया था कि जब इतनी गर्जना हो रही है, तब कुछ-न-कुछ वर्षा भी होगा। देखिए, अंत में वही हुआ न।

शांत स्वभाव की हद हो गई। जो लोग इस तरह शांत रहना जानते हैं, वे ही महात्मा हैं। क्रोध को मारना सहज

नहीं है। सुकरात ने क्रोध को मार लिया था, इसी से वह आज महात्मा कहलाता है। लोग आज तक उसका आदर करते हैं। सुकरात कहा करता था कि यह स्त्री मेरी गुरु है। इसी ने मुझे क्रोध न करना सिखलाया है! कुछ इसी स्त्री की बात नहीं है, सुकरात कहीं भी क्रोध न करता था। वह कभी किसी के कहने का बुरा न मानता था।

क्रोध एक बड़ा पाप है। जो क्रोध करते हैं, वे पाप करते हैं। क्या ऐसे बड़े पाप से तुम लोग दूर न रहोगे?

५—एरिस्टाइडीज़ का सीधापन

एरिस्टाइडीज यूनान देश में न्यायाधीश था। वह सीधा सादा और विद्वान् आदमी था। जो काम करता, ईमानदारी से करता। उसके मुक़द्दमों के फ़ैसले बहुत ही वाजिबी होते थे। न वह किसी की तरफ़दारी करता, न किसी के साथ रियायत ही करता था। उसका इ साफ़ बहुत साफ़ होता था। लोग उसके इ साफ़ से बहुत खुश होते थे। एरिस्टाइडीज का नाम सारे यूनान देश में फैल गया। दिन-दिन उसकी कीर्ति बढ़ती ही गई।

सब जगह कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो दूसरे का बड़प्पन देखकर जलते और उसकी बुराई करने लगते हैं। यूनान में भी थेमिस्टाक्लीज नाम का एक ऐसा ही आदमी

देश का भी हाल मिला होगा। यही अरब, जो एशिया के पश्चिमी किनारे पर दक्षिण दिशा में है, और जहाँ रेत के जहाज अर्थात् ऊँट खूब होते हैं। जानते हो, ऊँट वहाँ रेत के जहाज क्यों कहलाते हैं? बात यह है कि अरब में बहुत बड़ा रेतीला मैदान है। उसे पार करने के लिये लंबी टाँगोंवाला ऊँट ही काम देता है। मनुष्य में कहाँ इतनी ताकत, जो वह उस रेत के समुद्र को अपने छोटे-छोटे पैरों से पार कर सके। आपको इसी रेतीले समुद्र में रहनेवाले एक अरबी आदमी की कहानी सुनाई जाती है।

इन हजरत का नाम अलकसी था। आप कविता भी अच्छी करते थे, और शिकार खेलने का भूत तो आप पर चौबीसों घटे सवार रहता था। आप निशाना मारने में भी उस्ताद थे। उस देश में आप बड़े चतुर समझे जाते थे। आपका आदर और नाम भी खूब था।

एक दिन आपको शिकार खेलने की बड़ी इच्छा हुई। रात अँधेरी थी, पर आप घर से निकल खड़े हुए, और एक घने जंगल में जा पहुँचे। वहाँ आप एक जगह छिपकर बैठ गए, और जंगली जानवरों के आने की राह देखने लगे। तीर चलाने में तो आप एक ही थे। जहाँ आवाज सुनाई देती, वहीं तीर चलाकर आप निशाना मारते थे, और तारीफ यह कि आपका तीर बेकार भी न जाता था। खैर।

थोड़ी देर बाद आपको जानवरों के पैरों की आवाज

सुनाई दी। यहाँ क्या देर थी, आपने फ़ौरन् तीर छोड़ दिया। तीर जानवर का शरीर फोड़ता हुआ एक चट्टान में जा लगा, और ज़ोर से आवाज़ हुई। इस पर अलकसी ने समझा कि मेरा तीर बेकार गया। तब तो आप बहुत ही निराश हुए। आपको बड़ा ही रंज हुआ, और ख़ुद अपने को बुरा-भला कहने लगे। फिर बोले—देखूँ, अब की बार कैसे निशाना ख़ाली जाता है। आप फिर तनकर बैठ गए।

थोड़ी देर बाद ही फिर जानवरों की आवाज़ सुनाई पड़ी। अलकसी ने फिर तीर चलाए। एक, दो, तीन, चार, यह क्या! हर बार चट्टान में ही तीर लगने की आवाज़! अलकसी ने सोचा, यह क्या बात है—क्या मैं तीर चलाना भूल गया हूँ, नहीं-नहीं, धनुष में ही कोई ऐब है, यही धोखा दे रहा है। अब तो अलकसी को बड़ा ही ग़ुस्सा आया, मारे ग़ुस्से के आप पागल हो उठे। आपने अपना तमाम ग़ुस्सा धनुष पर ही उतार दिया—आज तूने एक भी जानवर का शिकार नहीं किया, तो ले, मैं तेरा ही शिकार करता हूँ। यह कहते कहते अलकसी ने धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर आपने तीर भी तोड़ डाले, और रंज के मारे वहीं लेट रहे। थोड़ी देर में आपकी आँख लग गई।

सवेरा होने पर अलकसी की आँख खुली। आपने देखा कि पाँच जानवर मरे पड़े हैं, और तीर चट्टान में जा लगे

हैं। अब अलफसी की समझ में सब भेद आ गया। तब तो आपको बड़ा ही रंज हुआ। आप कहने लगे कि देखो, मैं भी कैसा बेवकूफ हूँ। नाहक ही शक में आकर गुस्सा कर बैठा, और अपने प्यारे धनुष के टुकड़े टुकड़े कर डाले। लोग सुनेंगे, तो क्या कहेंगे। अलफसी ने उसी समय अपने कान पकड़, और कहा—बाबा, मैंने ऐसा गुस्सा छोड़ा, जिससे अपना ही नुकसान हो जाय।

सचमुच गुस्सा ऐसी ही बुरी चीज है। उसके फेर में पड़कर, समझदार भी पागल बन बैठते और अपना ही नुकसान कर डालते हैं; पर पीछे से अपनी ग़लती पर पछताते हैं, इसलिये अच्छे आदमी गुस्से से दूर ही रहते हैं।

७—अबारत और उसकी दासी

अगर आपने दुनिया का नक्शा देखा होगा, तो उसमें योरप के दक्षिण में आदमी के पैर के समान एक देश का चित्र भी जरूर देखा होगा। मालूम है, यह टाँग जैसा कौन देश है? इस देश का नाम है इटाली। इसी इटाली के उत्तरी भाग में जेनेवा-नाम का एक शहर है। इस शहर में बहुत पहले अबारत नाम के एक हजरत रहते थे। आप घर के खूब मालदार थे। पर आप थे पूरे ज्ञानी; क्रोध को तो आप

अपने पास ही न आने देते थे। यह देखकर लोग कहा करते, यह भी अजीब भोंदू है! यह कोई आदमी में आदमी है, जिसे ज़रा भी गुस्सा न आए!

अबारत के पास एक दासी थी। वह तीस बरस से उनका काम करती थी, पर उसने कभी उन्हें क्रोध करते न देखा था। पुरा-पड़ोस के लोगों ने इस बात की जाँच करने का विचार किया कि देखें, कब तक अबारत को क्रोध नहीं आता। उन लोगों ने दासी से कहा कि यदि तुम किसी दिन अबारत को गुस्सा करते दिखला दोगी, तो तुम्हें खूब इनाम दिया जायगा।

इनाम का नाम सुनकर दासी के मुँह में पानी भर आया। वह इस सोच में पड़ी कि कौन-सा काम बिगाड़ने से मेरे मालिक नाराज़ होंगे। सोचते-सोचते उसे याद आया कि उन्हें अच्छे बिछौने पर सोने का बड़ा शौक़ है, अगर बिछौना बिगाड़कर बिछाया जाय, तो वह बहुत नाराज़ होंगे। बस, दासी ने उस दिन बिछौना टेढ़ा-मेढ़ा करके बिछा दिया। सवेरे अबारत ने दासी को बुलाया। वह मारे खुशी के फूल उठी। अब हज़रत अबारत ज़रूर नाराज़ होंगे, और मुझे इनाम मिलेगा। दासी अबारत के सामने पहुँची। उन्होंने दासी से प्रेम से पूछा—कल तुमने मेरा बिछौना ठीक से नहीं बिछाया यह क्या बात है? दासी ने सिर नीचा करके उत्तर दिया—काम ज़्यादा होने से मैं भूल गई थी। अब

ऐसा न होगा। दूसरे दिन दासी ने फिर बुरी तरह से बिछौना बिछाया। अमारत ने दासी से फिर लापरवाही का कारण पूछा। दासी ने बहाना करके उन्हें समझा दिया। तब अमारत ने उसे प्रेम से समझाया कि देखो, ऐसा करना अच्छा नहीं।

पर दासी क्यों मानने लगी। वह लगातार कई दिन तक बुरी तरह बिछौना बिछाती रही, पर अब भी उसकी इच्छा पूरी न हुई। अमारत ने एक दिन भी गुस्सा न किया। उल्टे एक दिन उन्होंने दासी को बुलाकर कहा—अब आगे से अच्छा बिछौना बिछाने की बात छोड़ो। अब मुझे अच्छे बिछौने का शौक़ नहीं रहा। अब तो बुरे बिछौने पर भी मुझे नींद आ जाती है। इसलिये तुमसे जैसा बने, वैसा ही बिछौना बिछा दिया करो।

यह सुनकर दासी की सब आशा धूल में मिल गई। पर वह अपने मालिक के इस अच्छे बरताव से बहुत खुश हुई। उसने उन्हें सब भेद बतला दिया। यह सुनकर अमारत ने हँसते-हँसते कहा—ओह! यह बात थी! तब तो गुस्सा न करके मैंने बड़ी ग़लती की। तुम्हारा बड़ा नुक़सान हुआ। अच्छा लो, मेरी तरफ़ से यह इनाम लो।

दासी ने अपने क़सूर के लिये अमारत से माफ़ी माँगी और उस दिन से उनका बिछौना अच्छी तरह बिछाने लगी।

कहो, तुम भी अमारत बन सकते हो? तुम तो ज़रा-

ज़रा-सी बातों पर नाराज़ हो जाते हो। हम तो तब जानें कि तुम अच्छे लड़के हो, जब गुस्सा करना छोड़ दो।

८—जूलियस सीज़र और क्रोध

इटाली देश की राजधानी का नाम रोम है। सैकड़ों बरस पहले रोम बड़ा भारी शहर था। उसका राज्य सैकड़ों कोस तक फैला हुआ था। रोम के बादशाह बड़े ही बलवान् थे। जूलियस सीज़र नाम का यहाँ एक नामी बादशाह हो गया है। उसने बहुत-से देश जीतकर अपने राज्य को बहुत बढ़ाया था। एक बार उसने विलायत पर भी चढ़ाई कर दी थी। जूलियस का नाम सुनकर बड़े-बड़े राजा-महाराजा काँप उठते थे।

जूलियस सीज़र भारी बादशाह तो था ही, वह समझदार भी बहुत था। क्रोध को रोकना वह खूब जानता था। जब उसे क्रोध आता, तब वह एक से लगाकर सौ तक गिनती गिनने लगता था। जब वह सौ तक गिनती गिन लेता, तब कहीं बातचीत करता। ऐसा करने से उसका गुस्सा बहुत कुछ ठंडा हो जाता था। क्योंकि गिनती गिनने में कुछ समय लगता, और तब तक गुस्से की बात भूल जाती थी।

सच है, गुस्से में आकर मनुष्य थोड़ी देर के लिये अंधा-सा हो जाता है। वह अच्छी और बुरी बातों को भूल जाता

और बुरे-बुरे काम कर बैठता है, जिसके लिये उसे जिंदगी-भर शरमाना और पछताना पड़ता है। इसलिये गुस्से को दूर ही से सलाम कर लेना अच्छा है।

यदि तुम्हें कभी गुस्सा आ जाय, तो क्या तुम भी सौ तक गिनती गिनोगे? अच्छा, एक-आध बार गिनकर देखना तो!

६—एंजिलो की मूर्ति

माइकेल एंजिलो टस्कनी देश का रहनेवाला था। टस्कनी योरप में एक छोटा-सा देश है। एंजिलो बहुत ही होशियार था। उसने चित्र और मूर्ति बनाने में बड़ी तरक्की की थी। जब एक बार एंजिलो मूर्ति बना रहा था, उन्हीं दिनों उसका एक मित्र उससे मिलने आया। वह मूर्ति देखकर बहुत खुश हुआ। उसने एंजिलो की बड़ी तारीफ़ की।

मित्र के चले जाने पर भी एंजिलो उसी मूर्ति को सुधारता रहा। कुछ दिनों बाद उसका वही मित्र फिर आया, और उसने एंजिलो को उसी मूर्ति पर हाथ चलाते देखा, तब तो उसे अचरज हुआ। उसने एंजिलो से कहा—मित्र, उस वक्त भी मैंने तुम्हें इसी मूर्ति पर हाथ चलाते देखा था। तब से तुम इसी के सँवारने में अपनी सब चतुराई खर्च कर रहे हो, पर मैं देखता हूँ कि आपने जब से अब तक किया कुछ नहीं।

एंजिलो ने उसे जवाब दिया—वाह ! यह तो खूब कहा ! जान पड़ता है, मूर्ति आपने ध्यान से नहीं देखी। अगर कुछ काम नहीं किया, तो क्या भाँग थोड़े ही घोटता रहा हूँ। देखिए, इस भाग को मैंने फिर से साफ़ किया है। इस भाग को चिकना किया है। इस अंग को नए सिरे से बनाया है। यह ओठ पहले से भी अच्छा बनाया है। और आप क्या चाहते हैं?

मित्र बोला—वाह ! ये तो ज़रा-ज़रा-सी बातें हैं !

तब एंजिलो ने उससे कहा—यह आपकी भूल है। बहुत छोटी-छोटी बातों ही के मेल से तो बड़ी बात बनती है, और बड़ी बात छोटी नहीं है। इसलिये मनुष्य को चाहिए कि वह छोटी-छोटी-सी बातों पर भी खूब ध्यान दिया करे। छोटी-छोटी बातों के सुधारने से ही मनुष्य की बड़ी-बड़ी बातें अच्छी बन जाती हैं।

१०—हज़रत उमर की अँगूठी

अरब देश में हज़रत उमर नाम के एक बड़े अच्छे बादशाह हो गए हैं। वह बड़े ही दयालु और बहादुर थे। वह अपनी प्रजा को भी बहुत चाहते थे। प्रजा भी उन्हें अपने पिता के समान मानती, और हमेशा उनके लिये जान देने को तैयार रहती थी।

हज़रत उमर के पास एक बड़ी ही सुंदर और क़ीमती

अँगूठी थी। बड़े-बड़े जौहरी भी उसे देखकर दंग रह जाते थे। अँगूठी क्या थी, एक चीज थी। उसका नगीना तो रात को तारे की तरह चमकता था।

एक बार देश में भारी अकाल पड़ा। प्रजा मारे भूखों के तड़प-तड़पकर मरने लगी। तब हज़रत उमर से न रहा गया। प्रजा की दशा देख उन्हें दया आ गई, और उन्होंने अँगूठी बेचने का विचार किया।

यह देख उमर के पास बैठनेवाले उनसे बोले—हुजूर, अँगूठी न बेचिए। देखिए, कैसी अच्छी चीज है। फिर यह कहाँ मिलेगी! ऐसी अच्छी चीज भी कोई बेचता है।

उमर ने उन्हें जवाब दिया—नहीं भाई, तुम्हारा कहना ठीक नहीं। तुम्हीं कहो, जिस राजा की प्रजा ऐसे दुःख में पड़ी हो, उसे कहीं ऐसी अच्छी अँगूठी शोभा दे सकती है। मैं अँगूठी पहने रहूँ, और मेरी प्रजा दुःख में पड़ी रहे। यह नहीं हो सकता। यह तो प्रजा ही की धरोहर है। आफ़त में उसी के काम आनी चाहिए।

उमर ने यह अँगूठी बेच डाली, और उसकी क़ीमत से सात दिन तक अपनी प्रजा को भोजन कराया।

११—हज़रत हुसैन और उनका ग़ुलाम

आप हर साल ताज़िए तो देखा ही करते होंगे, और कम-

सैकड़ों कलाकेदार रेवड़ियाँ कड़कड़ाकर अपना मुँह ज़रूर मीठा करते होंगे। पर शायद आपको यह न मालूम होगा कि ताज़ियादारी क्यों की जाती है, मुसलमान लोग हर साल इतना जलसा क्यों मनाते हैं। क़रीब डेढ़ हज़ार बरस पहले अरब देश में हज़रत मुहम्मद साहब एक नबी हो गए हैं। आप ही ने लोगों को मुसलमान धर्म की शिक्षा दी। आपकी प्यारी बेटी के दो पुत्र थे—हज़रत हसन और हुसैन। ये दोनो भाई बड़े ही महात्मा, धर्मात्मा और दयालु थे। मुसल्मानों ने हसन साहब को अपना मुखिया बनाया था, पर एक दिन धोके से किसी दुष्ट ने उनकी हत्या कर डाली। तब हुसैन साहब मुखिया बनाए गए। अब की बार शाम के बादशाह यज़ीद ने बड़ा झगड़ा मचाया। तब हुसैन साहब अपनी राजधानी मक्के को छोड़कर कूफ़ा नगर की ओर चले गए। उनके साथ बहुत ही थोड़े आदमी थे। रास्ते में उन्हें यज़ीद के हज़ारों सिपाहियों ने घेर लिया। तब हुसैन साहब और उनके साथियों ने बड़ी बहादुरी से लड़ाई की, और हज़ारों दुश्मनों को काट डाला। अंत में हुसैन साहब और उनके सब साथी मारे गए। इन्हीं प्यारे हुसैन साहब की याद में मुसल्मान लोग हर साल ताज़िए बनाते और दस दिन तक रंज मनाते हैं।

अच्छा, अब हुसैन साहब की एक कहानी भी सुनिए, पर भूल न जाइएगा।

यद्यपि हुसैन साहब बादशाह थे, पर थे बड़े दयालु। वह कभी किसी को न सताते थे। क्रोध करना तो उन्हें आता ही न था। कोई कैसा ही क़सूर क्यों न कर बैठे, पर वह उसे माफ़ कर देते थे। एक बार की बात है, हज़रत हुसैन खाना खा रहे थे, इतने में उनका एक गुलाम उनके पास से खौलते हुए पानी का बर्तन लिए निकला। बर्तन में पानी ज़्यादा था, छलककर कुछ पानी हुसैन साहब के शरीर पर गिर गया। मारे कष्ट के वह ज़ोर से चिल्ला उठे। यह देखते ही मारे डर के गुलाम के तो देवता ही कूच कर गए। पर गुलाम था बड़ा होशियार, वह झट से हुसैन साहब के सामने घुटने टेक और हाथ जोड़कर क़ुरानशरीफ़ की एक आयत पढ़ने लगा।

गुलाम—स्वर्ग उन लोगों के लिये है, जो अपना गुस्सा रोकते हैं।

हुसैन—मुझे गुस्सा नहीं है।

गुलाम—और माफ़ करना जानते हैं।

हुसैन—अच्छा, मैंने तुझे माफ़ कर दिया।

गुलाम—क्योंकि ईश्वर दयालु है।

हुसैन—बहुत ठीक। अच्छा, आज से तू मेरा गुलाम नहीं रहा। मैंने तुझे गुलामी से छोड़ दिया।

हुसैन साहब अपना सब कष्ट भूल गए, अपना क्रोध भी भूल गए, और गुलाम की बातों से इतने खुश हुए कि उसे छोड़ दिया। गुलाम खुश होता हुआ चला गया।

ये गुलाम मोल खरीदे जाते थे। मालिक उनसे मनमाना काम लेते थे। उन्हें ज़िंदगी-भर मुफ़्त मालिक की सेवा करनी पड़ती थी। मालिक को बिना अपनी क़ीमत दिए वे गुलामी से न छूट सकते थे।

क्रोध बहुत ही बुरी चीज़ है। उससे आदमी को कभी कभी बड़े ही दुःख उठाने पड़ते हैं। क्रोधी आदमी को कोई अच्छा नहीं कहता। इसलिये क्रोध को छोड़ना ही ठीक है। क़सूर को माफ़ करनेवाले ही अच्छे और बड़े समझे जाते हैं।

१२—लेवेलन और उसका कुत्ता

बहुत दिन हुए, किसी देश में लेवेलन नाम का एक राजा राज्य करता था। उसे शिकार खेलने का बड़ा शौक़ था। उसने एक कुत्ता पाल रक्खा था, और उसका नाम रक्खा था गेल्र्ट। गेल्र्ट बड़ा बलवान् और शिकारी कुत्ता था। वह भी हमेशा राजा के साथ शिकार करने जाया करता था।

एक दिन लेवेलन कई आदमियों और कुत्तों को साथ लेकर शिकार खेलने गया। उस दिन गेल्र्ट उसके साथ नहीं गया था। राजा को यह बात मालूम न थी। जंगल में शिकार बहुत कम मिला। तब राजा को गेल्र्ट की याद आई।

कुत्तों में गेल्र्ट को न देखकर उसे बड़ा अचरज हुआ। उसने सिपाही से कहा—बिगुल तो बजाओ, गेल्र्ट कहाँ रह गया। वह तो बहुत ही होशियार और बलवान् कुत्ता है। अब तक तो उसने कितने जानवर शिकार कर लिए होते।

सिपाही ने बहुत बिगुल बजाया, पर वहाँ गेल्र्ट कहाँ था, जो राजा के पास दौड़कर आ जाता। कुत्ते के न मिलने से लेवेलन बहुत उदास हुआ, और शहर की तरफ लौटा। जब वह महल के पास पहुँचा, तब गेल्र्ट दौड़कर उसके पास आ गया। आज वह शिकार को न गया था, इसलिये राजा ने गुस्से से उसकी तरफ देखा। मालिक को गुस्सा होते देख कुत्ते को बड़ा अचरज हुआ, और वह दबककर उसके पैर चाटने लगा।

राजा ने देखा कि कुत्ते के मुँह और पैरों में खून लगा हुआ है। वह झपटकर महल में पहुँचा। इस समय रानी कहीं चली गई थी। लेवेलन फौरन् उस कोठरी में गया, जिसमें उसका बच्चा सोता था। वहाँ उसने देखा कि ज़मीन और दीवार पर खून की बूँदें पड़ी हुई हैं। बच्चे का पालना उलटा हुआ पड़ा है, और उसका बिछौना भी फट गया है।

यह देखते ही राजा ने समझा कि गेल्र्ट ने मेरे बच्चे को मार खाया। क्यों, तो बदन में खून नहीं। उसे बड़ा ही गुस्सा आया। उसने एकदम बिना सोचे-समझे तलवार उठाई, और गेल्र्ट पर चला दी। बेचारा गेल्र्ट इस समय बड़ी ही खुशी

से राजा के मुँह की तरफ़ देख रहा था। तलवार लगते ही वह बड़े ज़ोर से चिल्लाया, और वहीं ठंढा हो गया।

कुत्ते की चिल्लाहट से राजा का बालक, जो पालने के नीचे पड़ा सोता था, जाग उठा, और रोने लगा। बच्चे को ज़िंदा देख राजा को बेहद ख़ुशी हुई। उसने ज्यों ही पालना हटाया, त्यों ही उसने देखा कि बिछौने के नीचे एक बड़ा साँप मरा पड़ा है। अब लेवेलन की समझ में आया कि गेल्र्ट ही ने मेरे प्यारे बच्चे के प्राण बचाए हैं। अब तो राजा को अपनी ग़ल्ती पर इतना रंज हुआ कि वह कहने लगा—हाय! मैं भी कैसा पापी हूँ! जिस प्यारे कुत्ते ने मेरे बच्चे के प्राण बचाए, उसी उपकारी कुत्ते को मैंने नाहक़ मार डाला। अब ऐसा अच्छा कुत्ता कहाँ पाऊँगा! निदान, राजा ज़िंदगी-भर गेल्र्ट के लिये रंज करता रहा।

इसीलिये तो कहा है—

"बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय"

किसी भी काम को बिना ख़ूब सोचे-विचारे कर बैठना अच्छा नहीं।

१३—राजा सिदराक और लेयविन

क़रीब एक हज़ार बरस पहले की बात है, इँगलिस्तान के पश्चिमी किनारे पर नार्वे और डेनमार्क के बहुत-से डाकू

अकसर लूट-मार मचाए रहते थे। वे चुपचाप जहाजों में बैठकर आते और लूट-मार करने लगते थे। विलायतवाले उनके मारे बड़े हैरान रहते थे। उन दिनों डेनमार्क देश में राजा सिदराक राज्य करता था। वह बड़ा ही हिम्मतवर और बलवान् डाकू था। दिन-रात लूट-मार करना ही उसका काम था। डाके का माल पाकर वह बहुत खुश होता था।

इँगलिस्तान के पश्चिमी किनारे पर क्रोलैंड नाम की एक बड़ी सुंदर धर्मशाला थी। यहाँ हारे-थके और भूले-भटके मुसाफ़िर आते और बहुत आराम पाते थे। धर्मशाला में थियोडर नाम का एक महंत रहता था। वह बड़ा ही धर्मात्मा था। उसके पास पढ़ने के लिये दूर-दूर के विद्यार्थी आते थे। क्रोलैंड में खूब धन भी था।

क्रोलैंड की बड़ाई सुनकर सिदराक के मुँह में पानी भर आया। उसने अपने साथियों से कहा—सुनते हो, विलायतवाले खूब मालदार हो गए हैं। यहाँ बैठे-बैठे क्यों मक्खियाँ मारा करते हो। चलो, विलायत का धन हमें बुला रहा है। फ़ौरन् ही डाकुओं के जहाज तैयार किए गए, और वे बड़ी धूम-धाम से विलायत चले।

विलायत में भी यह खबर पहुँची। बेचारों के देवता कूच कर गए। क्रोलैंड के महंत थियोडर ने भी यह खबर सुनी। उसने अपने विद्यार्थियों से कहा कि तुम यह धन फ़ौरन् पास ही के कुएँ में छिपा दो, और अपने-अपने घर का रास्ता लो।

विद्यार्थियों ने धन छिपाकर महंतजी से कहा—आप भी यहाँ न रहिए, नहीं तो डाकू आपको मार डालेंगे। तब महंतजी ने उन्हें उत्तर दिया—वे मुझ बूढ़े को मारकर क्या करेंगे? तुम लोग घरों को जाओ। यह सुनकर बहुत-से विद्यार्थी तो चले गए, पर कुछ महंतजी के पास ही रह गए। इन्हीं में लेयविन नाम का एक बालक था।

दूसरे दिन सिदराक दल-बल-सहित वहाँ आ पहुँचा। उसने महंतजी से कहा—चुपचाप सब धन मेरे हवाले करो, नहीं तो मेरी यह तलवार है। बूढ़े महंत ने उसे कोई उत्तर न दिया। तब सिदराक ने उसे फ़ौरन् मार डाला। धर्मशाला के और भी कई लड़के मारे गए। जब सिदराक ने लेयविन को मारने के लिये तलवार उठाई, तब लेयविन ने उसे जवाब दिया कि तुम मेरे शरीर को ख़ुशी से मार डालो, पर मेरी आत्मा को न मार सकोगे। यह सुनकर सिदराक बहुत ख़ुश हुआ। वह लेयविन से बोला—आह! बच्चे, तुम तो बड़े ज्ञानी निकले। अब मैं तुम्हें न मारूँगा, तुमसे ज्ञान की बातें सीखूँगा। अच्छा, तुम आज से मेरे सेवक हुए। यह कहकर सिदराक ने लेयविन के गले में एक पीला रुमाल लपेट दिया।

डाकू लोग आगे के नगर लूटने चले गए। लेयविन को भी सिदराक के साथ जाना पड़ा। पर वह रात ही को धोखा देकर फिर क्रोलैंड में लौट आया। उसे पाकर वहाँवाले बहुत ख़ुश हुए।

इँगलिस्तान के राजा एडवर्ड ने डाकुओं को ठीक करने के लिये बहुत-सी फ़ौज भेजी। बहुत-से डाकू मारे गए, बहुत-से पकड़ गए, और बहुत-से भाग गए। एक दिन लेपविन को जंगल में एक ऐसा डाकू मिला, जो बहुत ही घायल होकर बेहोश पड़ा था, और पहचाना नहीं जाता था। लेपविन को उस पर दया आ गई, और वह उसे अपने साथियों की सहायता से कोलेज में ले आया। उसे देखकर कई लोग लेपविन से कहने लगे—इस मुर्दे को यहाँ क्यों ले आए, यह अब थोड़े ही बचेगा। जानते नहीं हो, यह अपना बैरी है, इसने अपना बहुत नुक़सान किया है।

पर लेपविन ने किसी की बातों पर ख़याल न किया। डाकू बहुत दिन तक कोलेज में पलँग पर पड़ा रहा। लेपविन बराबर दिन-रात उसकी सेवा करता था। अंत में डाकू अच्छा हो गया, बुख़ार जाता रहा, और घाव पुर आए। उसे अच्छा हुआ देख लेपविन बहुत प्रसन्न हुआ, और कहने लगा—ईश्वर की बड़ी कृपा है, जो आप अच्छे हो गए। अब आप ख़ुशी से अपने घर जा सकते हैं।

डाकू—लेपविन, पहचानते हो, मैं कौन हूँ?

लेपविन—नहीं।

डाकू—मैं वही सिदराक हूँ, जिसने तुम्हारे गुरु को मार डाला है, और तुम्हारी धर्मशाला उजाड़ डाली है।

लेपविन—अच्छा! मैं तुम्हें इस वेश में पहचान न

सका। यह तो और भी ख़ुशी की बात है कि मैंने सबसे बड़े डाकू की सेवा की।

सिदराक—लेयविन! मैंने तुम्हारा इतना नुक़सान किया, फिर भी तुमने मेरे प्राण बचाए, मेरी सेवा की, यह क्या बात है?

लेयविन—इसमें बात-वात कुछ नहीं है। आप भी आदमी हैं, मैं भी आदमी हूँ। यदि आदमी ही आदमी पर दया न करेगा, तो कौन करेगा? आदमी पर दया करने ही के लिये तो ईश्वर ने मनुष्य को पैदा किया है। भगवान् ईसा हमारे गुरु हैं। उन्होंने हमें उपदेश दिया है कि तुम अपने दुश्मनों पर दया करो, उन पर प्रेम करो, उनका भला करो। इसीलिये मैंने आपके साथ ऐसा बर्ताव किया है।

लेयविन की बातें सुनकर सिदराक बहुत शरमाया। उसने कान पकड़ा, और कहा—अब से कभी डाके का नाम न लूँगा। सिदराक लेयविन से मिलकर अपने देश लौट गया, और फिर उसने हमेशा के लिये लूट-मार बंद कर दी।

आशा है, यह कहानी पढ़कर आप लोग भी लूट-मार बंद कर देंगे, न कभी किसी की चीज़ चुराएँगे, और न किसी से लड़ाई-झगड़ा करेंगे। अपने दुश्मन से भी प्यार करना सीखेंगे, और उसकी भलाई भी करेंगे, फिर आप भी भलाई पाएँगे।

१४—नौशेरवाँ और उनका गुलाम

नौशेरवाँ ईरान के बादशाह थे। बहुत ही दयालु और इन्साफ़-पसंद थे। इसी से आज तक दुनिया में उनका नाम बना है। एक बार वह भोजन कर रहे थे। रसोइया भोजन लाया, तो उसकी असावधानी से कुछ शोरवा छलककर बादशाह के कपड़ों पर गिर गया। फ़ौरन् उन्हें गुस्सा आ गया, त्योरियाँ चढ़ गईं, मारे गुस्से के होंठ चबाने लगे। यह देखकर रसोइए के प्राण काँप उठे। वह समझ गया कि अब जान बचना मुश्किल है। पर उसने हिम्मत करके प्याले का बाकी शोरवा भी उनके कपड़ों पर उँडेल दिया, और हाथ जोड़, घुटने टेक उनके सामने बैठ गया।

अब तो बादशाह को बड़ा ही अचरज हुआ। उन्होंने डाँट कर रसोइए से पूछा—क्यों रे बदमाश, तूने जान-बूझकर क्यों यह शरारत की, क्या तुझे अपनी जान बिलकुल प्यारी नहीं?

रसोइए ने जवाब दिया—हुज़ूर, आपके गुस्से को देख कर मैं समझ गया कि अब मेरी जान बचनी मुश्किल है। लेकिन मुझे फ़ौरन् ख़याल आया कि लोग कहेंगे, आपको ज़रा-सा शोरवा गिर जाने ही से इतना गुस्सा आ गया कि आपने एक आदमी की जान ले डाली। इससे लोग आपकी बदनामी करते, आपको ज़ालिम कहते। इसी से मैंने आपके

कपड़ों पर जान-बूझकर बहुत-सा शोरबा उँडेल दिया। अब लोग मुझे ही कुसूरवार समझेंगे, और कोई आपकी बदनामी न करेगा।

रसोइए की यह चतुराई-भरी बात सुनकर नौशेरवाँ को हँसी आ गई। उन्होंने उसका क़सूर माफ़ कर दिया।

१५—हुसेन की हिम्मत

योरप में टर्की नाम का एक देश है। वहाँ मुसल्मानों का राज्य है। वहाँ के रहनेवाले तुर्क कहलाते हैं। तुर्क लोग बड़े ही बहादुर और लड़ाकू होते हैं। बालक हुसेन इसी टर्की देश का रहनेवाला था। उसका बाप फौज में सिपाही था। एक बार कुछ दुश्मनों ने टर्की पर चढ़ाई कर दी। अपने देश की रक्षा के लिये हुसेन का बाप भी दुश्मनों से लड़ने गया। हुसेन को भी दुश्मनों पर बहुत गुस्सा आया, और उसने लड़ाई में जाने की इच्छा की। पर बाप ने उससे कहा—बेटा, अभी तुम छोटे हो, पहले बड़े तो हो लो, फिर ख़ुशी से लड़ाई में जाना। मैं तुम्हें मना थोड़े ही करता हूँ।

आख़िर, हुसेन का बाप लड़ाई में दुश्मनों के हाथों मारा गया। यह ख़बर सुनकर हुसेन को बड़ा रंज हुआ। अब तो उसे दुश्मनों पर बहुत ही गुस्सा आया। उसने

उसी समय मन में ठान लिया कि यदि मैंने दुश्मनों से बदला न लिया, तो मेरा नाम हुसेन नहीं।

एक दिन हुसेन फ़ौज के अफ़सर के पास जा पहुँचा। उसने अफ़सर को सलाम किया, और उससे कहा—ज़रा आप मुझे बन्दूक तो दीजिए। मैं अभी दुश्मनों को मारकर अपने वालिद की मौत का बदला वसूल करता हूँ। हुसेन की बातें सुनकर अफ़सर ने उससे कहा—शाबाश बहादुर बच्चे! मैं तुम्हें ज़रूर बन्दूक दूँगा, पर अभी नहीं, पहले बड़े हो जाओ। यह कहकर अफ़सर ने उसे खूब प्यार किया, और अपने पास ही रख लिया। अफ़सर की बातें सुनकर हुसेन को बड़ा रंज हुआ। वह तो यही चाहता था कि कब मुझे बंदूक मिले, और कब मैं दुश्मनों पर गोलियाँ बरसाऊँ।

बन्दूक न मिलने से हुसेन बहुत रंजीदा हुआ। एक दिन मौका पाकर वह छावनी से निकल भागा, और लड़ाई के मैदान में जा पहुँचा। वहाँ उसे एक मरे हुए सिपाही की बंदूक मिल गई। पास ही पड़े हुए थोड़े-से कारतूस भी उसने उठा लिए। अब तो हुसेन की खुशी का ठिकाना न रहा। उसने तुरंत ही छिपकर दुश्मनों पर दनादन गोलियाँ बरसाना शुरू कर दीं। उसकी गोलियों से कितने ही दुश्मन मारे गए। उसकी बहादुरी और हिम्मत देखकर सब लोग बहुत खुश हुए। अफ़सर ने आकर उसे छाती से लगा लिया, और खूब प्यार किया।

जब टर्की के बादशाह ने हुसेन की बहादुरी का हाल सुना, तब वह भी बहुत खुश हुए। उन्होंने फौरन् हुसेन को अपने पास बुलाया, और उसे बहुत-सा इनाम देकर फौज में अफसर की जगह दी। इसके बाद हुसेन ने बहादुरी के और भी कुछ काम किए।

सब बालकों को चाहिए कि वे भी देश को प्यार करना सीखें, और हिम्मत से काम लें।

१६—नेपियर साहब की हिम्मत

नेपियर साहब मध्यप्रदेश में एक अँगरेज अफसर हो गए हैं। आप बड़े ही दयालु और धर्मात्मा थे। मध्यप्रदेश के लोग अब तक आपकी भलाइयाँ नहीं भूले। आपने क्या गरीब और क्या अमीर, सबके साथ एक-सी भलाइयाँ की थीं। मामूली किसान तक नेपियर साहब को अपना सुख-दुःख सुना सकते थे। कई लोगों को आपने अपनी गाँठ से रुपए देकर कर्जे के पंजे से छुड़ाया। कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि कोई बड़ा आदमी रुपए की कमी से बरबाद होने जा रहा है, तो नेपियर ने चुपचाप उसके पास रुपए भेज उसे आफत से बचा लिया। कभी-कभी आपने ऐसे कुटुंबों का पालन-पोषण भी किया, जिनके पालनेवालों को जेल की सजा हो गई थी। बहुत-से विद्यार्थियों को आप अपने पास से

खर्च देकर पढ़ाते थे, और कई को तो विलायत भिजवाकर पढ़ाया था।

परोपकार के लिये तो नेपियर साहब अपने प्राण तक हाथ पर लिए रहते थे। एक बार बहुत पानी बरसा। रात-दिन झड़ी लगी रही। पानी कहता था कि मैं आज छोड़ कल न बरसूँगा। नगर में पानी-ही-पानी दिखाई पड़ता था। नगर के सामने पानी की बड़ी धारा तेज़ी से बह रही थी। उस तरफ़ तालाब था, वह पानी से ठिल रहा था। डर इस बात का हो रहा था कि अगर थोड़ी देर और वर्षा हुई, तो नगर-भर डूब जायगा। नगर को बचाने के लिये इस बात की ज़रूरत थी कि तालाब का बाँध तोड़कर पानी बहा दिया जावे। कई लोगों से कहा गया—उनके सामने रुपयों की थैलियाँ रक्खी गई, पर किसी की हिम्मत तालाब तक जाने की न पड़ती थी। हज़ारों आदमी खड़े-खड़े पलकें झाँक रहे थे। किसकी जान भारी थी, जो नदी की तेज़ धार को पार कर तालाब तक जाता।

इसी समय नेपियर साहब शहर की हालत देखने आए। शहर का यह हाल आपसे न देखा गया। आप अपने एक अँगरेज़ मित्र के साथ फ़ौरन् उस पार जाने को तैयार हुए। दोनो साहब कमर में रस्से बाँधकर बबूल के पेड़ों से बाँध दिए गए। इसके बाद दोनो मित्र फावड़े लेकर धार में पैठ पड़े। दोनो प्राणों को हथेली पर लेकर तैरने लगे, और

उस पार पहुँच गए। फिर क्या था, तालाब पर फावड़े की चोटें पड़ने लगीं, थोड़ी ही देर में तालाब का बाँध टूट गया। इस तरह नेपियर साहब ने अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर शहर को बचा लिया! नेपियर साहब ने इस समय कई ऐसे लोगों को भी खूब सहायता दी थी, जो ज़्यादा पानी बरसने से बिना घर-बार के हो गए थे। आज भी नरसिंहपुर के लोग प्रेम से नेपियर साहब की यह कहानी सुनाया करते हैं।

जब नेपियर साहब अपने देश को जाने लगे, तब मध्यप्रदेश के लोगों को बड़ा रंज हुआ।

धन्य हैं वे लोग, जिनसे लोग ऐसे खुश रहते हैं। बालको, तुम भी ऐसे काम करना, जिससे तुम्हारा नाम बढ़े, और सब लोग तुम्हें चाहें।

१७—कुतुबुद्दीन की कहानी

मुहम्मद गोरी अफ़ग़ानिस्तान देश के बादशाह थे। एक दिन उनके पास एक सौदागर अपना गुलाम बेचने के लिये आया। उसकी अच्छी सूरत-शक्ल देख और प्यारी-प्यारी बातें सुन गोरी ने उसे फ़ौरन् ख़रीद लिया। इस गुलाम का नाम क़ुतुबुद्दीन था। क़ुतुबुद्दीन का अच्छा चाल-चलन देख बादशाह बहुत खुश रहते थे। उसका स्वभाव छुटपन से ही

दयालु था। वह अपने साथियों को खूब चाहता और मौका पड़ने पर उनकी सहायता भी किया करता था।

एक रात को मुहम्मद गोरी के यहाँ एक बड़ा जल्सा हुआ। जल्सा खत्म होने पर उन्होंने अपने सब नौकरों को इनाम बाँटा। कुतुबुद्दीन को भी इनाम मिला, पर उसने अपना सब इनाम अपने साथी नौकरों को बाँट दिया। यह देखकर मुहम्मद गोरी आग हो उठा। कड़ककर कुतुबुद्दीन से पूछा—क्यों रे गुलमटे! मैंने तो तुझे प्यार से इनाम दिया, और तूने उस इनाम की कुछ परवा न की। ऐसा क्यों किया? कुतुबुद्दीन ने हाथ जोड़ और समझकर जवाब दिया—हुजूर, इस गुलाम पर आपकी हमेशा मिहरवानी रहती है, जिससे मुझे अब किसी चीज की जरूरत नहीं रही। इनाम को पास रखना मैं केवल एक बोझ समझता हूँ। मुझे आपसे बहुत इनाम मिल चुके, अब केवल आपकी मिहरवानी चाहता हूँ। इस जवाब से गोरी का गुस्सा जाता रहा। वह इतने खुश हुए कि उन्होंने फौरन् कुतुबुद्दीन का दर्जा बढ़ाकर उसे अपने घोड़ों का दारोगा बना दिया। उस दिन से कुतुबुद्दीन को रोज बादशाह के दर्शन होने लगे। वह हमेशा बादशाह को खुश करने का उपाय करता रहता था।

कुतुबुद्दीन बचपन ही से होशियार और चतुर था। तीर चलाने और घोड़े की सवारी करने में तो वह एक ही था। उसके इन गुणों के कारण मुहम्मद गोरी उसे बहुत चाहते

और लड़ाई में भी अपने साथ ही रखते थे। एक बार मुहम्मद गोरी ने हिंदुस्तान पर चढ़ाई कर दी। उस समय दिल्ली में पृथ्वीराज चौहान राज्य करते थे। कुतुबुद्दीन भी गोरी के साथ आया था। गोरी पृथ्वीराज को हटाकर आगे बढ़े। उन्होंने कन्नौज के राजा जयचंद से लड़ाई छेड़ दी। कुतुबुद्दीन ने बड़ी ही सफ़ाई से तीर चलाया, और वह जयचंद की आँख में इस ज़ोर से लगा कि उसका काम तमाम हो गया। इस लड़ाई में इतने आदमी मारे गए कि सारे मैदान में लाशों का बिछौना बिछ गया। कौन लाश किसकी है, यह पह-चानना भी कठिन हो गया।

इस लड़ाई की जीत से ३०० हाथी और बहुत-सा धन कुतुबुद्दीन के हाथ लगा। कुतुबुद्दीन ने ये हाथी और सब धन गोरी के पास भेज दिए। हाथी जब गोरी के सामने आए गए, तब महावतों ने सब हाथियों से सलाम कराया, पर उनमें एक सफ़ेद हाथी बिगड़ेदिल था। उसने बादशाह को सलाम न किया। महावत न मारे अंकुशों के उसका माथा छेद डाला, पर उसने एक न मानी। कुछ दिनों बाद जब गोरी अपने देश को लौटे, तो कुतुबुद्दीन को यहीं छोड़ दिया। जाते वक्त कुतुबुद्दीन ने बहुत-सा धन और वह सफ़ेद हाथी गोरी के पास भेजा। कुतुबुद्दीन इस हाथी को बहुत चाहते थे। वह हमेशा इसी पर सवारी करते थे।

मुहम्मद गोरी के बाद कुतुबुद्दीन ही हिंदुस्तान के बाद-

शाह हुए। उन्होंने चार साल तक राज्य किया। इसी बीच में उन्होंने कुतुबमीनार बनवाया। यह मीनार कोई २५० फुट ऊँचा है। इस पर खड़े होने से दूर-दूर की चीजें दिखाई देती हैं। एक दिन कुतुबुद्दीन पोलो खेल रहे थे। घोड़े पर से गिर पड़ने के कारण उनकी मृत्यु हो गई। उनके मरने से उस सफ़ेद हाथी को भी इतना रंज हुआ कि उसने खाना-पीना ही छोड़ दिया। इसी रंज में उसके प्राण निकल गए।

१८—बाबर और उनके साथी

हिंदुस्थान में जिन मुसल्मान बादशाहों ने राज्य किया है, उनमें बाबर भी एक हो गए हैं। बाबर बड़े ही अच्छे बादशाह थे। बाबर शब्द का मतलब है शेर। बाबर सचमुच शेर के समान बली थे। एक बार बातों-ही-बातों में आपने अपनी दोनों बगलों में एक-एक जवान आदमी दबा लिया, और शहर की एक ऊँची दीवार पर दौड़ लगाने लगे। घोड़े पर सवार होकर आप एक दिन में पचास-पचास कोस तक चले जाते थे। तैरने का भी आपको बड़ा शौक़ था। बड़े-बड़े तैराक आपका मुक़ाबला न कर सकते थे। कैसी ही गहरी या चौड़ी नदी क्यों न हो, आप उसे तैरकर ही पार करते थे।

बाबर जैसे बहादुर थे, वैसे ही दयालु भी थे। वह अपने साथियों और सिपाहियों को भी खूब चाहते थे, इसलिये वे भी उन्हें खूब चाहते थे—यहाँ तक कि वे उनकी आज्ञा के सामने अपने प्राणों की भी परवा न करते थे। एक बार की बात सुनिए। बाबर अपने साथियों के साथ कहीं जा रहे थे। आप रास्ते ही में थे कि सूरज डूब गया। चारो तरफ अँधेरा छा गया। इतने में आसमान में बादल घिर आए, और अर्राटे से पानी बरसने लगा। अब तो सब लोग बड़ी आफ़त में पड़ गए, और ईश्वर से प्रार्थना करने लगे।

जंगली जानवरों का डर तो था ही, सर्दी भी कड़ाके की पड़ रही थी। खुले मैदान में ठहरना बहुत मुश्किल था। दाँत कट-कट बजते थे, हाथ-पाँव ऐंठे जाते थे, शरीर का खून जमा जाता था। पास ही एक गुफा थी, जिसमें आराम से रात कट सकती थी, पर वह इतनी बड़ी न थी कि सब लोग उसमें समा जाते। साथियों ने बाबर से कहा—आप भीतर चलकर आराम कीजिए, हम लोगों की फ़िक्र न कीजिए। हम लोग तो घोड़ों की पीठ पर ही रात काट लेंगे।

पर बाबर ने ये बातें कहाँ सीखी थीं! आपने साथियों से कहा—वाह! यह कैसे हो सकता है कि मैं गुफा में पड़ा-पड़ा मौज करूँ, और तुम यहाँ बैठे-बैठे अकड़ते रहो! अगर गुफा में सब लोगों के लायक़ जगह नहीं है, तो मैं भी यहीं रहकर रात बिताऊँगा। इतना कहकर आप वहीं

बैठ गए। कुछ साथी एक बड़ी-सी गुफा की खोज के लिये चले गए।

अब ठंड और ज़ोर से पड़ने लगी—बर्फ़ गिरना शुरू हो गया। अब तो सबको ख़ुदा की याद आने लगी। बाबर के नाक-कान पर चार बार बर्फ़ जम गई। इतने में वे साथी गुफा की तलाश करके लौट आए। उन्होंने कहा—पास ही एक इतनी बड़ी गुफा है, जिसमें हम लोग मज़े से आराम कर सकते हैं। तब बाबर सब साथियों के साथ उस गुफा में गए, और सबने आराम से रात काटी। सवेरा होते ही ये लोग आगे चले गए।

१९—बाबर और सौदागर

बाबर बादशाह में कई अच्छे गुण थे। उनको लोभ तो छू भी न गया था। वह किसी की चीज़ को अपनी कर लेना पाप समझते थे। वह अपनी बहादुरी से राज्य तो जीत लेते थे, पर कभी व्यापारी, किसान या ग़रीब लोगों को न लूटते थे।

एक बार चीन देश के कुछ व्यापारी लाखों रुपए के जवाहर लिए बाबर के राज्य के एक पहाड़ पर से जा रहे थे। रात हो जाने से ये लोग उसी पहाड़ पर ठहर गए। कुछ रात जाने पर, ज़ोरों से बर्फ़ गिरना शुरू हो गया।

इतना बर्फ गिरा कि व्यापारियों का सब माल उसके नीचे दब गया। सवेरा होने पर उन लोगों ने माल को निकालने की बड़ी कोशिश की, पर माल न निकाल सके। तब बेचारे रो-गाकर वहाँ से चले गए।

कुछ दिन बाद बर्फ गल गया, और वह माल आप-से आप बाहर निकल आया। वहाँ से बाबर के कुछ साथी जा रहे थे। वे वह माल बाबर के पास ले आए। उन लोगों ने बाबर को माल मिलने का सब हाल सुना दिया। बाबर ने माल को हिफ़ाज़त से रख दिया, और चारो तरफ ढिंढोरा पिटवा दिया कि जिसका माल पहाड़ पर रह गया हो, वह बादशाह से मिले, और अपना माल ले जावे।

ढिंढोरा सुनकर वे चीनी व्यापारी बाबर के पास आए। उन्होंने बादशाह को सब हाल सुना दिया। बाबर ने उनका बड़ा आदर किया, और फिर उनका माल उनके हवाले कर दिया। व्यापारी खुश होकर बाबर की तारीफ करते हुए चले गए।

२०—राजकुमार और लकड़हारा

एक बार इँगलिस्तान में बड़ा गड़बड़ हुआ। कारण यह था कि राजा के इंतज़ाम से प्रजा को सुख तो नहीं होता था, दुख ही उठाना पड़ता था। प्रजा ने राजा से

कहा—महाराज, देखिए, हम लोग आपकी बदौलत कष्ट उठा रहे हैं। ज़रा हमारे सुख-दुख की तरफ भी तो ध्यान दिया कीजिए। पर राजा साहब क्यों मानने चले। उन्होंने सोचा, आदमी हैं, ऐसा तो कहते ही रहते हैं। इन्हें कष्ट ही क्या है। भरपेट खाने को मिलता है, इसी से सब बातें सूझ रही हैं।

जब प्रजा ने देखा कि राजा साहब हमारी बातों पर ध्यान ही नहीं देते, अपने ही काम से मतलब रखते हैं, तब तो यह बिगड़ खड़ी हुई। प्रजा के मुखिया क्रामवेल साहब ने राजा को पकड़ पकड़कर निकाल बाहर किया। राजकुमार चार्ल्स प्राण लेकर भाग गया। क्रामवेल ने उसे पकड़ लाने-वाले को पचास हजार रुपए का इनाम बोला। बेचारा राज कुमार छिपा-छिपा फिरता था। उसने अपने बड़े-बड़े बाल कटवा डाले, और मज़दूर के वेष में रहने लगा। यद्यपि दो एक आदमियों ने उसे पहचान भी लिया, पर उन्होंने उसे पकड़वाना ठीक न समझा।

एक दिन राजकुमार को रिचर्ड पेंडरेल नाम के एक लकड़हारे के यहाँ छिपना पड़ा। उसकी बातचीत और चाल से पेंडरेल उसे पहचान तो गया, पर यह भेद उसने कहा किसी से नहीं। धोके से किसी को फँसा देने के बदले पेंडरेल मरने को कहीं अच्छा समझता था।

एक दिन पेंडरेल को खबर मिली कि क्रामवेल के सिपाही

राजकुमार को ढूँढ़ते हुए इसी तरफ़ आ रहे हैं। अब पेंडरेल ने राजकुमार को अपने घर में रखना ठीक न समझा, क्योंकि पता लग जाने पर राजकुमार तो पकड़ ही जाता, पर अपनी भी ख़ैरियत न थी। पेंडरेल दयालु ही नहीं, चतुर भी था। वह फ़ौरन् राजकुमार को एक जंगल में ले गया, और उसे एक घने पेड़ पर छिपाकर बैठा दिया। क्रामवेल के सिपाही दिन-भर जंगल में ढूँढ़ते रहे, वे कई बार उस पेड़ के नीचे से भी निकल गए, पर उन्हें यह न जान पड़ा कि राजकुमार इसी पेड़ पर है। इसीलिये तो कहा जाता है, जिसे बचानेवाला ईश्वर है, उसे कौन मार सकता है।

राजकुमार सारे दिन उसी जगह छिपा रहा। यदि पेंडरेल उस दिन केवल राजकुमार की तरफ़ उँगली भर का इशारा कर देता, तो उसे एकदम पंद्रह हज़ार रुपए मिल जाते, और उसकी सब ग़रीबी दूर हो जाती। पर पेंडरेल ऐसा आदमी न था। ग़रीब होने पर भी वह लोभी न था, और ऐसे पाप से मिलनेवाले पैसे को वह घृणा से देखता था। वह समझता था कि परोपकार ही सबसे अच्छा धन है। जिसके पास यह धन है, उसके पास ईश्वर की कृपा से किसी चीज़ की कमी नहीं रह सकती।

जब रात हो गई, और पेंडरेल ने देखा कि क्रामवेल के सिपाही राजकुमार को न पाकर नाउम्मेद हो चले गए हैं, तब उसे बड़ी ख़ुशी हुई। वह जंगल में गया, और राज

कुमार को पेड़ से उतारकर लेन नाम के एक साहब के पास ले गया। यह साहब भी बड़े दयालु थे। उनकी बहन फ्रांस देश को जा रही थी। राजकुमार भी भेस बदलकर उसी के साथ फ्रांस को चला गया। इस तरह पेंडरेल की दया से उसके प्राण बचे।

दूसरे को दुख पहुँचाकर पैसा लेना बड़े पाप का काम है। यदि हम दुखी आदमी की सहायता नहीं कर सकते, तो उस लकड़हारे से भी गए-बीते हैं—बड़े भी हुए तो क्या।

२१—न्यूटन और उसकी प्रतिज्ञा

जिस विज्ञान की बदौलत आज धकधकाती हुई रेलगाड़ियाँ दौड़ती हैं, आसमान में हवाई जहाज उड़ते हैं और दम-भर ही में बंबई से कलकत्ते खबर पहुँच जाती है, वह करीब ढाई सौ बरस पहले बिलकुल खराब हालत में था। न्यूटन साहब ने विज्ञान की बड़ी तरक्की की, जिससे दुनिया को बहुत लाभ हुआ। उन्होंने पहलेपहल दूरबीन बनाई थी। न्यूटन साहब इंगलिस्तान देश में पैदा हुए थे।

बालक न्यूटन अपने ही गाँव की पाठशाला में पढ़ने जाया करता था, पर लिखने-पढ़ने में उसका मन न लगता था। दर्जे के और लड़के तो अपना पाठ याद करते थे, खूब नंबर पाते थे, पर न्यूटन को इसकी परवा ही न थी। वह

हमेशा यंत्रों को देखा करता, और उनके बनाने ही में मन लगाता। इसका नतीजा यह हुआ कि वह दर्जे में भोंदू और आलसी समझा जाने लगा।

एक दिन न्यूटन ने अपना सबक़ याद न किया। सब लड़कों ने तो धड़ाधड़ गुरुजी को सबक़ सुना दिया, पर न्यूटन नीचा सिर किए ही खड़ा रहा। मौक़ा पाकर उसके एक साथी विद्यार्थी ने उससे कहा—कहिए भोंदूमलजी! कुछ सबक़-सबक़ भी याद करते हो, या यों ही दिन-रात मक्खियाँ मारा करते हो? न्यूटन को उस विद्यार्थी की इस दिल्लगी से बड़ा दुख हुआ। उसने विद्यार्थीजी को उत्तर दिया—रहो बच्चू! बड़े होशियार बने फिरते हो। अब देखूँगा, तुम कितने होशियार हो।

न्यूटन ने उसी समय पक्का इरादा कर लिया कि अब मैं जब तक खूब पढ़-लिखकर होशियार न बन जाऊँगा, तब तक किसी से बातचीत भी न करूँगा। उसने ऐसा ही किया। वह खूब मन लगाकर अपना सबक़ याद करने लगा। जब तक वह सबक़ याद न कर लेता, तब तक भोजन भी न करता। अंत में उसने अपने साथी सब विद्यार्थियों का नंबर ले लिया। अब वह दर्जे में, हरएक विषय में, औवल रहने लगा। गुरु लोग उसकी तारीफ़ करने लगे। जब न्यूटन ने एम० ए० का इम्तहान पास कर लिया, तब कहीं उसे चैन पड़ी।

मेहनत करने से सब कुछ हो सकता है, मन लगाने से सब

उनके अपना सबक याद कर सकते हैं। न्यूटन साहब बड़े होने पर अच्छे विद्वान् हुए। लोगों की भलाई के लिये उन्होंने अच्छी-अच्छी बातें ढूँढ़ निकालीं। सब तरफ़ उनका नाम फैल गया।

२२—न्यूटन और उसका कुत्ता

न्यूटन साहब बड़े ही बुद्धिमान् थे। जब आप शाला में पढ़ने जाते, तब अक्सर वहाँ रक्खे हुए यन्त्रों या घड़ियों को देखा करते। छुट्टी होने पर और विद्यार्थी तो खेल-कूद में लग जाते, पर न्यूटन साहब उन्हीं यंत्रों पर नजर गड़ाए बैठे रहते, और उनके बनाने की तरकीबें सोचा करते। यंत्र बनाने का इतना शौक़ था कि आप हमेशा बसूला, रेती, बर्मा आदि औज़ार साथ लिए फिरते थे।

न्यूटन के पड़ोस में एक ऐसी चक्की थी, जो हवा के ज़ोर से चलती थी। आपने सोचा, अगर मैं भी ऐसी चक्की बनाऊँ, तो बड़ा मज़ा आए। बस, आप उसी दिन से चक्की बनाने में भिड़ गए। रात दिन खटाखट औज़ार चलते रहते। अंत में न्यूटन ने एक बड़ी सुंदर और छोटी-सी चक्की बना ही तो ली। कभी-कभी आप अपनी चक्की घर के छप्पर पर रख देते, और जब वह हवा के ज़ोर से चलने लगती, तब उसका घूमना देख-देख आप बहुत ही ख़ुश होते थे।

एक दिन दिल्लगी-दिल्लगी में न्यूटन के एक मित्र ने उन्हें

एक पुराना और सड़ा संदूक दे दिया। आपने उससे कहा—अच्छा देखो, मैं इस सड़े संदूक से कैसी अच्छी चीज़ बनाता हूँ। घर आकर आप बड़े सोच में पड़े कि इस सड़ियल संदूक को कैसे ठिकाने लगाऊँ। एक दिन आपने एक पन-घड़ी देखी। बस, घर आकर आप लगे संदूक पर वसूला चलाने और पन-घड़ी बनाने। अंत में आपने एक अच्छी पन-घड़ी बना डाली। इस घड़ी का मुँह तो आजकल की घड़ियों के ही समान था, पर सुई एक लकड़ी में जड़ी थी। जब लकड़ी पर पानी की धारा गिरती, तब सुई चलती थी।

इस तरह न्यूटन बड़े ध्यान से एक-एक चीज़ को देखता और वैसी ही चीज़ें बनाया करता था। अगर तुम चाहो, तो ध्यान से एक चीज़ देखकर दूसरी चीज़ बना सकते हो। फिर तो तुम्हारी कहानी भी किताबों में छापी जायगी। क्या तुम अपनी कहानी नहीं छपवाना चाहते? अच्छा, अब न्यूटन और उसके कुत्ते की भी कहानी सुन लो।

न्यूटन ने एक झबरा कुत्ता पाल रक्खा था। उसका नाम था टामी। न्यूटन और टामी में बड़ी दोस्ती थी। दोनो दोस्त अक्सर साथ-साथ घूमने-फिरने जाया करते थे। न्यूटन और टामी खेल भी खूब खेलते थे। जब टामी खेल में हार जाता, तब वह नाराज़ हो उठता था, पर न्यूटन उसे पुचकारकर मना लेता था।

एक दिन न्यूटन शाम को घूमने चला गया। उस दिन टामी उसके साथ न गया। तब न्यूटन ने उसे समझा दिया—

देखो भाई, घर की रखवाली अच्छी तरह करना। ऐसा न हो कि कुछ उपद्रव कर बैठो। इतना कहकर न्यूटन बाहर चला गया। न्यूटन को लिखने-पढ़ने का खूब शौक था। उसने बहुत बरसों की मिहनत से कुछ कागज़ लिखे थे। उस दिन वे सब कागज़ टेबुल पर ही रक्खे थे। उसी पर जलता हुआ चिराग भी रक्खा था। न्यूटन के जाते ही टामी महाशय को खेलने का शौक सवार हुआ। आप घर-भर में उछलने-कूदने लगे। एक बार आपने जो छलाँग मारी, तो एकदम टेबुल पर सवार हो गए, और आपकी पूँछ ने चिराग को लुढ़का दिया।

थोड़ी देर बाद न्यूटन घर लौट आया। घर में अँधेरा देख उसे कुछ अचरज हुआ। दियासलाई जलाकर उसने उजेला किया, तो क्या देखता है कि टेबुल अधजली पड़ी हुई है, उसकी बरसों के मिहनत से लिखे हुए कागज़ राख हो गए हैं, और टामी महाशय चुपचाप एक कोने में बैठे हैं। और कोई होता, तो मारे गुस्से के मार-मारकर टामी का कचूमर निकाल देता। पर न्यूटन तो गुस्सा करना जानता ही न था, उसने टामी से यही कहा—क्यों मेरे शैतान दोस्त, क्या तुम जानते हो कि तुमने मेरा कितना भारी नुकसान कर डाला है?

समझदार लोग गुस्सा नहीं करते, क्योंकि इससे एक तो शरीर को कष्ट पहुँचता है, और दूसरे, कई तरह का नुकसान भी हो जाता है। गुस्सा बहुत बुरी चीज़ है।

२३—बर्कले और डाकू

लार्ड बर्कले विलायत के एक अमीर आदमी थे। आप बहादुर और हिम्मतवर थे। डर क्या चीज है, यह तो आप जानते ही न थे। आप बातचीत करने में भी बड़े चतुर थे।

एक दिन आप रात को गाड़ी में बैठे जा रहे थे। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। आप मजे से हवा के झोंके लेते हुए जा रहे थे। इतने में एक डाकू एकाएक गाड़ी के पास आ पहुँचा। उसने गाड़ी की खिड़की के भीतर अपनी पिस्तौल घुसेड़ और लाट साहब की छाती से सटाकर कहा—बस, फ़ौरन् रुपया रख दो! नहीं तो हाँ! लुटेरे ने फिर लाट साहब से कहा—जनाब, मैंने सुना है, आप कहा करते हैं कि मैं अकेले-दुकेले डाकू से ज़रा भी नहीं डरता, अकेला-दुकेला डाकू मेरा कुछ नहीं कर सकता। आज देखता हूँ कि आपमें कितनी हिम्मत है, आपका घमंड कितना है। बस, देर न कीजिए, जल्दी से रुपए मेरे हवाले कीजिए। नहीं तो मेरी गोली चलने में देर नहीं है।

लाट साहब सँभलकर बैठ गए। उन्होंने पॉकिट में हाथ डालते हुए लुटेरे से कहा—तू जो कुछ कह रहा है, वह बिल्कुल सच है। यदि तेरे पीछे दूसरा डाकू न खड़ा होता, तो मैं तुझे इस डाकेजनी का मज़ा चखा देता।

यह सुनते ही डाकू ने घबराकर पीछे की तरफ देखा। व्हाट साहब ने बिजली के समान चमककर पॉकेट से अपनी पिस्तौल निकाली, और दन से डाकू पर छोड़ दी। डाकू चीखकर कटे पेड़ के समान धड़ से ज़मीन पर गिर पड़ा, और कराहने लगा। व्हाट साहब ने उससे कहा—कहो बचा, मेरा कहना सच है न ? मैं अकेले-दुकेले डाकू की परवा ही कब करता हूँ।

मनुष्य को चाहिए कि मौक़े पर धीरज और चतुराई से काम ले।

२४—पीटर और पानी का फाटक

योरप के पश्चिमी किनारे पर हालैंड नाम का एक छोटा-सा देश है। वहाँ के रहनेवाले डच कहलाते हैं। यह देस समुद्र के किनारे है। यहाँ की ज़मीन पानी की सतह से नीची है, और उसे पानी से बचाने के लिये फाटकों का इंतज़ाम है। हारलेम नाम की जगह में एक आदमी फाटक खोलने और बंद करने के काम पर नौकर था। उसके एक लड़का था। लड़के की उम्र आठ बरस की थी, और उसका नाम पीटर था। पीटर बड़ा ही समझदार लड़का था। यहाँ उसकी एक छोटी-सी कहानी लिखी जाती है।

पीटर रोज़ शाम को अपने बाप के हुक्म से एक अंधे

को रोटियाँ देने जाया करता था। अंधा नहर के उस पार रहता था। जब अंधा रोटियाँ खाने लगता, तब पीटर छोटी-छोटी कहानियाँ कहकर उसका मन बहलाया करता था। एक दिन रोटियाँ ले जाने में देर हो गई। बाप ने पीटर से कहा—देखो, रोटियाँ देकर जल्दी लौट आना, यहाँ-वहाँ ठहरकर देर न करना। पीटर ने पहुँचकर अंधे को रोटियाँ दीं। अंधा भूखा तो था ही, जल्दी-जल्दी भोजन करने लगा। आज पीटर ने उसे कहानियाँ नहीं सुनाई। पिता की आज्ञा को याद कर वह फ़ौरन् घर की तरफ़ लौट पड़ा।

पीटर नहर के बाँध पर होकर जा रहा था। कड़ाके के जाड़े का समय था। उस वक्त नहर लबालब भरी हुई थी। रास्ता सुनसान हो रहा था। न तो देहातियों का चिल्लाना सुन पड़ता था और न गाड़ीवानों का शोर। खूब रात हो गई थी, पर रात अँधेरी नहीं थी, चारो तरफ़ खूब उजली चाँदनी छिटक रही थी।

पीटर तेज़ी से घर की तरफ़ बढ़ा जा रहा था। इतने में उसे पत्थरों पर पानी की बूँदें टपकने की आवाज़ सुनाई दी। इस समय पीटर एक बड़े फाटक के पास पहुँच गया था। वह फाटक को ध्यान से देखने लगा, तो उसे मालूम हुआ कि बाँध की एक लकड़ी के सड़ जाने से उसमें छेद हो गया है, और उसी छेद से पानी बह रहा है। पीटर ने सोचा, यदि इस छेद से लगातार पानी बहता रहा, तो यह और भी बड़ा हो जायगा।

छेद बढ़ जाने से देश के बहुत-से हिस्से में पानी-ही-पानी भर जायगा। करोड़ों का नुकसान तो होगा ही, लाखों आदमी भी कुत्ते की मौत मर जायँगे। पीटर तेजी से फाटक की तरफ दौड़ा, और उसने झट से छेद में अपनी उँगली डाल दी। एक ही मिनट में यह काम हो गया। पानी रुक जाने से पीटर को बड़ी खुशी हुई।

धीरे-धीरे बहुत रात हो गई। खूब कड़ा जाड़ा पड़ने लगा। उस तरफ के देशों में ऐसा जाड़ा पड़ता है कि दाँत बजने लगते हैं। पीटर सहायता के लिये जोर-जोर से चिल्लाने लगा, पर कोई न आया। वहाँ कुछ आबादी भी न थी। जाड़ा बढ़ता ही जाता था। पानी में पड़ी हुई उँगली ठिठुर गई। तमाम हाथ में ऐसा दर्द हो रहा था कि सहा न जाता था। पर पीटर वहाँ से टस से मस न हुआ। वह अपने देश के लिये रात-भर दुख सहता रहा, क्योंकि वह जानता था कि यदि बाँध टूट गया, तो मैं ही अकेला न डूबूँगा, बल्कि मेरे लाखों देश-भाई डूब मरेंगे।

सबेरे लोगों ने जो पीटर की यह हिम्मत देखी, तो उनके अचरज का ठिकाना न रहा। सभी उसकी तारीफ करने लगे। उसी दिन फाटक की मरम्मत कर दी गई।

प्यारे बालको! क्या तुम भी पीटर के समान अपने देश को प्यार करोगे? तुम जिस देश में पैदा हुए हो, जिस देश के अन्न-जल से तुम्हारा शरीर पलता है, और जिस देश के

सुख-दुख में तुम्हारा भी सुख-दुख है, उसको तुम्हें प्यार करना चाहिए—उसकी भलाई करनी चाहिए।

२५—ज़ार आइवन और किसान

योरप के पूर्वी हिस्से में रूस नाम का एक बहुत बड़ा देश है। वहाँ पहले बादशाहों का राज्य था। बादशाह को लोग 'ज़ार' कहते थे। यहाँ वहीं के एक अच्छे बादशाह की कहानी लिखी जाती है—

शाम का समय था। दिया-बत्ती हो रही थी। लोग अपना-अपना काम कर घरों को लौट रहे थे। इसी समय रूस के एक छोटे-से गाँव में एक भले आदमी आ पहुँचे। गाँव में किसानों के आठ-दस घर थे। उस भले आदमी ने रात-भर ठहरने के लिये कई लोगों से जगह माँगी, पर कोई राज़ी न हुआ। बेचारा बड़ी मुश्किल में पड़ा। अब रात कटे, तो कैसे कटे! अंत में वह एक गरीब किसान के दरवाज़े पर पहुँचा, और उससे रात-भर ठहरने के लिये जगह माँगी। किसान बोला—महाशय, आप खुशी से मेरे यहाँ ठहर सकते हैं, पर मैं कंगाल आदमी हूँ, मेरे यहाँ आपको ज़्यादा की तकलीफ़ होगी।

गरीब किसान इस भले आदमी को न पहचानता था। उसके घर में उस वक्त जो रूखा-सूखा था, वही उसने अपने मेहमान को खिलाया-पिलाया, और उसे अपने साथ पयाल के

बिछौने पर सुला लिया। पड़े-पड़े दोनों में बातें होने लगीं। किसान ने कहा—कल मेरे लड़के का नाम रक्खा जायगा, पर खुशी मनाने के लिये घर में मुट्ठी-भर भी अनाज नहीं है। इस गरीबी का बुरा हो, कुछ भी तैयारी न हो सकी।

सबेरा हुआ। मेहमान ने अपने घर को लौटते समय किसान से कहा—भाई, मैं आपके यहाँ रात-भर बड़े सुख से रहा। आपने मेरे साथ बड़ी भलाई की। अब मेरी एक बात और मानिए। मैं जब तक शहर से लौटकर न आऊँ, तब तक आप अपने बच्चे के नाम रखने की रस्म न कीजिए। मैं बच्चे का धर्मपिता बनूँगा। बच्चा भाग्यवान् जान पड़ता है। अच्छा, मैं जाता हूँ।

बड़ी देर हो गई, पर मेहमान अब तक न लौटा। बेचारा किसान उसकी राह देखते-देखते उकता उठा। उसके नाते-रिश्ते के लोग भी बैठे-बैठे उकता गए। अब वे लोग जल्दी मचाने लगे। लाचार होकर सब लोग गिरजे को जाने की तैयारी करने लगे। इतने में कुछ धूम-धाम सुन पड़ी। अचरज से सब लोग उसी तरफ दौड़े। किसान भी तमाशा देखने की गरज से बच्चे को गोद में लेकर दरवाजे पर जा खड़ा हुआ।

पहले फ़ौज निकली, फिर बड़े-बड़े अफ़सरों की गाड़ियाँ निकलीं। इसके बाद बाजे-गाजे के साथ बादशाह का रथ आया। किसान के दरवाजे पर रथ रोक दिया गया। बादशाह

ने नीचे उतरकर किसान से कहा—भाई, लौटने में देर हो गई। आपने बड़ी देर तक मेरी राह देखी होगी। ख़ैर, इसके लिये क्षमा कीजिए। बच्चे को गोद में लेकर मैं गिरजे चलूँगा। इसके बाद वह बच्चे को गोद में ले गाड़ी में सवार हुए, और सब लोग गिरजे को गए।

अब किसान के अचरज का ठिकाना न रहा। बादशाह का मुँह देखकर और उनकी बोली पहचानकर किसान ने समझ लिया कि ये ही रात को मेरे मेहमान हुए थे। यह तो ज़ार आइवन हैं। यह तमाशा देखकर सब लोगों को भी अचरज हुआ। ज़ार उस बालक के धर्मपिता बने। उन्होंने उसके पालने-पोसने का पूरा-पूरा इंतज़ाम कर दिया। उन्होंने किसान के सुख का भी इंतज़ाम कर दिया। जब वह लड़का पढ़-लिखकर बड़ा हुआ, तब बादशाह ने उसे एक बड़ा अफ़सर बना दिया।

उस दिन की बस्ती पर गाँव के और किसान पछताने लगे। वे आपस में कहते थे—हाय! हमने बड़ी बेवक़ूफ़ी की। अगर हम लोग बादशाह को अपने यहाँ ठहराते, तो हमारे भी दिन फिर जाते।

अच्छा, अगर तुम्हारे यहाँ किसी दिन शाम को कोई भूला-भटका मुसाफ़िर आ जाय, तो तुम उसे ठहरने के लिये हाथ-भर जगह दोगे या नहीं?

२६—वाशिंगटन और जमादार

कई सौ बरस हुए, विलायत के बहुत-से अँगरेज आकर उत्तरी अमेरिका में बस गए थे। वहाँ उन्होंने अँगरेजी-राज्य की जड़ जमा दी थी। पर पीछे से उनसे और विलायतवालों से न बनी। विलायत के लोग वहाँवालों को बहुत सताते थे। अमेरिकावाले अँगरेजों से बदल गए। उनका मुखिया था जार्ज वाशिंगटन। जार्ज वाशिंगटन बड़ा ही बहादुर और बलवान् था। उसने अँगरेजों से कहा—तुम हो किस खेत की मूली! अगर दम रखते हो, तो आ जाओ।

बस, फिर क्या था, जोर-शोर से लड़ाई होने लगी। लड़ाई के दिनों में एक जमादार अपने सिपाहियों से काम ले रहा था। उसने मजदूरों को एक बहुत भारी लट्ठा उठाने का हुक्म दिया। जमादार साहब दूर ही खड़े रहे। आप दूर ही से खड़े-खड़े कह रहे थे—शाबाश बहादुरो! जोर लगाओ, उठा लिया है! मगर आप पास जाकर लट्ठा उठाने में मदद न दे सकते थे, आप केवल चिल्लाने में ही जोर लगा रहे थे।

उसी समय वहाँ एक अफसर आ पहुँचा। वह उस समय वरदी नहीं पहने था, इसलिये उसे कोई भी न पहचान सका। इस अफसर ने जमादार साहब से कहा—भाई, लट्ठा बहुत भारी है, आप भी जाकर उसके उठाने में सिपाहियों की मदद कीजिए।

यह सुनकर जमादार साहब बहुत नाराज हुए। आपने अकड़कर अफ़सर को जवाब दिया—मैं जमादार हूँ। तब अफ़सर ने उससे कहा—ओहो! जमादार साहब, मुझे माफ़ कीजिए। मुझे मालूम नहीं था कि आप जमादार साहब हैं।

इतना कहकर उस अफ़सर ने अपना कोट और टोपी उतारकर एक तरफ़ रख दी, और जाकर सिपाहियों को लट्ठा उठाने में मदद देने लगा। उसने इतना जोर लगाया कि वह मारे पसीने के लतपत हो गया।

जब लट्ठा उठ गया, तब वह अफ़सर जमादार से बोला—जमादार साहब, जब आपको कोई और ऐसा ही काम आ पड़े, और आदमियों की कमी हो, तो अपनी फ़ौज के बड़े अफ़सर के पास खबर भेजना। मैं आकर आपको सहायता दूँगा।

जब जमादार ने ध्यान से उस अफ़सर को देखा, तो उसे मालूम हुआ कि फ़ौज के सबसे बड़े अफ़सर वाशिंगटन साहब तो यही हैं। अब तो जमादार साहब के प्राण सूख गए। आप वाशिंगटन साहब के पैरों पर गिर पड़े, और हाथ जोड़ कर माफ़ी माँगने लगे। वाशिंगटन ने यह कहकर कि अपना काम अपने ही हाथों करना चाहिए, उसे माफ़ कर दिया।

जो लड़के बड़े बनना चाहें, उन्हें चाहिए कि वे अपना काम अपने ही हाथों किया करें। जो काम खुद कर सकते हों, उसमें दूसरों की मदद न लें। अगर दूसरों से मदद

लेना ही पड़े, तो उसमें आप भी मदद करें। वाशिंगटन साहब इसी से इतने बड़े हो सके थे कि वह अपना काम अपने हाथों करते थे। इसी कारण अमेरिकावाले आज तक बड़े आदर से उनका नाम लेते हैं।

२७—जेम्स वाट और चाय की देगची

आप लोगों ने रेलगाड़ी तो देखी ही होगी। उस पर सवारी भी की होगी। कहिए, कितनी तेज़ी से भक्-भक् करती और धड़धड़ाती हुई जाती है। कितनी जल्दी लखनऊ से इलाहाबाद और इलाहाबाद से कलकत्ते पहुँचा देती है। क्या आप जानते हैं, रेलगाड़ी लाखों मन वज़न लेकर भी इतनी जल्दी क्यों दौड़ती है? पानी की भाप में बड़ी ताक़त होती है। आजकल दुनिया में भाप बड़े-बड़े रोज़ कर रही है। वह लोहे को पानी करती, किताबों पर सुंदर अक्षर लिखती, समुद्र में बड़े-बड़े जहाज़ दौड़ाती, पुतलीघरों में कपड़ा बुनती, और न-जाने कितने भारी-भारी काम करके मिनटों में करोड़ों रुपए पैदा करती है। यह भाप ही हमें रेल में बैठा थोड़ी ही देर में कलकत्ते से बंबई पहुँचा देती है। आपने बड़े-बड़े स्टेशनों पर बड़े-बड़े नलों से एंजिनों को पानी पीते और आग खाते तो देखा ही होगा। आग की गर्मी पानी को भाप बना देती और भाप रेल को दौड़ा

ले जाती है। यह तो सब हुआ, पर आपको यह न मालूम होगा कि आप इतने भारी-भारी काम कैसे करने लगी। अच्छा, अब आप कैसे यह करामात करने लगी, इसकी भी कहानी सुनिए।

विलायत में जेम्स वाट नाम का एक लड़का रहता था। उसके माता पिता प्यार के कारण उसे जिमी कहा करते थे। जिमी पढ़ता-लिखता कुछ न था। दिन-भर खेलना-कूदना और लड़ना-झगड़ना ही उसका काम था। हाँ, उसे चित्रों से अलबत्ता प्रेम था। वह कागज पर, दीवार पर और कभी-कभी धूल पर ही टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींचकर चित्र बनाया करता था। उसमें एक गुण और था, वह जिस चीज को देखता, बड़े ध्यान से देखता और उस पर बहुत विचार करता था। जिमी अपने खिलौनों के टुकड़े-टुकड़े कर डालता और फिर कारीगरी से उन्हें जोड़ देता था। कभी-कभी वह उन टुकड़ों को जोड़कर उनसे नया ही खिलौना बना डालता था।

विलायत बड़ा ठंडा देश है, इसलिये वहाँवाले खूब चाय पिया करते हैं। एक दिन जिमी की माता रसोई-घर में बैठी चाय तैयार कर रही थी। चूल्हे पर चाय की देगची चढ़ी थी। बालक जिमी भी पास ही बैठा हुआ था। इतने में माता किसी काम से बाहर चली गई।

जिमी बड़े ध्यान से देगची की तरफ देखने लगा। जब पानी गर्म हुआ, तब देगची के नल से थोड़ी-थोड़ी भाप

निकलने लगी। धीरे-धीरे पानी खूब खौलने लगा। उसमें बहुत भाप पैदा हो गई, और सब नल से न निकल सकने के कारण देगची का ढक्कन खड़खड़-खड़खड़ करने लगा।

अब जिमी को तमाशा करने की सूझी। उसने सोचा, यदि मैं नली को बंद कर दूँ, और देगची के मुँह को भी अच्छी तरह से ढाँक दूँ, तो यह भाप फिर निकलेगी ही कैसे? अच्छा! फिर तो मैं उसे पकड़ रक्खूँगा। बस, जिमी ने फौरन् नला बंद करके देगची के ढक्कन को जोर से दबा दिया। नली से तो भाप बंद हो गई, पर ढक्कन हट गया, और सब भाप बाहर निकल गई। अब जिमी ने ढक्कन को बहुत जोर से बंद कर, उस पर काठ का एक बड़ा-सा टुकड़ा रख दिया। पर खड़बड़-खड़बड़ करके भाप फिर निकल भागी। यह देखकर जिमी को बड़ा गुस्सा आया, देखूँ, अब कैसे निकलती है। यह कहकर जिमी खुद ही ढक्कन दबाकर बैठ गया। अब की बार भाप जिमी को भी ठेलकर भाग खड़ी हुई।

यह देखकर जिमी को बड़ा अचरज हुआ। वह कहने लगा—ओहो! इस ज़रा-सी भाप में तो इतनी ताक़त है! अगर बहुत-सी भाप बनाई जावे, तो न-जाने उसमें कितनी ताक़त होगी, और वह कैसे-कैसे बड़े-बड़े काम कर डालेगी! अब जरूर ही भाप से काम लेने की तरकीब निकालनी चाहिए।

जिमी की माता भी दरवाजे पर खड़ी-खड़ी उसकी यह

हरकत देख रही थी। उसने नाराज होकर कहा—जिमी, तुझे दिन-भर ऊधम के सिवा और भी कोई काम है? पढ़ने लिखने का तो तू नाम भी नहीं लेता। अच्छा है, न पढ़, तू ही खराब होगा! अभी आग से जल जाता, तो कैसा होता? जिमी ने हँसकर जवाब दिया—अम्मा, तुम क्या जानो! मैं सब कुछ जानता हूँ। देखो, मैंने आज इस देगची में एक देव को पकड़ लिया है। अब मैं उसे यों ही थोड़े छोड़ दूँगा—उससे मनमाने काम लूँगा।

अंत में जिमी का कहना सच हुआ। वह दिन-रात एंजिन बनाने का उपाय सोचता रहता। एक दिन करते-करते उसने एक छोटा-सा एंजिन बना ही डाला, वह थोड़ा-थोड़ा चलता भी था। अब तो जिमी की खुशी का ठिकाना ही न रहा। वह मारे आनंद के नाच उठा।

वाट की बड़ी इच्छा थी कि मैं एक ऐसा बड़ा एंजिन बनाऊँ, जो खूब ताकतवर हो, और बड़ी तेजी से चल सके। पर उसके पास इतना पैसा नहीं था कि भारी एंजिन बना लेता। एक दिन बरमेंघम के एक कारखाने के मालिक मिस्टर बाल्टन वाट जिमी से मिले। जिमी ने उन्हें भी अपना विचार सुनाया। वह बहुत खुश हुए, और उन्होंने बड़ा एंजिन तैयार करने के लिये जिमी को रुपए-पैसे से अच्छी सहायता दी। जिमी ने बड़ा एंजिन बना डाला, और चारों तरफ उसका नाम फैल गया। पहलेपहल जो एंजिन

बना था, वह बहुत ही धीरे चलता था। एक घोड़सवार उसके आगे झंडी लेकर चलता था। धीरे धीरे लोगों ने एंजिन में बहुत सुधार किए। अब तो एंजिन घंटे भर में सौ मील तक जा सकता है।

इस तरह जेम्स वाट ने ज़रा-सी चीज़ से ऐसी अच्छी चीज़ तैयार कर डाली, जिससे दुनिया को बड़ा फ़ायदा पहुँच रहा है। सब लड़कों को चाहिए कि वे हरएक चीज़ को ध्यान और विचार से देखा करें। न-जाने उनसे किस दिन कोई अच्छी चीज बन जावे, जिससे सब लोगों को बहुत फ़ायदा पहुँचे।

२८—फ्रेडरिक और उनका नौकर

योरप में जर्मनी नाम का एक देश है। यहाँ के लोग बड़े विद्वान्, बहादुर, चतुर और दयालु होते हैं। ये लोग नई-नई चीज़ें बनाने में उस्ताद हैं। आजकल जर्मनी में राजा नहीं है। पर थोड़े ही दिन पहले वहाँ बादशाहों का राज था। बहुत समय पहले वहाँ फ्रेडरिक नाम के बादशाह राज्य करते थे। वह बड़े ही अच्छे बादशाह थे। क्रोध को वह कभी अपने पास न आने देते थे। वह ख़ुद तो अच्छे काम करते ही थे, पर दूसरों के अच्छे काम देखकर भी बहुत ख़ुश होते थे।

एक दिन फ्रेडरिक कुछ काम कर रहे थे। इसी समय उनको नौकर की जरूरत पड़ी। उन्होंने नौकर को बुलाने वाली घंटी टन्-टन् बजा दी, पर नौकर दौड़कर न आया। बादशाह ने फिर घंटी बजाई, पर नौकर नहीं आया। तब आप उसे जोर-जोर से पुकारने लगे। फिर भी कोई जवाब न मिला। बादशाह को बड़ा अचरज हुआ, नौकर गया कहाँ, ऐसा तो वह कभी न करता था! अब आप उसे ढूँढ़ने के लिये बाहर निकले, तो क्या देखते हैं कि नौकर साहब दालान में पड़े खर्राटे ले रहे हैं। उसे देखकर बादशाह कहने लगे—ओहो! हजरत आज तो गहरी नींद में हैं, फिर क्यों जवाब देंगे। अच्छा भैया, सोओ, आराम से सोओ!

इतने में आपकी नजर उसकी जेब में रक्खी हुई चिट्ठी पर पड़ी, जो जेब से कुछ बाहर निकल आई थी। फ्रेडरिक ने समझा, यह चिट्ठी मेरी ही होगी। आपने झट से चिट्ठी खींच ली, और पढ़ने लगे। पर वह चिट्ठी उस नौकर की माता की थी। उसमें लिखा था—प्यारे बेटा, तुमने अपनी कमाई के जो रुपए भेजे थे, सो मिले। बड़ी खुशी हुई। उनसे मेरे खाने-पीने का सब बंदोबस्त हो गया है। अब मुझे किसी बात की तकलीफ नहीं है। ईश्वर तुम्हें हमेशा ऐसी ही बुद्धि दे कि तुम बराबर काम में लगे रहो, और अपनी बुढ़िया अम्मा को भी कमाई खिलाकर खुश रखते रहो।

यह चिट्ठी पढ़कर फ्रेडरिक बहुत खुश हुए, और नौकर की तारीफ करने लगे। आप कमरे में गए, और पाँच मुहरें ले आए। आपने वे मुहरें उसी चिट्ठी में लपेटकर उसी की जेब में रख दीं। फिर आपने जोर से पुकारकर उसे जगा दिया। नौकर घबराकर उठ बैठा। सामने ही बादशाह को देख उसका मुँह उतर गया। वह चुपचाप नीचा सिर करके खड़ा हो गया।

तब फ्रेडरिक ने उससे मुस्किराकर कहा—कहिए, आज तो आपको खूब नींद आई! अब डरते क्यों हो? इसी घबराहट में नौकर का हाथ जेब पर पड़ा। वहाँ उसे एक पोटली-सी जान पड़ी। झट से उसने लिपटा हुई मोहरें बाहर निकाल लीं। मोहरें देखते ही नौकर थर-थर काँपने लगा। उसकी आँखों से टप-टप आँसू बरसने लगे। यह देख फ्रेडरिक ने उससे पूछा—भाई, इस तरह क्यों रोते हो? तुम्हें किस बात का दुख है? तब नौकर ने उन्हें उत्तर दिया—हुजूर, कोई दुश्मन मेरा बुरा चाहता है। न-जाने किसने मेरी जेब में ये मोहरें रख दी हैं। सच मानिए, मैं नहीं जानता कि कैसे मेरी जेब में ये मोहरें आ पहुँची। हुजूर मेरे माता-पिता हैं, मैं आपके पैर पड़ता हूँ, मुझे बचाइए। इतना कहकर नौकर फूट-फूटकर रोने लगा।

तब फ्रेडरिक ने उसे समझाया कि लड़के, तुम रोओ मत। तुम्हारी अच्छी चाल देखकर ईश्वर ने तुम्हें यह धन दिया

है। तुम अपनी माता से प्रेम करते हो, उसे चाहते हो, उसे सुख पहुँचाते हो—ये बातें जानकर मैं बहुत खुश हुआ। अब तुम किसी बात की फ़िक्र मत करो, और अपनी माता को लिख दो कि आगे से बादशाह हमारा-तुम्हारा पालन-पोषण करेंगे।

बादशाह की बातें सुनकर नौकर की चिंता दूर हो गई, और वह खुशी से अपना काम करने लगा। बालको, इस नौकर का नाम सपूत है। सब लड़के सपूत बन सकते हैं, अगर वे अपने माता-पिता को सुख पहुँचावें।

२६—वेलिंगटन और किसान

विलायत में किसी किसान के खेत पर एक बालक नौकरी करता था। वह बालक बड़ा ही चतुर और निडर था। वह अपने मालिक के हुक्म को कभी न टालता था। एक दिन किसान ने खेत में काम करते समय देखा कि सामने से शिकारियों का एक झुंड घोड़ों पर सवार, उसी की तरफ़ आ रहा है। उसने सोचा, जो ये लोग खेत में आ घुसे, तो इनके घोड़े अपनी मज़बूत टापों से खेत की सब फ़सल कुचल डालेंगे। बस, इसी डर के मारे उसने बालक को हुक्म दिया

कि फ़ौरन् खेत का दरवाज़ा बंद कर दो, और तुम सामने खड़े रहो, ख़बरदार, कोई खेत में न घुसने पावे।

इतने में शिकारियों का दल शोर-गुल मचाता हुआ वहाँ आ पहुँचा। कई शिकारियों ने बालक से दरवाज़ा खोलने के लिये कहा, पर उसने किसी की बात पर ध्यान न दिया। उसने शिकारियों को जवाब दिया—मैं कभी दरवाज़ा न खोलूँगा। मेरे मालिक का हुक्म नहीं है, उसने दरवाज़ा बंद रखने का ही हुक्म दिया है।

अब तो शिकारियों को बड़ा ही गुस्सा आया। कोई-कोई उसे लाल-लाल आँखें दिखाने लगे, कोई डाँटने लगे। जो अच्छे थे, वे बालक को लालच देकर दरवाज़ा खुलवाना चाहते थे, पर बालक चुपचाप खड़ा था। वह किसी की बात मानो सुन ही नहीं रहा था। यह देखकर शिकारी और भी नाराज़ हो रहे थे।

अंत में एक शिकारी आगे बढ़ा। वह और शिकारियों से कुछ ऊँचा था, उसके कपड़े-लत्ते भी बहुत अच्छे थे। देखने में वह शिकारियों का सरदार-सा जान पड़ता था। उसने बालक को धमकाकर कहा—तू जानता है, हम कौन हैं! हमारा नाम है ड्यूक ऑफ् वेलिंगटन। हम तेरी यह रुकावट नहीं सह सकते। बस, देरी न कर, जल्दी से दरवाज़ा खोल दे। हम लोग अभी इस खेत में घुसेंगे।

वेलिंगटन साहब विलायत के सबसे बड़े और बहादुर

सरदार थे। उन्होंने कई भारी-भारी लड़ाइयाँ जीती थीं। वह बालक उनका नाम जानता था। नाम सुनकर उसने फ़ौरन् सिर से टोपी उतार ली, और माथा झुकाकर वेलिंगटन को सलाम कर उनकी इज़्ज़त की। फिर उसने नम्रता से उनसे कहा—मुझे पक्का भरोसा है कि जो विलायत के सबसे बड़े बहादुर हैं, वह मुझे कभी ऐसा हुक्म न देंगे, जिससे मेरे मालिक की आज्ञा टूटती हो।

मामूली किसान के बेटे के मुँह से ऐसी अच्छी बात सुनकर वेलिंगटन साहब को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने माथे से टोपी उतारकर उस बालक का बड़ा आदर किया, और ख़ुश होकर कहा—तुमने डर और लोभ से भी अपना धर्म न छोड़ा। तुम बालक होने पर भी आदर पाने के लायक़ हो। तुम्हें जैसा अपने धर्म का ज्ञान है, वैसे ही ज्ञानवाले सिपाहियों की अगर मुझे एक अच्छी पल्टन मिल जाय, तो मैं तमाम दुनिया जीत लूँ।

वेलिंगटन ने उस बालक की बड़ी तारीफ़ की, और उसे इनाम में एक अशरफ़ी देकर आगे की राह ली।

जो अच्छा काम मन लगाकर ईमानदारी से किया जाता है, उसे ही धर्म का पालना कहते हैं। सब बालकों को चाहिए कि वे अपना धर्म कभी न भूलें।

२०—नेपोलियन और मल्लाह

नेपोलियन फ्रांस देश का रहनेवाला था। वह एक मामूली डॉक्टर का बेटा था। उसे छुटपन ही से फ़ौजी कामों का बड़ा शौक़ था। बड़े होने पर उसने फ़ौज में नौकरी कर ली। वह बड़ा बहादुर था। उसने अपने हाथ से तलवार चलाकर कितनी लड़ाइयाँ जीती थीं। धीरे-धीरे, बढ़ते-बढ़ते वह फ्रांस देश का बादशाह बन बैठा। वह अपनी माता का बड़ा भक्त था। उसका कहना न टालता था।

एक बार नेपोलियन ने मिस्र देश पर चढ़ाई की। समुद्र के किनारे ही डेरे लगाए गए। इसलिये सब क़ैदी छूटे ही रहते थे, क्योंकि उनके भागने का कुछ डर न था। एक क़ैदी मल्लाह था वह रोज़ाना सबकी आँख बचाकर एक गड्ढे में जाता और थोड़ी देर बाद चुपचाप लौट आता। थोड़े दिन तक तो किसी ने उस तरफ़ ध्यान न दिया, पर एक दिन एक फ्रांसीसी सिपाही की नज़र उधर जा पड़ी। उसे कुछ खटका हुआ। वह फ़ौरन् गड्ढे में चला गया, तो क्या देखता है कि वहाँ बाँस और बेत की खपचियों से बनी हुई एक छोटी-सी नाव रक्खी है। सिपाही दौड़कर नेपोलियन के पास पहुँचा, और हाँफते-हाँफते बोला—महाराज, आज एक सरकारी क़ैदी हाथ से निकल गया होता! यह तो कहिए कि मैं वहाँ जा पहुँचा, नहीं तो वह तो भाग ही चुका

था। भागने का सब सामान तैयार था, केवल भागने की देर थी।

यह सुन नेपोलियन को कुछ अचरज हुआ। उसने सिपाही से कहा—तेरी बात समझ में नहीं आती। क्या किनारे पर अँगरेजों का कोई जहाज आया है, जो हमारे क़ैदी को भगा ले जाता? सिपाही ने जवाब दिया—नहीं हुजूर, आपके डर से दुश्मनों का कोई जहाज यहाँ नहीं आ सकता। उसने भागने के लिये नाव बना ली है।

नेपोलियन उठ खड़ा हुआ, और बोला—चलो, मैं खुद चलकर देखता हूँ कि बात क्या है। जब नेपोलियन ने वह छोटी-सी नाव देखी, तो वह मल्लाह की बेवक़ूफ़ी पर हँस पड़ा। उसने मल्लाह से कहा—इतने भारी समुद्र को तू इस बच्चों के खेलने की नाव से कैसे पार करेगा? इसमें बैठकर समुद्र पार करना मौत के मुँह में कूदना है। तू किसलिये ऐसा पागल हो रहा है, जो आगा-पीछा कुछ न सोचकर मरने के लिये इस तरह तैयार हो गया?

बेचारा मल्लाह डर के मारे थर-थर काँप रहा था। वह हाथ जोड़कर बोला—हुजूर, मैं अपनी बुढ़िया माता का एकलौता बेटा हूँ। वह मुझी को देखकर जीती है। आप मुझे यहाँ पकड़ लाए हैं, वहाँ मेरे बिना उसकी न-जाने क्या हालत हो रही होगी। इसीलिये मेरा दिल घबरा रहा है कि कब जाऊँ, और माता के दर्शन करूँ। यह कहते-कहते मल्लाह की आँखों से आँसू गिरने लगे।

बात सच्ची थी, नपोलियन के हृदय पर तीर-सा लगा। वह भी अपनी माता का बड़ा भक्त था। उसे माता की याद आ गई। उसने मल्लाह से कहा—सचमुच तू अपनी माता का प्यारा बेटा जान पड़ता है। मैं तेरी बातों से बहुत खुश हूँ। बहुत जल्दी तू अपनी माता के दर्शन करेगा। यह कहकर नेपोलियन ने एक अफसर को हुक्म दिया कि अभी एक जहाज तैयार करो, और मल्लाह को उसकी माता के पास पहुँचा आओ। नेपोलियन ने मल्लाह को बहुत सी अशर्फियाँ भी इनाम में दीं। मल्लाह अपने घर पहुँचा। माता और बेटा प्रेम से मिले। कहते हैं, इस यादगार में वे अशर्फियाँ अब तक उस मल्लाह के घराने में हिफाजत से रक्खी चली आती हैं।

नेपोलियन कहा करता था कि मैं अपनी माता को कभी नहीं भूल सकता। उसी की कृपा से मैं इतना बड़ा आदमी हो सका हूँ।

३१—नेपोलियन और उनका मुंशी

नेपोलियन बड़े ही कठोर थे, पर साथ ही दयालु भी थे। जहाँ कठोरता करने का काम होता था, वहाँ वह कभी दया न करते थे, और जहाँ दया की जरूरत होती थी, वहाँ जरूर दया करते थे। अच्छा, अब उनकी कठोरता और दया की एक उम्दा कहानी सुनिए।

क्यों इतनी रात को यह क्या कर रहे हो !

नेपोलियन के दफ़्तर में कई मुंशी काम करते थे। उन्हें अच्छी तनख़्वाहें दी जाती थीं। उन मुंशियों में, जो सबसे बड़ा मुंशी था, वह बड़ा फ़िज़ूलख़र्च था। वह पानी की तरह रुपए ख़र्च कर देता था। ऐसा करने में उसे कभी कभी क़र्ज़ भी लेना पड़ता था। होते-होते उस पर १०,०००) का क़र्ज़ हो गया। महाजन रोज़-रोज़ उससे रुपए पाने के लिये तक़ाज़ा करने लगे। मारे तक़ाज़ों के उसकी नाकों दम आ गया।

अब मुंशीजी बड़ी चिंता में पड़े। एक दिन मारे चिंता के आपको नींद न आई। ऐसा जान पड़ता था, मानो बिछौने पर काँटे बिखरे हैं। बेचारा घबराहट से बड़ी देर तक बिछौने पर छटपटाता रहा। अंत में इस चिंता से छूटने के लिये उसने दफ़्तर का रास्ता लिया, और मन लगाकर वहाँ काम करने लगा। धीरे धीरे वह काम में मगन हो गया।

अचानक वहाँ से नेपोलियन भी अपने सोने के कोठे में जा रहे थे। इतनी रात को दफ़्तर खुला देख उन्हें बड़ा अचरज हुआ। वह दरवाज़ा खोलकर भीतर चले गए। पर मुंशी काम में ऐसा मगन था कि उसे बादशाह का आना मालूम न हुआ। जब नेपोलियन उसकी कुर्सी के पास पहुँचे, तब कहीं उसे उनके आने की ख़बर हुई। वह घबराकर उठ बैठा। नेपोलियन ने उससे पूछा—मुंशी, इतनी रात को यह क्या

कर रहे हो ? मुंशी ने जवाब दिया—कुछ नहीं हुज़ूर, मामूली कुछ काम कर रहा हूँ। अच्छा, मैं भी देखूँ, तुम क्या काम कर रहे हो। यह कहकर नेपोलियन कागज देखने लगे। वह कागज देखकर बोले—यह काम तो दिन को भी हो सकता था। इतनी रात को इसके करने की क्या ज़रूरत थी?

मुंशी—हुज़ूर का कहना ठीक है। पर आज रात को मुझे नींद नहीं आई, इसी से यहाँ काम करने चला आया।

नेपोलियन—अरे! तुम तो जवान हो, तुम्हें नींद क्यों नहीं आई? मालूम पड़ता है, तुम्हें किसी बात की चिंता है।

मुंशी—जी हाँ, आपका कहना ठीक है।

नेपोलियन—तो तुम्हें किस बात की चिंता है? जान पड़ता है, तुम्हें अपनी स्त्री की चिंता है।

मुंशी—नहीं हुज़ूर, अभी मैंने अपना विवाह भी नहीं किया। मेरे ऊपर १०,०००) का क़र्ज़ हो गया है। मैं इसी चिंता में घुल रहा हूँ कि यह क़र्ज़ कैसे चुकेगा। महाजन लोग मेरी नाक में दम कर रहे हैं।

यह सुनते ही मानो नेपोलियन को आग लग गई। वह गरजकर बोले—अरे! १०,०००) का क़र्ज़! मैं तुम्हें हर महीने १०००) देता हूँ, फिर भी तुम पर इतना क़र्ज़! नेपोलियन के मुंशी हो—फिर भी तुम्हारी यह हालत! बस, फ़ौरन् मेरे सामने से हट जाओ, मैं तुम्हारा मुँह भी नहीं देखना चाहता! मुंशी नेपोलियन के स्वभाव को खूब

जानता था—उसने फ़ौरन् दुम दबाकर घर की राह ली। अब तो मुंशीजी का मुँह उतर गया—बादशाह ने निकाल बाहर कर दिया है, अब मैं क्या करूँगा—रात-भर वह यही सोचता रहा।

सवेरा होते ही नेपोलियन का एक सिपाही मुंशी के पास आया, और उसे एक लिफ़ाफ़ा देकर चला गया। ज्यों ही मुंशी ने लिफ़ाफ़ा खोला, त्यों ही उसमें से १०,०००) के नोट नीचे गिर पड़े। उसमें से नेपोलियन के दस्तख़त की एक चिट्ठी भी निकली। उसमें लिखा था—मैं बड़ी देर तक तुम्हारी बात सोचता रहा। आखिर मैंने यही इरादा किया कि अगर मैं तुम्हें अभी नौकरी से अलग करता हूँ, तो तुम्हारे माता-पिता और भाई-बहन भूखों मर जायँगे। इसलिये मैंने तुम्हें नौकरी से अलग नहीं किया। मैं अपनी जेब से तुम्हें ये १०,०००) के नोट भी देता हूँ। तुम आज ही अपने महाजनों का क़र्ज़ चुका दो, और फिर कभी क़र्ज़ न लेना। क़र्ज़ा लेना बुरी बात है। ख़बरदार! अगर फिर कभी क़र्ज़ लोगे, और मुझे मालूम हो जायगा, तो मैं तुम्हें सज़ा दिए बिना न रहूँगा।

मुंशी ने उसी दिन महाजनों के रुपए चुका दिए, और फिर कभी क़र्ज़ा न लिया।

२२—कासाब्यानका की कहानी

आफ्रिका में मिस्र या (जिप्ट नाम का एक देश है। आजकल यहाँ मुसलमानों का राज्य है। एक बार उस देश में नील-नदी के किनारे फ़्रांस देश के रहनेवाले फ़्रांसीसियों और अँगरेज़ों में खूब लड़ाई हुई। फ़्रांसीसी फ़ौज के एक बड़े अफ़सर के साथ उसका बेटा भी था, जिसका नाम था कासाब्यानका। यह लड़का फ़ौरन् अपने बाप का हुक्म मानता था। बाप के कहने को वह कभी न टालता था। इसलिये उसका बाप हमेशा उससे बहुत खुश रहता था।

जब वह अफ़सर लड़ाई में जाने लगा, तब वह कासाब्यानका से बोला—देखो बेटा, जहाज़ पर बड़ी होशियारी से रहना पड़ता है। मेरे चल जाने पर तुम किसी तरह का ऊधम न करना, और न यहाँ-वहाँ ही उछलते-कूदते फिरना। अपनी ही जगह पर आराम से रहना। यह कहकर अफ़सर तो लड़ाई में चला गया, और कासाब्यानका अपने कोठे में बैठकर, कहानियों की किताब पढ़ने लगा।

लड़ाई में वह अफ़सर मारा गया, पर कासाब्यानका को इस बात की ख़बर तक न लगी। यहाँ जहाज़ में एक ओर से आग लग गई। चारों तरफ़ लाल-लाल लपटें उठने लगीं। तमाम आसमान धुएँ से भर गया। धायँ-धायँ करके जहाज़ जलने लगा। सब लोग अपनी-अपनी जान लेकर भागने लगे, पर

कासाब्यानका चुपचाप अपनी ही जगह पर बैठा रहा। वह मन में सोच रहा था कि पिताजी मुझे यहीं बैठने का हुक्म दे गए हैं। उनके हुक्म के बिना कहीं जाना-आना ठीक नहीं। अगर कहीं वह आ पहुँचे, तो नाराज होंगे। जब वह हुक्म देंगे, तभी यहाँ से हटूँगा।

लपटें बढ़ती हुई कासाब्यानका के पास आ पहुँचीं। आँच से उसका शरीर झुलसने लगा, तब उसने घबराकर कहा—पिताजी, आप कहाँ हैं? देखिए, आग मेरे शरीर को जलाना ही चाहती है। सब लोग जान लेकर भाग रहे हैं, मैं ही अकेला इस आग में रह गया हूँ, अब मेरे लिये क्या हुक्म होता है? हाय! हाय!! आप जवाब क्यों नहीं देते? क्या मैं यहीं जल मरूँ? पर उसे हुक्म देनेवाला वहाँ कौन बैठा था? बालक को चारो तरफ से लपटों ने घेर लिया। बेचारा थोड़ी ही देर में तड़प-तड़पकर वहीं जलकर राख हो गया, पर वहाँ से तिल-भर भी न हटा। पिता की आज्ञा मानना इसे कहते हैं। वे ही बालक सबसे अच्छे हैं, जो माता-पिता का हुक्म मानने के लिये अपनी जान की भी परवा नहीं करते।

सब बालकों को चाहिए कि वे भी कासाब्यानका के समान ही अपने माता पिता की आज्ञा मानना सीखें, इसमें चाहे उनकी जान भी क्यों न चली जावे। वे ही बालक सबके प्यारे होते हैं, जो माता-पिता का कहना मानते और उन्हें खुश रखते हैं।

२२—अबू उसमान और एक दुष्ट की कहानी

अरब में अबू उसमान अजहर नाम का एक बड़ा सीधा आदमी था। उसके साथ कोई कैसा ही बुरा बर्ताव करता, कोई उसे चाहे जैसी बातें कह लेता, पर वह बेचारा न तो ज़रा भी ग़ुस्सा करता और न कुछ कहता ही। वह चुपचाप सबकी खरी-खोटी बातें सुन लिया करता था। सब लोग उसे भोंदूमल या बाप समझते थे। कुछ लोग तो उसके साथ बहुत बुरी तरह से हँसी किया करते, क्योंकि वे जानते थे कि वह न तो कुछ कहेगा ही और न कुछ करेगा ही। संसार में कुछ लोग ऐसे हुआ करते हैं, जो सीधे-सादे लोगों को सताते और टेढ़े लोगों से डरते हैं।

एक दिन अबू उसमान के एक पड़ोसी को उससे दिल्लगी करने की सूझी। वह उसमान के पास नेवता देने को आया, और कहने लगा—चलिए, भोजन तैयार है। बेचारा उसमान उसकी बदमाशी थोड़े ही जानता था—फ़ौरन् उसके साथ चल गया। घर पहुँचने पर उस दिल्लगीबाज़ ने उसमान से कहा—भाई, अभी तो भोजन तैयार ही नहीं हुआ। आप घर लौट जाइए। उसमान उससे बहुत अच्छा, कोई हर्ज नहीं, कहकर अपने घर लौट गया।

अभी उसमान को घर आए दस मिनट भी न हुए थे कि वह दिल्लगीबाज़ फिर आ पहुँचा, और बोला—चलिए,

चलिए, भोजन कब का तैयार हो चुका है। उसमान फिर उसके साथ चला गया। घर पहुँचने पर उस दुष्ट ने उसमान को फिर उसी तरह लौटा दिया। इसी प्रकार उसने एक बार नहीं, पाँच बार उसमान को कष्ट दिया, पर उसमान ने अपने मुँह से नाराजी की एक बात भी न कही। अत को वह दुष्ट खुद इस दिल्लगी से ऊब उठा—उसे उसमान की चाल से अचरज भी हुआ। उसने उसमान से कहा—भाई! नेवता-एवता कुछ नहीं है, यह तो केवल दिल्लगी थी।

यह सुनकर उसमान ने उससे कहा—अच्छा, कोई हर्ज नहीं, पर इस दिल्लगी से आपकी तबियत तो खुश हुई? यह सुनकर वह दुष्ट बहुत ही शरमाया। उसने हाथ जोड़कर उसमान से माफी माँगी, और वादा किया कि अब मैं किसी के साथ ऐसी दिल्लगी न करूँगा। उस दिन से वह आदमी उसमान का मित्र बन गया। पर फिर भी कई दुष्ट उसमान को सताते ही रहे।

यद्यपि सीधापन अच्छा गुण है, और सीधे-सादे आदमी आदर भी पाते हैं, पर उसमान के समान सीधे बन जाना भी अच्छा नहीं। ऐसे लोग हमेशा दुख पाते हैं—मनुष्य ऐसे लोगों को हमेशा सताया करते हैं। उनका कहीं आदर नहीं होता। इसलिये मनुष्य को चाहिए कि वह हमेशा सीधा न बना रहे। सीधे के साथ सीधा और टेढ़े के साथ टेढ़ा बन जाना ही ठीक है।

बालकोपयोगी सस्ता-सचित्र साहित्य

खेल-पचीसी—श्रीप्रतिपालसिंहजी

कीड़े मकोड़े—पं० भूपनारायण दीक्षित एम्० ए०, एल्० टी० ।)

सिखवाड़—पं० भूपनारायण दीक्षित एम्० ए०, एल्० टी० ।=)

मूकमय—श्रीशंकरराव जोशी =)

इतिहास की कहानियाँ—मुंशी ठाकुरप्रसादजी हिंदी-कोविद ।=)

बाल-विलास—श्रीगुरुराम मल्ल ।=)

विचित्र वीर—पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ।=), ॥)

हँसी-खेल—श्रीजगमोहन विकसित ॥), १)

सुनहरी नदी का राजा—स्व० पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ॥), १)

मर्यादाराम की कहानियाँ—वि० रामनाथ ऐयर वकील ।=), ॥=)

भगवान् गौतम बुद्ध—स्व० पं० ईश्वरीप्रसादजी शर्मा ।=), ॥=)

दिवाकर सियार—पं० भूपनारायण दीक्षित एम्० ए०, एल्० टी० ।), ।=)

युधिष्ठिर—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर ।=), ॥)

कायस्थी करतब—(दो भाग)—श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव ॥), १)

कथा-कहानी—वि० रामनाथ ऐयर बी० ए०, बी० एल्० ॥), १)

परदेस कहानियाँ—कुमारी गोपालदेवी हिंदी-प्रभाकर ।), ॥)

साहसी बालक—श्रीगुरुराम चित्रकर्मी विशारद ।=), ॥=)

जापानी बाल-कहानियाँ—कन्हैयालाल दीक्षित ।), ।=)

क्यों और कैसे?—लेखक, श्रीनारायणप्रसादजी अरोड़ा ॥), ॥=)

परियों का दरबार—लेखक, श्रीब्रजलाल भार्गव "..." ॥), ॥=)

मिलने का पता—

गा-ग्र थागार, २६ लाटूश रोड, लखनऊ